Š

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

एम.ए. समाजशास्त्र

पाठ्यक्रम कोड : एम.ए. एस.- 015

प्रथम सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : 04

पाठ्यचर्या का शीर्षक : सामाजिक मानवविज्ञान

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

मार्गदर्शन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. कृष्ण कुमार सिंह
प्रभारी निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. शैलजा दुबे
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग उच्च शिक्षा
उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादन मंडल

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक, म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन
केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड-1
इकाई 1 – डॉ. निशीथ राय
इकाई 2 - डॉ. निशीथ राय
इकाई 3 - डॉ. निशीथ राय

खंड-2
इकाई 1- डॉ. निशीथ राय
इकाई 2- डॉ. निशीथ राय
इकाई 3- डॉ. निशीथ राय
इकाई 4- डॉ. निशीथ राय

खंड-3
इकाई 1- डॉ. निशीथ राय
इकाई 2- डॉ. निशीथ राय
इकाई 3- डॉ. निशीथ राय
इकाई 4- डॉ. निशीथ राय

खंड - 4
इकाई 1- डॉ. निलु रावत
इकाई 2- डॉ. निलु रावत
इकाई 3- डॉ. निलु रावत
इकाई 4- डॉ. निलु रावत

कार्यालयीन एवं संपादकीय सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहा. कुलसचिव, दू.शि. निदेशालय

श्री अरविन्द कुमार
टेक्निकल असिस्टेंट, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा
टंकण, दू.शि. निदेशालय

श्री सचिन सोनी
सॉफ्टवेयर सहायक, दू.शि. निदेशालय

श्री गुड्डू यादव
कंप्यूटर ऑपरेटर, दू.शि. निदेशालय

पाठ्यचर्या कोड : एमएएस-04

पाठ्यचर्या का नाम : सामाजिक मानवविज्ञान

क्रेडिट्स : 04 क्रेडिट

शिक्षण उद्देश्य :

विद्यार्थी इस पाठ्यचर्या के अध्ययन के उपरांत निम्नलिखित को समझने में सक्षम हो सकेंगे –

- सामाजिक मानवशास्त्र की प्रकृति, क्षेत्र, विषय-वस्तु एवं मानवशास्त्र का अन्य विज्ञानों से संबंध को समझने में छात्र सक्षम होंगे।
- संस्कृति के तत्त्वों, उपदानों एवं सिद्धांतों को समझ सकेंगे। संस्कृति के सिद्धांत को समझने एवं समालोचना करने में सक्षम होंगे।
- धर्म, जादू एवं विज्ञान में अंतर को स्पष्ट कर सकेंगे। समाज में इनकी प्रासंगिकता को भी समझ सकेंगे।
- आदिम जनजातियों के वंश, गोत्र एवं युवागृह की कार्यपद्धतियों को समझने में सक्षम होंगे।
- जनजातियों के अर्थव्यवस्था एवं विनिमय व्यवस्था को समझ सकेंगे तथा इनकी वर्तमान समाज के संदर्भ में समालोचना भी सकेंगे।
- आदिम जनजातियों की परिवार, विवाह एवं नातेदारी व्यवस्था को समझ सकेंगे।
- भारतीय जनजातियों से परिचित होंगे एवं उनकी कार्यपद्धती से भी छात्र परिचित होंगे।

मूल्यांकन के मानदंड :

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सतत आंतरिक मूल्यांकन : 30 %

सामाजिक मानवविज्ञान

खण्ड (1) सामाजिक मानवशास्त्र की प्रकृति एवं क्षेत्र

इकाई : 1 मानवशास्त्र की परिभाषा, प्रकृति एवं क्षेत्र

इकाई : 2 सामाजिक मानवशास्त्र एवं उसकी विषयवस्तु

इकाई : 3 सामाजिक मानवशास्त्र का अन्य विज्ञानों के साथ संबंध

खण्ड (2) संस्कृति एवं परिवार

इकाई : 1 संस्कृति की प्रकृति, परिभाषा एवं मानवशास्त्रीय अर्थ

इकाई : 2 संस्कृति उपादान एवं संस्कृति के सिद्धांत

इकाई : 3 परिवार: अर्थ, परिभाषा, प्रकार एवं उत्पत्ति के सिद्धांत

इकाई : 4 नातेदारी : परिभाषा एवं प्रकार

खण्ड (3) आदिम समाज - I

इकाई : 1 धर्म, जादू, विज्ञान एवं टोटम

इकाई : 2 वंश, गोत्र एवं भ्रातृदल

इकाई : 3 युवागृह : संरचना एवं प्रकार्य

इकाई : 4 आदिम अर्थव्यवस्था

खण्ड (4) आदिम समाज - II

इकाई : 1 जनजाति: अर्थ, वर्गीकरण, वितरण एवं परिवर्तन

इकाई : 2 विवाह: परिभाषा, प्रकार एवं सिद्धांत

इकाई : 3 भारत की जंजातियाँ: भील, गोंड, संथाल, थारु, ख़ासी गारो, जयंतिका एवं नागा

इकाई : 4 जनजाति समस्याएँ एवं कल्याणार्थ योजनाएं

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	**खंड - 1 – सामाजिक मानवविज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र**	
	इकाई - 1 मानवविज्ञान: परिभाषा, विषय-वस्तु एवं क्षेत्र	4-23
	इकाई -2 सामाजिक मानवविज्ञान: प्रकृति एवं क्षेत्र	24-40
	इकाई -3 सामाजिक मानवविज्ञान का अन्य विषयों के साथ संबंध	41-62
2	**खंड - 2 – संस्कृति एवं परिवार**	
	इकाई -1 संस्कृति की प्रकृति, परिभाषा एवं मानवशास्त्रीय अर्थ	63-75
	इकाई -2 संस्कृति उपादान एवं संस्कृति के सिद्धांत	76-93
	इकाई -3 परिवार: अर्थ, परिभाषा, प्रकार एवं उत्पत्ति के सिद्धांत	94-111
	इकाई -4 नातेदारी : परिभाषा एवं प्रकार	112-129
3	**खंड - 3 – आदिम समाज - I**	
	इकाई -1 धर्म, जादू, विज्ञान एवं टोटम	130-156
	इकाई -2 वंश, गोत्र एवं भ्रातृदल	157-171
	इकाई -3 युवागृह : संरचना एवं प्रकार्य	172-187
	इकाई -4 आदिम अर्थव्यवस्था	188-208
4	**खंड - 4 – आदिम समाज - II**	
	इकाई -1 जनजाति: अर्थ, वर्गीकरण, वितरण एवं परिवर्तन	209-225
	इकाई -2 विवाह: परिभाषा, प्रकार एवं सिद्धांत	226-246
	इकाई -3 भारत की जंजातियाँ: भील, गोंड, संथाल, थारु, ख़ासी गारो, जयंतिका एवं नागा	247-262
	इकाई -4 जनजाति समस्याएँ एवं कल्याणार्थ योजनाएं	263-283

खण्ड 1 सामाजिक मानवशास्त्र की प्रकृति एवं क्षेत्र

इकाई 1 मानवविज्ञान :परिभाषा, विषय-वस्तु और क्षेत्र

(Anthropology: Definition, Subject matter and Scope)

इकाई की रूपरेखा

1.1.0 उद्देश्य

1.1.1 प्रस्तावना (Introduction)

1.1.2 मानवविज्ञान क्या है? (What is Anthropology)

1.1.3 मानवविज्ञान का अर्थ और परिभाषा (Meaning and Definition of Anthropology)

1.1.3.1 मानवविज्ञान के बारे में आम गलतफहमी (Common Misconceptions about Anthropology)

1.1.4 मानवविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of Anthropology)

1.1.4.1 मानवविज्ञान में मूल सैद्धांतिक दृष्टिकोण

1.1.5 मानवविज्ञान की मुख्य शाखाएँ (Main Branches of Anthropology)

1.1.5.1 सामाजिक-सांस्कृतिक मानवविज्ञान (Socio-Cultural Anthropology)

1.1.5.2 शारीरिक/जैविक मानवविज्ञान (Physical/Biological Anthropology)

1.1.5.3 पुरातात्विक मानवविज्ञान (Archaeological Anthropology)

1.1.5.4 भाषीय मानवविज्ञान (Linguistic Anthropology)

1.1.6 मानवविज्ञान का क्षेत्र (Scope of Anthropology)

1.1.6.1 शारीरिक/जैविक मानवविज्ञान का क्षेत्र (Physical/Biological Anthropology

1.1.6.2 सामाजिक- सांस्कृतिक मानवविज्ञान का क्षेत्र (Socio-Cultural Anthropology)

1.1.6.3 पुरातात्विक मानवविज्ञान का क्षेत्र (Archaeological Anthropology)

1.1.6.4 भाषीय मानवविज्ञान का क्षेत्र (Linguistic Anthropology)

1.1.6.5 अनुप्रयुक्त और क्रियात्मक मानवविज्ञान (Applied and Action Anthropology)

1.1.7 सारांश (Summary)

1.1.8 बोध प्रश्न

1.1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे-

- मानवविज्ञान की परिभाषा एवं प्रकृति से परिचित होंगे।
- मानवविज्ञान के एतिहासिक परिदृश्य क्या है? यह कैसे विकसित हुआ? इनसे परिचित होंगे।
- मानवविज्ञान की मुख्य शाखाओं से परिचित होंगे।
- विद्यार्थी मानवविज्ञान के क्षेत्र एवं विषय-वस्तु को को समझने और लिखने में सक्षम होंगे।

1.1.1 प्रस्तावना

यह इकाई मानवविज्ञान की परिभाषा, विषयवस्तु और क्षेत्र का पता लगाएगी। मानवविज्ञान के विकास और कार्यक्षेत्र को जानना एक महत्वपूर्ण विषय है। हम जानते है मानवविज्ञान कई चरणों में विकसित हुआ है। मानवविज्ञान कि वर्तमान प्रकृति रातों रात नहीं बनी अपितु इसके लिए कई सैद्धांतिक बहसें हुई हैं और आज तक सभी मामलों कि बहस समाप्त नहीं हुई है। तो, इन मुद्दों को समझने के लिए विद्यार्थियों के लिए यह महत्वपूर्ण है कि विषय से संबंधित इतिहास को भी जानें। इसके साथ साथ आप यह भी समझेंगे कि अनुप्रयुक्त और क्रियात्मक मानवविज्ञान क्या है।

1.1.2 मानवविज्ञान क्या है? (What is Anthropology)

"एंथ्रोपोलॉजी" शब्द दो ग्रीक शब्दों, एंथ्रोपोस (मानव) और लॉगोस (अध्ययन या विज्ञान) से लिया गया है। मानवविज्ञान, इस प्रकार, मानव का वैज्ञानिक अध्ययन है। निश्चित रूप से, यह व्युत्पत्ति संबंधी अर्थ बहुत व्यापक और सामान्य है। अधिक सटीक रूप से, मानवविज्ञान को "मानव के जैविक ,सांस्कृतिक और सामाजिक कार्य और व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है" कहा जा सकता है। मानवविज्ञानी मानव प्रजाति और मानव व्यवहार के सभी पहलुओं, सभी स्थानों और हर काल, प्रागैतिहासिक सभ्यताओं के माध्यम से प्रजातियों की उत्पत्ति और विकास से लेकर वर्तमान स्थिति तक में रुचि रखते हैं।

मानवविज्ञान यह अध्ययन है जो यह ज्ञात करता है मानव होने का तात्पर्य क्या है? मानवविज्ञानी मानव अनुभव के कई अलग-अलग पहलुओं को समझने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाते हैं, जिसे हम समग्रता कहते हैं। वे पुरातत्व के माध्यम से अतीत पर विचार करते हैं, यह देखने के लिए कि मानव समूह सैकड़ों या हजारों साल पहले कैसे रहते थे और उनके लिए क्या महत्वपूर्ण था। वे विचार करते हैं कि हमारे जैविक शरीर और आनुवांशिकी के साथ-साथ हमारी हड्डियां, आहार और स्वास्थ्य में क्या परिवतन आया है? मानवविज्ञानी मनुष्यों की तुलना अन्य जानवरों (सबसे ज्यादा, अन्य प्राइमेट जैसे बंदर और चिंपांज़ी) के साथ करते हैं कि हम उनके साथ क्या करते हैं और क्या हमें अद्वितीय बनाता है। भले ही लगभग सभी मनुष्यों

को जीवित रहने के लिए समान चीजों की आवश्यकता होती है, जैसे कि भोजन, पानी और साहचर्य, लोगों के इन जरूरतों को पूरा करने के तरीके बहुत अलग हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, सभी को खाने की जरूरत है, लेकिन लोग अलग-अलग खाद्य पदार्थ खाते हैं और अलग-अलग तरीके से भोजन प्राप्त करते हैं। इसलिए मानवविज्ञानी यह देखते हैं कि लोगों के विभिन्न समूहों को भोजन कैसे मिलता है, इसे तैयार कैसे करतें है? और इसे साझा किन विधियों द्वारा करतें हैं ? विश्व में भोजन की कमी, उत्पादन की समस्या के कारण नहीं है, अपितु वितरण और सामाजिक समस्या के कारण, और अमर्त्य सेन ने यह साबित भी किया की 20 वीं शताब्दी के सभी अकालों का यहीं कारण था जिसके लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला था। मानवविज्ञानी यह समझने की भी कोशिश करते हैं कि लोग सामाजिक रिश्तों में बातचीत कैसे करते हैं (उदाहरण के लिए परिवारों और दोस्तों के साथ)। वे अलग-अलग तरीकों से कपड़े पहनते हैं और विभिन्न समाजों के लोगों से संवाद कैसे करते हैं? मानवविज्ञानी कभी-कभी इन तुलनाओं का उपयोग अपने समाज को समझने के लिए करते हैं। कई मानवविज्ञानी अपने समाजों में अर्थशास्त्र, स्वास्थ्य, शिक्षा, कानून और नीति (केवल कुछ विषयों के नाम पर) को देखते हुए काम करते हैं। इन जटिल मुद्दों को समझने की कोशिश करते समय, वे इस बात को ध्यान में रखते हैं कि वे जीव विज्ञान, संस्कृति, संचार के प्रकार और अतीत में मनुष्य कैसे रहते थे।

मानवविज्ञान विविधताओं का अध्ययन है - यह हमें इस बारे में सिखाता है कि पार-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से मानव होने का क्या मतलब है।

- अपने दृष्टिकोण को व्यापक बनाएं और देखें की दूसरे समाजों में क्या सामान है और अपने समाज में क्या अलग है ।
- सोचने के विभिन्न तरीकों और बातचीत के विभिन्न तरीकों को समझना सीखें।
- भौगोलिक स्थान, ऐतिहासिक और प्रागेतिहासिक समय में रहने के विभिन्न तरीकों का अन्वेषण करें।
- अपनी वैश्विक नागरिकता को समझे।

मानवविज्ञान का लक्ष्य मानवशास्त्रीय अनुसंधान के माध्यम से मानव स्थिति की हमारी सामूहिक समझ को आगे बढ़ाना है, और मानव समस्याओं को हल करने के लिए इस समझ का उपयोग करना है। मानवविज्ञान दुनिया भर के लोगों का अध्ययन है, उनका विकासवादी इतिहास, वे कैसे व्यवहार करते हैं, विभिन्न वातावरणों में कैसे अनुकूलन करते हैं, एक दूसरे के साथ संवाद कैसे करते हैं और समाजीकरण कैसे करते हैं। मानवविज्ञान का अध्ययन सामाजिक पहलुओं (जैसे भाषा, संस्कृति, राजनीति, परिवार और धर्म) के साथ उन जैविक विशेषताओं से संबंधित है जो हमें मानव बनाते हैं (जैसे कि शरीर विज्ञान, आनुवंशिकी, पोषण संबंधी इतिहास और विकास) । चाहे भारत में धार्मिक समुदाय का अध्ययन हो, या अमेरिका में मानव उद्विकासवादी जीवाश्मों का, मानवविज्ञानी लोगों के जीवन के कई पहलुओं से संदर्भित हैं: रोजमर्रा की

प्रथाओं के साथ-साथ अनुष्ठान, समारोह और प्रक्रियाएं जो हम मनुष्यों को परिभाषित करती हैं। मानवविज्ञान द्वारा प्रस्तुत कुछ सामान्य प्रश्न हैं-

- विभिन्न समाज अलग और सामान किस प्रकार हैं?
- उद्विकास कैसे हुआ, हम कैसे सोचते हैं?
- संस्कृति क्या है?
- क्या मानव समाज और संस्कृति सार्वभौमिक हैं?

लोगों के जीवन का विस्तार से अध्ययन करने के लिए समय निकालकर, मानवविज्ञानी यह पता लगाते हैं कि हमें विशिष्ट मानव क्या बनाता है। ऐसा करने में, मानवविज्ञानी का लक्ष्य हमारी खुद की और एक दूसरे की समझ को बढ़ाना है और एक नए प्रकार का मानववैज्ञानिक दृष्टिकोण विकिसित करना है।

1.1.3 मानवविज्ञान का अर्थ और परिभाषा (Meaning and Definition of Anthropology)

शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान, विकृति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि जैसे कई अन्य विषयों के विपरीत, जिनमें से प्रत्येक केवल एक पहलू तक ही सीमित है, मानवविज्ञान मानव के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करता है। शरीर विज्ञानी केवल एक व्यक्ति के जीवन की प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक मनुष्य की मानसिक स्थितियों से संबंधित है। पैथोलॉजिस्ट मनुष्य की रोग स्थितियों या रोगों की जांच करता है। अर्थशास्त्र घरेलू प्रबंधन और मनुष्य की जरूरतों को पूरा करने या व्यापक अर्थ में , उत्पादन, वितरण और धन की खपत से संबंधित है। समाजशास्त्री सामाजिक समूहों और संस्थानों और उनके अंतर्संबंधों और विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर चर्चा करते हैं। इस प्रकार, उपरोक्त जैविक और सामाजिक विज्ञान में से प्रत्येक व्यक्ति के एक पहलू या विशेष व्यक्तियों का ही अध्ययन करता है। लेकिन मानवविज्ञानी मानव समूह पर अपना ध्यान केंद्रित कर, कुल समाज का अध्ययन करते हैं, जिसमें दुनिया की विभिन्न नस्लों या लोगों के अतीत और वर्तमान दोनों शामिल हैं। **क्लूकहोलन** बताते हैं कि मनुष्य के विभिन्न पहलुओं से निपटने वाले अन्य सभी वैज्ञानिक विषयों में से, मानवविज्ञान वह विज्ञान है जो मनुष्य के समग्र अध्ययन के सबसे करीब आता है। इसे एक समग्र या संश्लेषणात्मक अनुशासन या समग्रता में मनुष्य का विज्ञान कहा जा सकता है।

मानवविज्ञान एक जैविक और एक सामाजिक विज्ञान दोनों है। यह एक ओर मनुष्य के साथ पशु साम्राज्य के सदस्य के रूप में व्यवहार करता है और दूसरी ओर समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन करता है । मानव जाति के संरचनात्मक विकास और सभ्यता के विकास दोनों का अध्ययन प्रारंभिक काल से किया जाता है। इसी तरह समकालीन मानव समूहों और सभ्यताओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन पर मानवविज्ञानी विशेष जोर देते हैं।

1. मानवविज्ञान की परिभाषाएँ

"मानवविज्ञान खुली सोच की माँग करता है जिसके साथ किसी को देखना और सुनना, विस्मय में रिकॉर्ड करना और उस पर आश्चर्य करना होगा जिसका कोई अनुमान नहीं लगा सकता"
मारग्रेड मीड (1901-1978) के अनुसार, "मानवविज्ञान का उद्देश्य दुनिया को मानव विविधताओं के लिए सुरक्षित बनाना है "
रूथ बनेडिक्ट (1887-1948) के अनुसार, "मानवविज्ञान विज्ञान का सबसे मानवतावादी और मानविकी का सबसे वैज्ञानिक विषय है"

एल्फेर्ड क्रोबर (1876-1960) के अनुसार, मानवविज्ञान एक विषय न होकर विषयों के बीच एक सेतु के समान है। इसका कुछ भाग इतिहास, तो कुछ भाग साहित्य है, कुछ भाग प्राकृतिक विज्ञान में, तो कुछ भाग सामाजिक विज्ञान में, यह मानव के भीतर जैविक क्रियाओं का मानव के बाहरी सामाजिक व्यवहारों के अध्ययन का प्रयास करता है, यह मानव को समग्र दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करता है।

एरिक वोल्फ (1923-1999) के अनुसार, "मानवविज्ञान व्यवहार के ऐसे सिद्धांतों को उजागर करना चाहता है जो सभी मानव समुदायों पर लागू होते हैं। मानवविज्ञानी के लिए, शरीर के आकार और बनावट , रीति-रिवाज, कपड़े, भाषा, धर्म, और विश्वदृष्टि में विविधता-ही-किसी भी समुदाय में जीवन के किसी भी पहलू को समझने के लिए संदर्भ का एक फ्रेम प्रदान करता है।"- अमेरिकन एंथ्रोपोलॉजिकल एसोसिएशन

1.1.3.1 मानवविज्ञान के बारे में आम गलतफहमी (Common Misconceptions about Anthropology)

विषय के रूप में मानवविज्ञान भारत में सामान्य लोगों के बीच अच्छी तरह से जाना नहीं जाता है। जैसा कि मानवविज्ञान अब तक माध्यमिक विद्यालय स्तर पर पढ़ाया नहीं जाता है, भारतीय आम जनता मानवविज्ञान को संग्रहालयों, सामयिक अखबारों के लेखों या टीवी कार्यक्रमों के माध्यमों से जान पाती है, जिनका प्राथमिक उद्देश्य मनोरंजन है। परिणाम यह है कि मानवविज्ञान के बारे में कई गलत धारणाएं बनी हुई हैं। एक आम बात यह है कि मानवविज्ञान मुख्य रूप से 'हड्डियों और जीवाश्मों' के बारे में है। ये वास्तव में जैविक और उदविकासवादी मानवविज्ञानी की विशेष दिलचस्पी है, जो हमारे पूर्वजों के शरीर, आहार और वातावरण के पुनर्निर्माण के लिए मानव अवशेष और जीवित स्थलों के साक्ष्य का उपयोग उन्हें समझने के लिए करते हैं। एक दूसरी गलत धारणा यह है कि सामाजिक मानवविज्ञानी विशेष रूप से 'दूरस्थ' क्षेत्रों में आदिवासी लोगों का अध्ययन करते हैं, जिनकी सांस्कृतिक प्रथाओं को 'असाधारण' माना जाता है। हालांकि यह सच है कि कुछ मानवविज्ञानी महानगरीय केंद्रों से दूर स्थानों में अपने शोध को अंजाम देते हैं, ऐसे कई

अन्य लोग हैं जो अपने घरेलू शहरों में, शहरी क्षेत्र में या औद्योगिक कार्यस्थल में भी अनुसंधान करते हैं। एक तीसरी गलत धारणा यह है कि मानवविज्ञान और पुरातत्व एक और एक ही हैं। उत्तरी अमेरिका में पुरातत्व को मानवविज्ञान की एक शाखा माना जाता है, जबकि ब्रिटेन में, पुरातत्व को मानवविज्ञान के लिए एक अलग संबंधित अनुशासन माना जाता है। सामान्यतया, पुरातत्व निकट या दूर अतीत में लोगों और संस्कृतियों के बारे में है, और सामाजिक मानवविज्ञान वर्तमान लोगों और संस्कृतियों के बारे में है।

इस प्रकार 1.1.3 और 1.1.3.1 के अध्ययन के उपरांत हम यह निष्कर्ष निकाल निकाल सकते हैं की "मानवविज्ञान, मानव के जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक आयामों का मानव की उत्पत्ति से लेकर वर्तमान तक का वैज्ञानिक अध्ययन है"।

1.1.4 मानवविज्ञान कि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of Anthropology)

ऐतिहासिक रूप से, मानवविज्ञान गैर-यूरोपीय लोगों के समाज और संस्कृतियों का अध्ययन करने के लिए एक तुलनात्मक अनुशासन के रूप में उभरा । यूरोपीय और अमेरिकी विद्वानों द्वारा अग्रणी मानवशास्त्रीय अध्ययन किए गए थे जो ज्यादातर पर्यंक (आर्मचेयर) मानवविज्ञानी थे और खोजकर्ताओं, यात्रियों, मिशनरियों और प्रशासकों द्वारा लिखित पुस्तकों को पढ़कर अपने सिद्धांतों का निर्माण किया। धीरे-धीरे, काफी संख्या में गैर-पश्चिमी मानवविज्ञानी अपने स्वयं के समाजों और संस्कृतियों का अध्ययन करने लगे और उन अध्ययनों को राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया से जोड़ने का प्रयास किया। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में, जो एक बार औपनिवेशिक प्रशासन की सेवा करता था, औपनिवेशिक काल के बाद के नए राष्ट्र राज्यों का एक सहायक अंग बन गया।

1.4.1 मानव विज्ञान में मूल सैद्धांतिक दृष्टिकोण

मानवविज्ञान का मूल ढांचा, जो मानव जाति के तुलनात्मक अध्ययन पर टिका हुआ था, अपरिवर्तित रहा। मानवविज्ञानी के लिए, मानवजाति के तुलनात्मक अध्ययन का मतलब होमो सेपियन्स सेपियन्स (मानव का वैज्ञानिक नाम) के जैविक और सांस्कृतिक विविधता के संदर्भ में है। मानवविज्ञानी द्वारा संस्कृतियों की तुलना पूरे विश्व में पूर्व-औद्योगिक आदिवासी और किसान समाजों तक सीमित थी। जहां तक तुलनात्मक अध्ययन की बात है यह कुछ सामान्यीकरणों पर आने के लिए संस्कृति लक्षणों के साथ-साथ उनके परिमाणीकरण और सांख्यिकी के अनुप्रयोग तक सीमित थी । लेकिन इस अभ्यास को करने के लिए मानवविज्ञानी को एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में वितरित पूर्व-औद्योगिक समाजों के विभिन्न पहलुओं पर भारी मात्रा में आंकड़ें एकत्र करना था। वास्तव में, मानवविज्ञानी में कार्यप्रणाली और आंकड़े संग्रह करने की प्रक्रियाएं पर्यंक (आर्मचेयर) मानवविज्ञानी के समय से वर्तमान अवधि तक विकसित हुई हैं।

बहुत शुरुआत में, एक या दो उल्लेखनीय अपवाद वाले मानवविज्ञानी, उन समाजों पर क्षेत्रकार्य के माध्यम से किसी भी प्रकार का प्रथम, अनुभवजन्य अवलोकन नहीं करते थे, जिसका अध्ययन उन्होंने किया था।

इस अवधि के दौरान, जो लगभग 1850 से 1890 के बीच थी, मानव समाज पर पहला मानवशास्त्रीय सिद्धांत उत्पन्न हुआ। यह भव्य सिद्धांत, जिसे एकतरफा उदविकासवाद के रूप में जाना जाता था, ने कुछ सामान्य सामाजिक-सांस्कृतिक चरणों के संदर्भ में सांस्कृतिक विविधता की व्याख्या की, जिसके माध्यम से सभी मानव समाजों ने इसे मान लिया गया था। इस भव्य सिद्धांत, जो डार्विनियन से प्रभावित था, के अनुसार लगभग सभी प्रमुख मानव समाजशास्त्रीय संस्थाओं के विकास को बहुत पुस्तकों की संधियों के रूप में देखा जा सकता है । इस प्रकार हमने रिश्तेदारी और विवाह प्रणाली, संपत्ति के अधिकार, धार्मिक मान्यताओं और प्रथाओं, जादुई संस्कार, राजनीतिक संगठनों और सामान्य तकनीकी-आर्थिक और सामाजिक-सांस्कृतिक पैटर्न के विकास की कहानियों को पाया।

उदविकासवाद के बाद, मानवविज्ञान में अगला सिद्धांत प्रसारवाद था जिसने एक केंद्र से संस्कृति के लक्षणों के संचरण की दर और प्रकृति के आधार पर मानव सांस्कृतिक विविधता को समझाने का प्रयास किया। प्रसारवादियों ने तर्क दिया कि संस्कृतियां भिन्न होती हैं क्योंकि उनमें केंद्र से प्राप्त लक्षणों के विभिन्न संयोजन और साथ ही कुछ अप्रत्याशित ऐतिहासिक दुर्घटनाओं के माध्यम से हुए संयोजन शामिल होते हैं। मानवविज्ञानी के आंकड़ें संकलन करने की प्रक्रियाओं ने हालांकि प्रसारवादी चरण के दौरान सुधार नहीं किया। उसी पुराने अभिलेखीय और द्वितीयक स्रोतों को संभाला गया था जैसा कि उदविकासवादियों द्वारा किया गया था, (अमेरिकी प्रसारकों ने हालांकि कुछ फील्डवर्क किया था) हालांकि पहले बड़े पैमाने पर फील्डवर्क (प्रसिद्ध टोरेस स्ट्रेट अभियान) ब्रिटिश मानवविज्ञानी डब्ल्यू.एच.आर. रिवर्स के नेतृत्व में किया गया था। रिवर्स जिन्होंने अनोखी वंशावली विधि का आविष्कार किया था, जो कि फील्डवर्क उन्मुख मानवविज्ञानी की बाद की पीढ़ी के लिए एक प्रमुख उपकरण बन गया। प्रसारवाद की अवधि 1890 में शुरू हुई और 20' शताब्दी के दूसरे दशक तक जारी रही।

मानवविज्ञान में सिद्धांत निर्माण का तीसरा चरण 1920 में ग्रेट ब्रिटेन में **बी.मालिनोवस्की** और **ए.रेडक्लिफ ब्राउन** के नेतृत्व में शुरू हुआ। इस अवधि के दौरान विकसित होने वाले सिद्धांत को संरचना-प्रकार्यात्मक या बस प्रकार्यात्मक के रूप में नामित किया गया था जिसने अगले तीन दशकों तक मानवविज्ञान के अकादमिक क्षेत्र पर शासन किया। मानवविज्ञान में संरचना-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के उद्भव के साथ दो महत्वपूर्ण विकास हुए थे; एक सैद्धांतिक और दूसरा कार्यप्रणाली। आइए पहले पद्धतिगत विकास के बारे में चर्चा करें। 1914-18 के दौरान ब्राउनिस्लाव मालिनोवस्की (इंग्लैंड में बसे एक पोलिश विद्वान) ने अल्पज्ञात जनजातीय के एक समूह के बीच प्रशांत महासागर (ट्रोब्रिएंड द्वीप) में द्वीपों की एक श्रृंखला में अपने फील्डवर्क का संचालन किया और एक अंतर-द्वीप उत्सव विनिमय (प्रसिद्ध 'कुला' की खोज की) जिसने समुदायों के सामाजिक और सांस्कृतिक एकजुटता को बनाए रखा। ट्रोबिऐनडर्स के दैनिक जीवन में

मालिनोवस्की के पूर्ण विसर्जन ने एक पद्धति को जन्म दिया, जिसे उन्होंने `प्रतिभागी अवलोकन ' की संज्ञा दी। प्रतिभागी अवलोकन ने मानवविज्ञानी को लंबी अवधि के फील्डवर्क के माध्यम से एक छोटे समुदाय के अंदरूनी सूत्र के दृष्टिकोण को समझने में सक्षम किया, जिसमें मूल निवासी के साथ बातचीत शामिल थी और मूल जीवन के लगभग हर पहलू का अवलोकन किया जाता था । मालिनोवस्कियन पद्धति के माध्यम से उत्पन्न आंकड़ों की गुणवत्ता और शुद्धता ने माध्यमिक स्तर की जानकारी को पार कर लिया, जिसके साथ प्रारम्भिक मानवविज्ञानी किसी भी मानक से निपटते थे।

प्रतिभागी अवलोकन के साथ जिस तरह के मानवविज्ञानी एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में अध्ययन कर रहे थे, स्थानीय लोगों के साथ उनके निकट संबंध थे। इस नए उपकरण के साथ, मानवविज्ञानी एक समुदाय के जीवन के हर पहलू का पालन करने के लिए उत्सुक थे और यह तब तक संभव नहीं था जब तक कि समुदाय का आकार एक या दो मानवविज्ञानी के लिए प्रबंधनीय न हो जाए। समुदाय की लघुता और समाज के हर पहलू में मानवविज्ञानी की जांच ने मानवविज्ञान में एक सैद्धांतिक निर्माण को जन्म दिया। इस सैद्धांतिक निर्माण को समग्रता की संज्ञा दी गई, जिसके द्वारा मानवविज्ञानी ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों के परस्पर संबंध का उल्लेख किया। मानवविज्ञान में समग्रता का दर्शन जैविक पद्धति और समग्राकृति (जेस्टाल्ट) मनोविज्ञान से लिया गया था। मानव समाज के विभिन्न क्षेत्रों, अर्थात, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, घरेलू आदि को आपस में जोड़ा जाता था और यह एक दूसरे के शरीर के अंगों की तरह आपस में जुड़ा होता है । इस पद्धतिगत उपकरण और सैद्धांतिक अभिविन्यास के साथ संरचना-प्रकार्यवादियों ने मानव समाजों के बीच और समाज के विभिन्न क्षेत्रों के बीच अंतर्संबंध की प्रकृति के संदर्भ में भिन्नता को समझाया और समाजों को भी इन अंतर्संबंधों के आधार पर समूहों में वर्गीकृत किया।

1.1.5 मानवविज्ञान की मुख्य शाखाएँ (Main Branches of Anthropology)

अतीत में, एक मानवविज्ञानी ने जितना संभव हो उतने विषयों को समेकित किया। आज, जैसा कि कई अन्य विषयों में है, इतनी जानकारी जमा हो गई है कि मानवविज्ञानी एक आयाम या क्षेत्र में ही विशेषज्ञ होते हैं। इसी आधार पर मानवविज्ञान को चार मुख्य शाखाओं में विभाजित किया गया है ।(देखें चित्र 1)

चित्र 1. मानवविज्ञान की मुख्य शाखाएँ

1.1.5.1 सामाजिक- सांस्कृतिक मानवविज्ञान (Socio-Cultural Anthropology)

सामाजिक- सांस्कृतिक मानवविज्ञान के अंतर्गत यह समझने का प्रयास किया जाता है कि विभिन्न स्थानों पे लोग कैसे रहते हैं और वह अपने आसपास की दुनिया को किस प्रकार समझते हैं। यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है की लोग एक दूसरे के साथ व्यवहार करने हेतु किस प्रकार नियम बनते हैं। यहां तक कि एक समाज के भीतर, लोग इस बात में एक मत क्यों नहीं होते हैं कि उन्हें कैसे बोलना, कपड़े पहनना, खाना या दूसरों के साथ व्यवहार करना चाहिए। सामाजिक- सांस्कृतिक मानवविज्ञानी सभी विचारों और दृष्टिकोणों को सुनते हैं ताकि यह समझ सकें कि एक समाज में क्या क्या भिन्तायें हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक मानवविज्ञानी अक्सर पाते हैं कि विविध लोगों और संस्कृतियों के बारे में जानने का सबसे अच्छा तरीका उनके बीच रहना और समय बिताना है। वे अन्य समूहों के दृष्टिकोण, प्रथाओं और सामाजिक संगठन को समझने की कोशिश करते हैं, जिनके मूल्य और जीवन अपने स्वयं से बहुत अलग हो सकते हैं। उन्हें प्राप्त ज्ञान व्यापक स्तर पर मानव समझ को समृद्ध कर सकता है।

1.1.5.2 शारीरिक/जैविक मानवविज्ञान (Physical/Biological Anthropology)

शारीरिक/जैविक मानवविज्ञान के अंतर्गत मानव विविधता और मानव उद्विकास का अध्ययन किया जाता है. शारीरिक/जैविक मानवविज्ञानी यह समझने की कोशिश करते हैं कि कैसे मनुष्य विभिन्न वातावरणों में अनुकूलन करते हैं, बीमारी और जल्दी मृत्यु के क्या कारण होते हैं, और कैसे मनुष्य अन्य जानवरों से विकसित है। ऐसा करने के लिए, वे मनुष्यों (जीवित और मृत), अन्य प्राइमेट्स जैसे कि बंदर और वानर, और

मानव पूर्वजों (जीवाश्म) का अध्ययन करते हैं। वे इस बात में भी रुचि रखते हैं कि जीव विज्ञान और संस्कृति हमारे जीवन को आकार देने के लिए कैसे काम करती है। वे दुनिया भर के मनुष्यों के बीच पाए जाने वाली समानता और अंतर को समझाने में रुचि रखते हैं। इस काम के माध्यम से, जैविक मानवविज्ञानी ने यह दिखाया है कि, जबकि मनुष्य अपने जीव विज्ञान और व्यवहार में भिन्न होते हैं, फिर भी उनमें समानता ज्यादा और भिन्नता कम होती है ।यह मानवविज्ञान की एक शाखा है जो मानव उत्पत्ति को उनकी उत्पत्ति, भेदभाव, विविधता और वितरण से संबंधित रहस्य का पता लगाने का प्रयास करती है। आनुवांशिक विज्ञान की प्रगति के साथ, यह अधिक से अधिक जीव विज्ञान उन्मुख हो गया है, और इसके आधार पर, इसके अध्ययन के क्षेत्र को काफी विस्तार मिला।

1.1.5.3 पुरातात्विक मानवविज्ञान (Archaeological Anthropology)

मानवविज्ञान की यह शाखा अतीत में संस्कृति की उत्पत्ति, वृद्धि और विकास का पता लगाने का प्रयास करती है। अतीत से हमारा तात्पर्य इतिहास से पहले की उस अवधि से है जब आदमी ने भाषा की क्षमताओं को हासिल नहीं किया था, न केवल बोलने के लिए बल्कि अपने जीवन की कहानी को रिकॉर्ड करने के लिए लिखने का भी। इसके अंतर्गत पुरातत्वविद प्रागितिहासिक काल में लोगों द्वारा बनाई गई वस्तुओं का विश्लेषण करके मानव संस्कृति का अध्ययन करते है। वे उत्खनन कर जमीन से ऐसी चीजों को खोजते हैं जैसे कि मिट्टी के बर्तन और उपकरण। वे प्रागितिहासिक काल के लोगों के दैनिक जीवन के बारे में जानने के लिए घरों, बाज़ारों और अन्य स्थानों के नक्शेबनाते हैं। वे लोगों के आहार और उन्हें होने वाली बीमारियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए मानव हड्डियों और दांतों का विश्लेषण करते हैं। पुरातत्वविदों ने उन स्थानों से पौधों, जानवरों और मिट्टी के अवशेष एकत्र किए हैं, और यह समझने का प्रयास करते हैं कि लोगों ने अपने प्राकृतिक वातावरण का उपयोग और परिवर्तन कैसे किया। पुरातात्विक अनुसंधान के लिए समय सीमा लाखों साल पहले मानव पूर्वजों के साथ शुरू होती है और वर्तमान दिन तक फैली हुई है। मानवविज्ञान के अन्य क्षेत्रों की तरह, पुरातत्वविदों को स्थान और समय में मानव समाजों में अंतर और समानता की व्याख्या करने से संबंधित है।

1.1.5.4 भाषाई मानवविज्ञान (Linguistic Anthropology)

भाषाई मानवविज्ञान मानवविज्ञान की वह शाखा है जो भाषा से संबंधित है। इसका संबंध सभी लोगों की भाषाओं, अतीत और वर्तमान से है क्योंकि यह संस्कृति का मुख्य वाहन है जिसके माध्यम से मनुष्य अपनी संस्कृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षित और प्रसारित करता है। यह शाखा भाषा और सांस्कृतिक अनुभूति के साथ-साथ सांस्कृतिक व्यवहार के बीच संबंधों में भी रुचि रखता है। भाषाविदों और भाषाई मानवविज्ञानी के बीच मुख्य अंतर यह है कि भाषाविद मुख्य रूप से इस बात के अध्ययन से संबंधित है कि भाषाएं, विशेष

रूप से लिखित कैसे निर्मित और संरचित होती हैं। लेकिन भाषाई मानवविज्ञानी लिखित भाषाओं के साथ ही अलिखित भाषाओं का अध्ययन करते हैं। उनके बीच एक और महत्वपूर्ण अंतर यह है कि भाषाई मानवविज्ञानी उन विशेषताओं को महत्वपूर्ण मानता है जिन्हें भाषाविद द्वारा नगण्य समझा जाता है। ये विशेषताएं हैं ज्ञान, विश्वास, मान्यताए जो इन प्रणालियों से संबंधित हैं जो लोगों के दिमाग में विशेष समय पर विशेष विचार उत्पन्न करती हैं। इन विशेषताओं में से प्रत्येक सांस्कृतिक रूप से अनुकूलित है और इसलिए प्रत्येक संस्कृति और समाज के लिए अद्वितीय है। भाषाई मानवविज्ञानी दुनिया भर में लोगों से संवाद करने के कई तरीकों का अध्ययन करते हैं। वे इस बात में रुचि रखते हैं कि कैसे भाषा जुड़ी हुई है की हम दुनिया को कैसे देखते हैं और हम एक दूसरे से कैसे संबंधित हैं। इसका अर्थ यह हो सकता है कि भाषा अपने सभी विभिन्न रूपों में कैसे काम करती है और समय के साथ कैसे बदलती है। इसका मतलब यह भी है कि हम भाषा और संचार के बारे में क्या विश्वास करते हैं और हम अपने जीवन में भाषा का उपयोग कैसे करते हैं। इसमें उन तरीकों को शामिल किया गया है जो हम पहचान बनाने या साझा करने, पहचान बनाने या बदलने और शक्ति के संबंध बनाने या बदलने के लिए भाषा का उपयोग करते हैं। भाषाई मानवविज्ञानी के लिए, भाषा और संचार इस बात की कुंजी है कि हम समाज और संस्कृति को कैसे बनाते हैं।

1.1.6 मानवविज्ञान का क्षेत्र (Scope of Anthropology)

मानवविज्ञान के निम्नलिहित क्षेत्र इस प्रकार हैं-

1.1.6.1 जैविक/शारीरिक मानवविज्ञान का क्षेत्र

जैसा की 1.1.5.2 में यह समझाया गया है की शारीरिक/जैविक मानवविज्ञान के अंतर्गत मानव विविधता और मानव उद्विकास का अध्ययन किया जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु शारीरिक मानवविज्ञानी निम्नलिखित क्षेत्रों में कार्य करते हैं।

I. **प्राइमेटोलॉजी:** यह स्तनधारी प्राइमेट समूह का वैज्ञानिक अध्ययन है। मानव जो मानवशास्त्रीय अध्ययन का केंद्र हैं, वह प्राणी जगत के ऑर्डर प्राइमेट के अंतर्गत आता है। प्राइमेट, माइक्रोसीबस जैसे सबसे छोटे चूहे के आकार वाले वानर से शुरू होकर सबसे बड़े विशाल शरीर वाले गोरिल्ला तक, विकास के अपने विभिन्न चरणों में विभिन्न जीवन स्वरूप दिखाते हैं। प्राइमेट का एकीकृत अध्ययन, शारीरिक मानवविज्ञान की पृष्ठभूमि में मनुष्य की स्थिति को समझने के लिए एक आंतरिक दृष्टिकोण देता है।

II. **इथनोलोजी:** यह मानव विविधता का अध्ययन है। दुनिया में सभी जीवित मानवों को अलग-अलग समूहों में वर्गीकृत किया जाता है जिन्हें मोटे तौर पर नस्ल के रूप में जाना जाता है। इन्हें अब मेंडेलियन पॉपुलेशन के रूप में समझा जाता है, जो एक सामान्य जीन पूल साझा करने वाले मानवों

का एक इनब्रीडिंग समूह है। यह नस्लीय समूहों की प्रकृति, गठन और भेदभाव की व्याख्या करने का भी प्रयास करता है।

III. **मानव जीवविज्ञान:** यह मनुष्य के ठोस जैविक सिद्धांतों और अवधारणाओं से संबंधित है। यह सांस्कृतिक उपलब्धि के प्रभाव के कारण अन्य जानवरों के जीव विज्ञान से भिन्न है। यह संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित है क्योंकि संस्कृति, कभी-कभी, जैविक प्रभाव भी डालती है। शारीरिक मानवविज्ञानी मनुष्य के इस जैविक विशेषता, उनके क्रमिक विकास और समय के साथ संरचना में परिवर्तन को समझने का प्रयास करता है।

IV. **पुरामानवविज्ञान:** यह शारीरिक मानवविज्ञान की शाखा है जो मानव जाति के जैविक इतिहास के प्रलेखन से संबंधित है। वे पृथ्वी की विभिन्न परतों से एकत्रित जीवाश्म साक्ष्य पर काम करते हैं। यह मानव और गैर-मानवीय लक्षणों के बीच की कड़ी को फिर से जोड़ने का प्रयास करता है जो इतने लंबे समय से खोए हुए हैं । वे विभिन्न स्थलों से प्राप्त जीवाश्म अवशेषों का मूल्यांकन करते हैं और अपनी स्थिति और उद्विकासवादी महत्व को स्थापित करते हैं।

V. **मानव आनुवंशिकी:** आनुवांशिकी विरासत में मिले लक्षणों से संबंधित है। माता-पिता और उनकी संतानों के बीच एक आनुवंशिक संबंध है। वह विरासत की प्रवृत्ति जिसमे माता-पिता के लक्षण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं उसे आनुवंशिकता कहते हैं। मनुष्य की उत्पत्ति और विकास को जानने के लिए आनुवंशिकता और उसके तंत्र को अच्छी तरह से समझा जाना चाहिए। मानव आनुवंशिकी जैविक मानवविज्ञान की एक विशेष शाखा है जो मानवों में विभिन्न लक्षणों की आनुवंशिकता के तंत्र को प्रकट करती है।

VI. **पोषण संबंधी नृविज्ञान:** यह मानव के पोषण संबंधी दृष्टिकोण और विकास से संबंधित है। किसी देश की जनसंख्या को उचित विकास और वृद्धि की आवश्यकता होती है। विकास, हालांकि, दो कारकों आनुवंशिकता और पर्यावरण पर निर्भर है। शारीरिक मानवविज्ञान की यह शाखा मानवों के साथ-साथ इन दोनों कारकों के प्रभाव से भी संबंधित है।

VII. **चिकित्सा नृविज्ञान:** यह रोग के स्वरूप और मानव समाजों पर उनके प्रभाव का अध्ययन करता है। चिकित्सा मानवविज्ञानी लोगों के करीबी अध्ययन और उनके जीवन के तरीके के माध्यम से सामाजिक-सांस्कृतिक के साथ-साथ एक आबादी के भीतर रोग के आनुवांशिक या पर्यावरणीय निर्धारकों को प्रकाश में लाने का प्रयास करता है। यह मानव समाजों में विभिन्न रोगों का मुकाबला करने में बहुत प्रभावी साबित होता है।

VIII. **शरिरिक्रिया नृविज्ञान:** यह शाखा मानव शरीर के आंतरिक अंगों के साथ उनके जैव-रासायनिक गठन को समझने का कार्य करती है। यह इस बात से भी संबंधित है कि मनुष्य की शरिरिक्रिया बाहरी

कारकों जैसे कि जलवायु, भोजन की आदत आदि के साथ कैसे अनुकूलन करती है. इसके अलावा, यह मनुष्य और अन्य प्राइमेट्स में जैव-रासायनिक विविधताओं का अध्ययन करता है।

IX. **न्यायालयिक नृविज्ञान:** यह शरीर के अंगों की समानता और अंतर को समझने के लिए होमिनिड्स और गैर-होमिनिड्स की कंकाल संरचना से संबंधित है। ज्ञान की यह शाखा अपराधियों का पता लगाने के साथ-साथ उनके जैविक अवशेषों के माध्यम से व्यक्तियों की प्रकृति और स्थिति की पहचान में बहुत प्रभावी है।

X. **दन्त मानवविज्ञान (डेंटल एंथ्रोपोलॉजी):** ज्ञान की यह शाखा दांत और उसके पैटर्न से संबंधित है। दांत शरीर के आकार के साथ-साथ भोजन की आदत, और संबंधित व्यवहार स्वरूप ज्ञात करने में मदद प्रदान करते हैं। दंत आकारिकी हमें मानव उद्विकास, विकास, शरीर आकृति विज्ञान, आनुवांशिक विशेषताओं को समझने में मदद करती है।

XI. **मानव वृद्धि और विकास:** यह शारीरिक मानवविज्ञान के लिए रूचि का एक और क्षेत्र है जिसमें विकास के जैविक तंत्र के साथ-साथ विकास प्रक्रिया पर पर्यावरण के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। आज, शारीरिक मानवविज्ञानी बीमारी, प्रदूषण और विकास पर गरीबी के प्रभावों का अध्ययन करते हैं। जीवित मनुष्यों में स्वस्थ विकास के हार्मोनल, आनुवांशिक और शारीरिक आधार के विस्तृत अध्ययन हमारे पूर्वजों के विकास स्वरूप की समझ और आज के बच्चों के स्वास्थ्य की समझ में योगदान करते हैं।

XII. **मानवमिति (एंथ्रोपोमेट्री):** यह मापन का मानवविज्ञान है। यह अध्ययन न केवल उद्विकास के माध्यम से क्रमिक मानव विकास के अध्ययन में और नस्लीय भेदभाव स्वरूप को समझने में उपयोगी है, बल्कि जीवन के दिन-प्रतिदिन के तरीके में भी सहायक है जो विशेष रूप से मानव शारीरिक रूपों से संबंधित है।

XIII. **एर्गोनॉमी:** शारीरिक मानवविज्ञान की यह शाखा स्थैतिक शरीर के आयामों और मनुष्य द्वारा संचालित होने वाली मशीन के डिजाइन से संबंधित है। ज्ञान की यह शाखा इस तथ्य से बहुत महत्वपूर्ण है कि लोगों के कई समूह शरीर के आकार में भिन्न होते हैं जिनका कारण विभिन्न जैविक और पर्यावरणीय कारक होते हैं।

XIV. **जनसांख्यिकी:** यह जनसंख्या का विज्ञान है। यह प्रजनन और मृत्यु दर से संबंधित है। ये दो कारकों आनुवंशिकता और पर्यावरण से प्रभावित हैं। जैसा कि यह विकास, उम्र, लिंग संरचना, स्थानिक वितरण, जनसंख्या की उर्वरता और मृत्यु दर के अलावा प्रवास जैसे लक्षणों से संबंधित है, यह स्वाभाविक रूप से शारीरिक मानवविज्ञान की एक विशेष शाखा बन जाता है।

XV. **इथोलोजी:** यह पशु व्यवहार का विज्ञान है। अन्य पशुओं के व्यवहारों के अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों का उपयोग मानव व्यवहारों की मूल पृष्ठभूमि को समझाने और यह बताने के लिए किया जा रहा है कि विभिन्न युगों में मानव पूर्वजों ने कैसे कार्य किया होगा।

1.1.6.2 सामाजिक/सांस्कृतिक मानवविज्ञान का क्षेत्र

I. **आर्थिक नृविज्ञान:** उत्पादन, खपत, वितरण और विनिमय आर्थिक लेनदेन और इसकी प्रक्रियाओं की बुनियादी संरचनाएं हैं। आर्थिक मानवविज्ञानी इन गतिविधियों पर मुख्य रूप से गैर-साक्षर और आदिम समाज में ध्यान केंद्रित करते हैं। वे औपचारिक आदान-प्रदान सहित आदान-प्रदान के तरीकों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। पारस्परिकता और पुनर्वितरण की अवधारणा यहां महत्वपूर्ण हैं. व्यापार और बाजार प्रणालियों की प्रकृति का भी अध्ययन किया जाता है। समाजों में आर्थिक विकास और विकास की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। कुछ विद्वानों का तर्क है कि मनुष्य की आर्थिक गतिविधियों का अलगाव में अध्ययन नहीं किया जा सकता है, लेकिन उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में उन सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों पर जोर दिया जाता है जो प्रत्येक समाज में आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित और निर्धारित करते हैं।

II. **राजनीतिक नृविज्ञान:**यह राजनीतिक प्रक्रिया की सर्वव्यापकता पर ध्यान केंद्रित करता है और सरल समाजों में वैध प्राधिकरण, कानून, न्याय और प्रतिबंधों के कार्य, सत्ता और नेतृत्व को समझने का प्रयास करता है । यह दुनिया के समाजों और राष्ट्रों और जटिल समाजों के बीच उभरती राजनीतिक प्रक्रियाओं के बीच अंतर और समानता पर आधारित राजनीतिक संरचनाओं के टाइपोलॉजी के निर्माण में मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण पर केंद्रित है। इसके अलावा, यह राजनीतिक संस्कृति और राष्ट्र निर्माण प्रक्रियाओं का भी अध्ययन करता है।

III. **मनोवैज्ञानिक नृविज्ञान:** यह मनोवैज्ञानिक लक्षणों में पारसांस्कृतिक विविधताओं का अध्ययन है। यह मनुष्य के मनोवैज्ञानिक, व्यवहारिक और व्यक्तिगत दृष्टिकोणों का अध्ययन करता है। इसे मनोविज्ञान और सामाजिक-सांस्कृतिक मानवविज्ञान के बीच अंतःविषय दृष्टिकोण के रूप में विकसित किया गया है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक मानवविज्ञानी इस प्रक्रिया में बहुत रुचि रखते हैं जिसके द्वारा संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हस्तांतरित होती है।

IV. **पारिस्थितिक मानवविज्ञान:** पारिस्थितिकी शब्द का तात्पर्य पर्यावरण और जीव के बीच संबंधों की समग्रता से है। यह मानव और उनके पर्यावरण के बीच के संबंध से संबंधित है। यह विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों की व्याख्या में पर्यावरण की अवधारणा का उपयोग है और सांस्कृतिक समूहों की विविधता भी है। सांस्कृतिक व्यवहार और पर्यावरण से संबंधित दो मुख्य विचार निर्धारणवाद और आधिपत्यवाद हैं। निर्धारणवाद,जिसे पर्यावरणवाद भी कहा जाता है, कहता है कि पर्यावरण

सांस्कृतिक प्रथाओं को निर्धारित करता है जबकि आधिपत्यवाद इससे इनकार करता है और मानता है कि सांस्कृतिक व्यवहारों पर प्रभाव को निर्धारित करने के बजाय पर्यावरण उन्हें सीमित करता है। यह मानव और उनके पर्यावरण के बीच के संबंध से संबंधित है। यह विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों की उत्पत्ति और सांस्कृतिक समूहों की विविधता दोनों की व्याख्या में पर्यावरण की अवधारणा का उपयोग करता है। यह सांस्कृतिक समूहों को समझने का भी प्रयास करता है। यह मानव समाज पर पर्यावरण के सापेक्ष प्रभाव को समझने का प्रयास करता है और इसका उपयोग विभिन्न समाजों द्वारा कैसे किया जाता है। एंथ्रोपोलॉजी में पारिस्थितिक दृष्टिकोण पहली बार 1930 के दशक में स्टीवर्ड द्वारा अपनी सबसे महत्वपूर्ण अवधारणा cultural ecology के माध्यम से व्यक्त किया गया था, जिसने मान्यता दी थी कि संस्कृति और पर्यावरण अलग-अलग क्षेत्र नहीं हैं, लेकिन एक द्वंद्वात्मक परस्पर क्रिया या पारस्परिक कार्य-कारण में शामिल हैं।

V. **एथनो-इकोलॉजी:** यह मानवशास्त्रीय अध्ययन का एक विशेष उप-क्षेत्र है जो मानवों को उनके कुल पर्यावरण के अनुकूलन से संबंधित है।

VI. **नगरीय मानवविज्ञान:** शहरी मानवविज्ञान हाल के दिनों में मानवविज्ञान में अध्ययन के एक विशिष्ट क्षेत्र के रूप में विकसित हुआ। यह शहरीकरण, गरीबी, शहरी क्षेत्र, सामाजिक संबंधों और नवउदारवाद के मुद्दों से संबंधित सामाजिक मानवविज्ञान की एक उपशाखा है। यह क्षेत्र 1960 और 1970 के दशक में समेकित हो गया है। हालांकि कुछ मानवशास्त्रियों ने इस सदी की शुरुआत के बाद से शहरी क्षेत्र में जातीय आबादी का अध्ययन किया, शहरी मानवविज्ञान वास्तव में 1967 से विशेष अध्ययन के रूप में शुरू किया गया था जब संयुक्त राज्य के कुछ शहरों में दंगे हुए थे। शहरी मानवविज्ञानी समकालीन शहरों में शहरी संस्कृतियों के अध्ययन के लिए मानवविज्ञान की अनूठी विशेषताओं को लाने की कोशिश कर रहे हैं। शहरी मानवविज्ञान समाजशास्त्र से बहुत प्रभावित है, विशेष रूप से शिकागो स्कूल ऑफ अर्बन सोशियोलॉजी। समाजशास्त्र और मानवविज्ञान के बीच पारंपरिक अंतर यह था कि समाजशास्त्र में पारंपरिक रूप से सभ्य आबादी के अध्ययन के रूप में कल्पना की गई थी, जबकि मानवविज्ञान को आदिम आबादी के अध्ययन से संबंधित था।

VII. **धर्म का मानवशास्त्र:** लोगों में धर्म की उत्पत्ति के संबंध में कई सिद्धांत हैं। कुछ प्रमुख सिद्धांत एनिमिज़्म, एनिमेटिज़्म, मानावाद और आदिम एकेश्वरवाद हैं। मनुष्य और प्रकृति के बीच अंतर के बारे में लोगों की धारणाओं का अध्ययन सबसे पहले किया जाता है। प्राकृतिक शक्ति और सुपर-प्राकृतिक शक्ति में विश्वास। गैर-साक्षर और किसान समाजों के बीच अनुष्ठानों और समारोहों सहित धार्मिक परंपराओं के संचालन का विस्तार से अध्ययन किया जाता है। धर्म के क्षेत्र में वर्जित

और कुलदेवता जैसे व्यवहारों की भी जांच की जाती है। जादू, धर्म और विज्ञान के बीच मतभेदों पर चर्चा और बहस की जाती है।

VIII. **इथनोलोजी:** इथनोलोजी, सांस्कृतिक मानवविज्ञान के तहत अध्ययन का एक और क्षेत्र है। इसने 1840 में एक मान्यता प्राप्त शाखा के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज की और अगले सौ वर्षों के दौरान यह बहुत विकसित हुई। यह दुनिया की संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन करता है और संस्कृति के सिद्धांत पर जोर देता है।

IX. **नृजातिवर्णन:** एक सांस्कृतिक मानवविज्ञानी के लिए विभिन्न संस्कृतियों और सामाजिक-सांस्कृतिक प्रणालियों को निर्देशित करने वाले सिद्धांतों को जानने के लिए नृजातिवर्णन अध्ययन आवश्यक है। तथ्य की बात के रूप में नृजातिवर्णन अध्ययन के माध्यम से एकत्र आंकड़ों पर तथ्यों की व्याख्या करता है, उन्हें वर्गीकृत करता है और मानव की प्रकृति के संबंध में सिद्धांतों का निर्माण करता है। नृजातिवर्णन व्यवहार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अवलोकन के माध्यम से दुनिया के जीवित लोगों की संस्कृतियों का अध्ययन है। नृजातिवर्णन नस्ल का अध्ययन नहीं है, जो शारीरिक मानवविज्ञान का काम है।

X. **कला, संगीत, मनोरंजन:** अपनी जैविक, सामाजिक और आध्यात्मिक जरूरतों को पूरा करने के लिए प्राकृतिक, सामाजिक और अलौकिक वातावरणों को अपनाने से मनुष्य ऐसी अन्य गतिविधियों को करना चाहता है, जिससे उसे कुछ संतुष्टि और सुकून मिले। इसीलिए मनुष्य ने कला और मनोरंजन जैसे गीत और नृत्य, लोक कथाएँ, कविता, नाटक, कला और कई अन्य बौद्धिक कलाकृतियों का निर्माण किया । जीवन के स्तर को सुधारने की दृष्टि से मनुष्य नैतिकता और जीवन के मूल्यों जैसे आध्यात्मिक कार्यों में लग जाता है। तो सांस्कृतिक मानवविज्ञान में तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए ये उप विषय शामिल हैं।

XI. **लोक-साहित्य:** लोक-कथाओं को सांस्कृतिक मानवविज्ञान की शाखाओं में से एक माना जा सकता है। लेकिन इसे भी एक अलग अनुशासन माना गया है। यह एक विज्ञान है "जो सभ्य लोगों में पुरातन मान्यताओं और रीति-रिवाजों के अस्तित्व से संबंधित है। यह आम लोगों के विचारों, मान्यताओं, परंपराओं, अंधविश्वासों और पूर्वाग्रह से जुड़ी प्राचीन परंपराओं और रीति-रिवाजों से जुड़ी हर चीज का अध्ययन करता है। लोक कथाएं भी गीत, किंवदंतियां, मिथक, कहावतें, पहेलियां, लोक संगीत और लोक नृत्य के साथ-साथ लोक नाटक भी लोकगीतों के क्षेत्र से संबंधित हैं"।

1.1.6.3 प्रागैतिहासिक मानव विज्ञान

I. **जीवाश्मविज्ञान**: पेलियोन्टोलॉजी नामक एक और वैज्ञानिक अनुशासन है जो प्रागितिहास के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है और अपने जीवाश्म रूपों से विलुप्त नस्ल पर अध्ययन करने में सहायक है। यह हमें बताता है कि कैसे आधुनिक नस्ल उन विलुप्त जीवाश्म नस्ल से विकसित हुई है।

II. **प्रौद्योगिकी:** अपनी इच्छाओं को पूरा करने और प्राकृतिक वातावरण के साथ तालमेल बिठाने के लिए मनुष्य को कुछ भौतिक वस्तुओं जैसे उपकरण, हथियार, बर्तन, कपड़े, मकान, डोंगी आदि बनाने पड़ते थे, इसे भौतिक संस्कृति कहा जाता है। लोग भौतिक संस्कृति की इन वस्तुओं को बनाने की तकनीकों के अध्ययन को प्रौद्योगिकी के रूप में जाना जाता है। अतीत में संस्कृति के इस पहलू का अध्ययन प्रागैतिहासिक पुरातत्व की मदद से किया जा रहा है।

III. **नृजातीपुरातत्व:** नृजाती शब्द सामान्य सांस्कृतिक विशेषताओं द्वारा प्रतिष्ठित समूह को संदर्भित करता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन मानवविज्ञान का विषय है, जबकि एक निश्चित समय में लोगों के जीवन के कुल तरीके का वर्णनात्मक खाता नृजातिवर्णन के रूप में जाना जाता है। पुरातत्व वह मानवविज्ञान की शाखा है जो संस्कृतियों के ऐतिहासिक पुनर्निर्माण से संबंधित है जो अब मौजूद नहीं हैं। यह अपनी भौतिक विशेषताओं में मानव अतीत को फिर से संगठित करने में मदद करता है जिसमें लोग कैसे रहते हैं और पूजा करते हैं, उन्होंने कैसे बनाया, उनकी कलाएं, कब्रें आदि शामिल हैं। यह मनुष्य के प्रागितिहास पर विषय सामग्री प्रदान करता है जिसके बारे में कोई लिखित रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं है। इसका संबंध मनुष्य के सभी भौतिक अवशेषों से है। इस प्रकार, मानवविज्ञान का अध्ययन करने के लिए पुरातत्व का उपयोग अनिवार्य हो जाता है। यही कारण है कि इस शाखा को नृजातीपुरातत्व के रूप में जाना जाता है।

1.1.6.4 भाषाई नृविज्ञान

I. **इथनोलिंगुइस्टिकस (Ethnolinguistics):** भाषाई मानवविज्ञान यह शाखा अत्यधिक विशिष्ट है। इथनोलिंगुइस्टिकस (कभी-कभी सांस्कृतिक भाषाविज्ञान कहा जाता है) भाषाविज्ञान का एक क्षेत्र है जो भाषा और संस्कृति के बीच के संबंध का अध्ययन करता है, और जिस तरह से विभिन्न जातीय समूह दुनिया का अनुभव करते हैं। यह मानवविज्ञान और भाषा विज्ञान के बीच संयोजन है। मानवविज्ञान एक संपूर्ण समुदाय के जीवन के तरीके को संदर्भित करता है, अर्थात्, सभी विशेषताएं जो एक समुदाय को दूसरे से अलग करती हैं। वे विशेषताएँ किसी समुदाय या समाज के सांस्कृतिक पहलुओं को बनाती हैं। यह दुनिया के विभिन्न मानव समूहों की मृत और जीवित भाषाओं और

बोलियों का अध्ययन है। मानवविज्ञानी इनका अध्ययन करके भाषाओं की उत्पत्ति और विकास और उनके अंतर्संबंधों का पता लगाने की कोशिश करता है। फिर उन्हें वर्गीकृत किया जाता है। भाषाविद् मानवों के अतीत और उनकी संस्कृति के प्रसार का अनावरण करने में भी मदद करता है। अमेरिकी विश्वविद्यालयों में इथनोलिंगुइस्टिकस के स्वतंत्र विभागों को स्थापित करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। एक विज्ञान के रूप में भाषा का अध्ययन मानव विज्ञान से कुछ पुराना है। दोनों विषयों को मानवविज्ञान क्षेत्र के शुरुआती दिनों में निकटता से जोड़ा जाता है, जब मानवविज्ञानियों ने अलिखित भाषाओं का अध्ययन करने के लिए भाषा विज्ञान की मदद ली जैसे, विभिन्न संस्कृतियों में स्थानिक अभिविन्यास व्यक्त किया जाता है। कई समाजों में, कार्डिनल दिशाओं के लिए शब्द पूर्व और पश्चिम में सूर्योदय/सूर्यास्त के लिए दिए गए हैं। हालांकि, ग्रीनलैंड के इनुइट वक्ताओं के कार्डिनल दिशाओं के लिए नामकरण, भौगोलिक स्थलों जैसे नदी प्रणाली और तट पर किसी की स्थिति पर आधारित है। इसी तरह, युरोक में कार्डिनल दिशाओं के विचार का अभाव है, वे अपने प्रमुख भौगोलिक विशेषता, क्लैमथ नदी के संबंध में खुद को उन्मुख करते हैं।

1.1.6.5 अनुप्रयुक्त और क्रियात्मक मानवविज्ञान (Applied and Action Anthropology)

मानवविज्ञान के विभिन्न अनुप्रयोग हैं। नीचे उल्लेखित इसके कुछ अनुप्रयोग इस प्रकार हैं-

1. **मानवमिति (एन्थ्रोपोमेट्री):** मानवमिति (एंथ्रोपोमेट्री) शरीर के विभिन्न अंगों को मापने का विज्ञान है। यह शारीरिक मानवविज्ञान का एक अनिवार्य हिस्सा है, और इसकी मदद से शरीर के अंगों के विभिन्न मापों को लिया जाता है ताकि अंगों के अनुपात को पता चल सके। इस ज्ञान के साथ शारीरिक मानवविज्ञानी हवाई जहाज, रेलवे, क्लास रूम, कार्यालयों आदि में बैठने की व्यवस्था के संबंध में सलाह दे सकते हैं।अपराधियों का पता लगाने में शारीरिक मानवविज्ञान भी उपयोगी है। पैर और हाथ के निशान के ज्ञान से अपराधियों का पता लगाना आसान हो जाता है क्योंकि आदमी के जीवन काल के दौरान पैर और हाथ के निशान कभी नहीं बदलते हैं। इसी तरह बालों की बनावट और रक्त समूहों के विश्लेषण से भी अपराधियों का पता लगाने में मदद मिलती है। शारीरिक मानवविज्ञानी भी अविवाहित मां से पैदा हुए बेटे के पिता का पता लगाने के संबंध में सलाह दे सकते है।

भारत, बांग्लादेश और उत्तरी अफ्रीका में जनसंख्या विस्फोट एक बड़ी समस्या है। जनसंख्या विस्फोट पूरी मानव जाति के लिए एक खतरा बन गया है। इस समस्या से निपटने के लिए हरित क्रांति और परिवार नियोजन कार्यक्रमों के माध्यम से अधिक भोजन का उत्पादन करने के साथ-साथ मानव आबादी को नियंत्रित करने के लिए दो-तरफा रणनीति बनाई गई थी। सांस्कृतिक मानवविज्ञानी की सेवाएं इन विकास

कार्यक्रमों की योजना में उपयोगी हैं। इसी प्रकार निषेध के सफल कार्यान्वयन, परिवार नियोजन, प्रौढ़ शिक्षा और विभिन्न अन्य विकास कार्यक्रमों के लिए सांस्कृतिक मानवविज्ञानी की सेवाएं आवश्यक हैं।

भारत में राष्ट्रीय विघटन एक और क्षीण समस्या है। शारीरिक और सांस्कृतिक मानवविज्ञानी दोनों की सेवाएं जातिवाद, सांप्रदायिकता, क्षेत्रवाद, नस्लवाद आदि की समस्याओं को हल करने में मदद करने के लिए आवश्यक हैं। आजकल, विभिन्न उद्योगों में श्रम प्रबंधन की समस्याएं तीव्र हैं और श्रमिक हड़ताल अक्सर होते रहते हैं। इन समस्याओं को काफी हद तक कम किया जा सकता है अगर सांस्कृतिक मानवविज्ञानी की मदद से पहले मजदूरों के रहने और मनोवैज्ञानिक स्थितियों का अध्ययन किया जाए।

2. **क्रियात्मक नृविज्ञान:** यह सोल टैक्स द्वारा गढ़ा गया है। उनके अनुसार एक क्रियात्मक मानवविज्ञानी समाज में परिवर्तन की प्रक्रियाओं का अध्ययन करने और लोगों को परिवर्तन और मार्गदर्शन योजना के प्रतिकूल प्रभावों को इस तरह से दूर करने में मदद करने के लिए है कि लोग परिवर्तन की प्रक्रिया में बेहतर कार्य करें। यद्यपि यह मानवविज्ञान की एक उपशाखा के रूप में विकसित हुआ है । इस प्रकार के अध्ययन में मानवविज्ञानी खुद को समस्याओं के साथ अंतरंग रूप से शामिल करते हैं और कार्रवाई के संदर्भ में अपने अध्ययन का उपयोग करते हैं। इस तरह के एक अध्ययन में, मौलिक शोध और व्यवहारिक अनुसंधान के बीच का अंतर आमतौर पर गायब हो जाता है। मानवविज्ञानी अपने स्वयं के रूप में एक समस्या को स्वीकार करता है और परीक्षण और त्रुटि विधि के माध्यम से आगे बढ़ता है।

1.1.7 सारांश (Summary)

यदि हम मानवों को समझने का लक्ष्य रखते हैं, तो यह आवश्यक है कि हम सभी समय और स्थानों के मानवों का अध्ययन करें। हमे प्राचीन मानव और आधुनिक मानव का अध्ययन करना पड़ेगा। हम उनकी संस्कृतियों और उनके जैविकी का अध्ययन करना चाहिए। क्या हम समझ सकते हैं कि आम तौर पर मानव होने का सच क्या है? अगर हम सिर्फ अपने समाज का अध्ययन करें, हम केवल ऐसे स्पष्टीकरण डे पाएंगें जो संस्कृति-बद्ध हैं, सामान्य या अधिकांश या सभी मनुष्यों पर लागू नहीं होता है। मानवविज्ञान हमें एक ऐसी समझ और दृष्टिकोण देता है जिसके द्वारा हम सभी काल के मानव का समग्र रूप से अर्थात सामाजिक, सांस्कृतिक और जैविक रूप से वैज्ञानिक अध्ययन कर सकते हैं।

1.1.8 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मानवविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. मानवविज्ञान की विभिन्न शाखाओं का परिचयात्मक विवरण लिखें।
3. शारीरिक/जैविक एवं पुरातात्विक मानवविज्ञान की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
4. मानवविज्ञान के क्षेत्रों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
5. अनुप्रयुक्त एवं क्रियात्मक मानवविज्ञान की व्याख्या कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मानवविज्ञान की परिभाषा और सामान्य उद्देश्य बताइए।
2. मानवविज्ञान के क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए।
3. मानवविज्ञान की शाखाओं के बीच अंतर सपष्ट कीजिए।
4. मानविज्ञान क्या है? स्पष्ट कीजिए।
5. सामाजिक-सांस्कृतिक मानवविज्ञान को स्पष्ट कीजिए।

1.1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. D.E. Hunter and Phillip Whitten 1979 'What is Anthropology?' In "Anthropology: Contemporary Perspectives" eds. D.E. Hunter and P. White. Second Edition Little Brown and Company. Boston.
2. Monaghan, John and Peter Just 2000 'Social and Cultural Anthropology: A very Short Introduction'. Oxford University Press.
3. Stararfield, Thomas (ed.) 1997 "The Dictionary of Anthropology" Blackwell Publishers Ltd. UK. 7 Jorgensen, D.L. 1989 "Participant Observation" Sage Publications, Inc. USA.

इकाई 2 सामाजिक मानवविज्ञान: प्रकृति और क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

1.2.0 उद्देश्य
1.2.1 प्रस्तावना
1.2.2 सामाजिक मानवविज्ञान: मानवविज्ञान की एक शाखा के रूप में
1.2.2.1 सामाजिक मानवविज्ञान का अर्थ और परिभाषा
1.2.2.2 सांस्कृतिक मानवविज्ञान
1.2.2.3 सामाजिक मानवविज्ञान कि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
1.2.2.4 सामाजिक मानवविज्ञान का उद्देश्य
1.2.3 सामाजिक मानवविज्ञान की प्रकृति और क्षेत्र
1.2.3.1 सामाजिक मानवविज्ञान का क्षेत्र
1.2.3.2 भारत में सामाजिक मानवविज्ञान
1.2.3.3 वर्तमान परिदृश्य
1.2.3.4 सामाजिक मानवविज्ञान का भविष्य
1.2.4 सारांश
1.2.5 बोध प्रश्न
1.2.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप यह जानने में सक्षम होंगे कि:

- सामाजिक मानवविज्ञान किसे कहा जाता है?
- सामाजिक मानवविज्ञान की विषय-वस्तु क्या है?
- सामाजिक मानवविज्ञान का एतिहासिक परिदृश्य क्या है? यह विषय कैसे विकसित हुआ था?
- भारत में सामाजिक मानवविज्ञान कैसे विकसित हुआ?
- सामाजिक मानवविज्ञान का भविष्य और वर्तमान परिदृश्य?

1.2.1 प्रस्तावना

यह इकाई सामाजिक मानवविज्ञान और इसके क्षेत्र के उद्भव का पता लगाएगी। सामाजिक मानवविज्ञान के विकास और कार्यक्षेत्र को जानना एक महत्वपूर्ण विषय है। हम जानते है सामाजिक मानवविज्ञान कई चरणों में विकसित हुआ है। सामाजिक मानवविज्ञान कि वर्तमान प्रकृति रातों रात नहीं बनी अपितु इसके लिए कई सैद्धांतिक बहसें हुई हैं। आज तक सभी मामलों कि बहस समाप्त नहीं हुई है। तो, इन मुद्दों को समझने के लिए विद्यार्थियों के लिए यह महत्वपूर्ण है कि विषय से संबंधित इतिहास को भी जानें। इसके साथ-साथ आप यह भी समझेंगे कि मानवविज्ञान का उद्देश्य तथा इसकी विषयवस्तु क्या है।

1.2.2 सामाजिक मानवविज्ञान: मानवविज्ञान की एक शाखा के रूप में

मानवविज्ञान कि चार शाखाओं में से एक सामाजिक मानवविज्ञान के अंतर्गत मानव के सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता और उनके कारकों का अध्ययन किया जाता है, वे कारक आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय, सामाजिक भूमिकाएँ, नातेदारी, सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक पहचान, वर्चस्व के सांस्कृतिक आयाम और सांस्कृतिक ज्ञान हो सकते हैं।

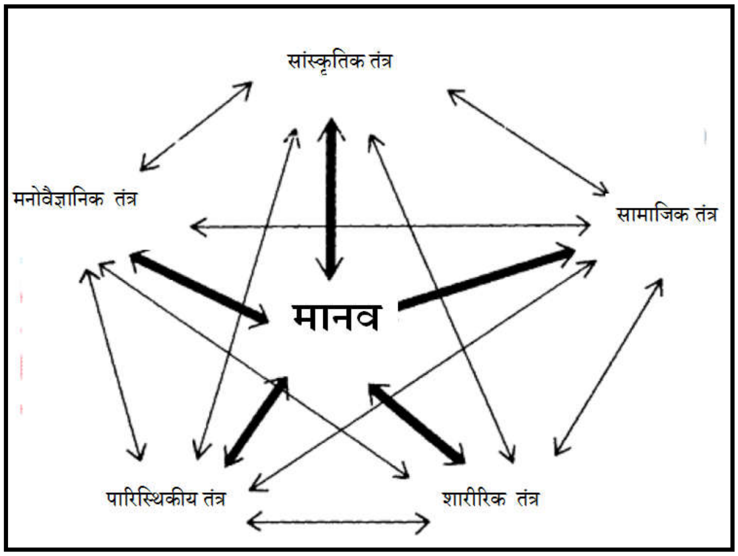

चित्र 1: सामाजिक मानवविज्ञान का अन्य तंत्रों से अंतर्संबंध

सरल शब्दों में कहा जाये तो सामाजिक मानवविज्ञान, मानवविज्ञान कि वह शाखा है जिसके अंतर्गत मानव के सामाजिक आयाम का मानव के उद्भव से लेकर वर्तमान तक का वैज्ञानिक अध्ययन है।

सामाजिक मानवविज्ञान, मानवविज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा होने के साथ-साथ इसका संबंध जीवित लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक और लोगों के जीवन और परंपराएं के विवरण और विश्लेषण से है (पोडोलेस्की और ब्राउन, 1997)। सामाजिक मानवविज्ञान संस्कृति की अवधारणा को अपने केन्द्र में रख कर समकालीन और ऐतिहासिक मानव समाजों का अध्ययन करते हैं (हावर्ड और ड्यूनिफ-हटिस, 1992)। मानवविज्ञानी जिन लोगों का अध्ययन करते हैं, उन लोगों के बीच क्षेत्रकार्य करते हैं और अपने अन्वेषणों के

परिणामों का 'नृजातीयवर्णन' (ethnography) करते हैं। सामाजिक मानवविज्ञान का संबंध विश्व के समाजों के बीच समानता और विभिन्नता के विश्लेषण से है। इन सैद्धांतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए तुलनात्मक अध्ययन जरुरी है और ऐसे मानवविज्ञानियों को इथनोलोजिस्ट (ethnologists) कहा जाता है। इस प्रकार, सामाजिक मानवविज्ञान के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं 'नृजातीयवर्णन' (ethnography) और इथनोलोजि (ethnology)। जहाँ 'नृजातीयवर्णन' अनुभवजन्य अध्ययन या संस्कृति और जीवन के तरीकों के वर्णन है और इथनोलोजि अतीत या वर्तमान के विभिन्न समाजों में पाई जाने वाली समानता और विवधता का सैद्धांतिक अध्ययन है। इसके अतिरिक्त सामाजिक मानवविज्ञान कई अन्य विशिष्ट विषय अध्ययन के क्षेत्र हैं। इनमें से कुछ हैं: कला, चिकित्सा का मानवविज्ञान, शहरी/ग्रामीण, आर्थिक मानवविज्ञान, राजनीतिक मानवविज्ञान, विकासीय मानवविज्ञान, धर्म का मानवविज्ञान, कानूनी मानवविज्ञान, जनसांख्यिकीय मानवविज्ञान, पारिस्थितिक मानवविज्ञान, मनोवैज्ञानिक मानवविज्ञान आदि।

सामाजिक मानवविज्ञान शब्द का उपयोग आमतौर पर ग्रेट ब्रिटेन और अन्य सामान्य राष्ट्रों में किया जाता है। प्रो. क्लाउड लेवी-स्ट्रॉस के समर्थन के साथ, यह शब्द भी बड़े पैमाने पर है फ्रांस, नीदरलैंड और स्कैंडिनेवियाई देशों में उपयोग किया जाता है। सामाजिक मानवविज्ञान संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैंड और अन्य देशों में विभिन्न अर्थों को संदर्भित करता है। यूरोपीय महाद्वीप में इसलिए, हम अक्सर सामाजिक शब्द को विविध प्रकृति से संदर्भित करते हैं। ग्रेट ब्रिटेन में मानवविज्ञान शारीरिक मानवविज्ञान को संदर्भित करता है जो मानव के जैविक पहलू का अध्ययन करता है। इंग्लैंड में सामाजिक मानवविज्ञान यूरोपीय महाद्वीप के अन्य देशों की तरह समाजशास्त्र के रूप में समझा जाता है। संक्षेप में, यूरोप में ही सामाजिक मानवविज्ञान के दो अलग-अलग अर्थ हैं। पर संयुक्त राज्य अमेरिका में, सामाजिक मानवविज्ञान को बड़ा और व्यापक अनुशासन माना जाता है। इसमें विभिन्न पहलुओं से मनुष्य के अध्ययन को शामिल किया गया है। यह न केवल मानव को सामाजिक प्राणी मानता है अपितु उसके सांस्कृतिक पहलू पर भी जोर देता है।

उन्नीसवीं सदी में, 'इथनोलोजि (ethnology)' शब्द का प्रयोग होता था न कि सामाजिक मानवविज्ञान। 'इथनोलोजि (ethnology)' को नृजातीय समूहों के विविध व्यवहार का अध्ययन कहा जाता था। सांस्कृतिक विभिन्नता इस तरह के अध्ययन का एक प्रमुख हिस्सा था। इसके साथ ही, इसमें सस्कृति परिवर्तन का भी अध्ययन किया जाता था। कभी-कभी, मानवविज्ञान के संदर्भ में सामाजिक मानवविज्ञान को परिभाषित किया जाता है। वह मानवविज्ञानी, जो सामाजिक संबंधों जैसे कि परिवार, नातेदारी, उम्र समूह, राजनीतिक संगठन, कानून और आर्थिक गतिविधियां (जिसे सामाजिक संरचना कहा जाता है) पर ध्यान केंद्रित करते हैं उन्हें सामाजिक मानवविज्ञानि कहा जाता है।

1.2.2.1 सामाजिक मानवविज्ञान का अर्थ और परिभाषा

सामाजिक मानवविज्ञान को एक वाक्य में परिभाषित कर पाना बहुत ही जटिल कार्य है। सामाजिक मानवविज्ञान एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न **"मानव होने का क्या तात्पर्य है?"** को संबोधित करता है। इस प्रश्न के उत्तर हेतु वह विश्व के अलग-अलग स्थान में रहने वाले लोगों में अपने जीवन को व्यवस्थित करने के लिए बनाये गए परिवार, समुदाय, उनके आस-पास की दुनिया के बारे में और एक अच्छा जीवन जीने से संबंधित विचारों का अध्ययन करता है। **इवांस प्रिचार्ड** के अनुसार- 'सामाजिक मानवविज्ञान में सभी मानव संस्कृतियों और समाजों का अध्ययन शामिल है'। मूल विचार यह है कि यह दुनिया भर के मानव समाजों की संरचना का पता लगाने की कोशिश करता है। सामाजिक मानवविज्ञान यह स्थापित करना चाहता है कि समाज किसी भी देश का हो वह एक संगठित समष्टि दर्शाता है। इन समाजों में सिर्फ रीति-रिवाज या मान्यताएं ही अलग-अलग नहीं है बल्कि काम करने, रहने, शादी करने, पूजा करने, राजनीतिक आयोजन करने आदि में भी भिन्न हैं। सब कुछ अलग है क्योंकि इन संरचनाओं, योजनाओं के पीछे जो विचार हैं वे अलग हैं। सामाजिक मानवविज्ञान, एक तरफ, विभिन्न जनजातीय लोगों के बीच सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताओं का अध्ययन करता है तथा दूसरी ओर यह आदिवासी सामाज के बीच पाई जाने वाली समानताओं का भी विश्लेषण करता है। वास्तव में, जब हम आदिवासी अर्थव्यवस्था को समझने की कोशिश करते हैं तो एक विशेष समूह, उदाहरण के लिए मुंडा जनजाति, हम यह पता लगाने की कोशिश करते हैं कि यह अर्थव्यवस्था किस तरह से मुंडा समाज के अन्य पहलू से जुड़ी है। **जॉन लुईस** ने सामाजिक मानवविज्ञान को बहुत ही रूढ़िवादी शैली में परिभाषित किया है। उनके अनुसार सामाजिक मानवविज्ञान सामाजिक संस्थाओं के अध्ययन का एक तुलनात्मक अनुशासन है। हालाँकि सामजिक मनाविज्ञान को आदिम समाज के अध्ययन तक सिमित करने के बावजूद भी, लुईस यह सुझाव देते हैं कि इसका उपयोग देशज समाज के अध्ययन के लिए भी किया जा सकता है।

दूसरी ओर एरिकसेन का मनना है कि सामाजिक मानवविज्ञान में लघु स्थानों के समाजों के अध्ययन पर जोर दिया जाता है। वह तर्क देते हैं कि भले ही सामाजिक मानवविज्ञान का संबंध लघु स्थानों के समाजों से है, लेकिन ये उनके बड़े मुद्दों को संदर्भित करता है।

पिडिंगटन के अनुसार, "सामाजिक मानवविज्ञानी समकालीन आदिम समुदायों की संस्कृतियों का अध्ययन करते हैं"। सामाजिक मानवविज्ञान की यह परिभाषा थोड़ी संकीर्ण है क्योंकि मानवविज्ञान में केवल आदिम संस्कृतियों का अध्ययन नहीं बल्कि समकालीन संस्कृतियों का भी अध्ययन करते हैं।

एस॰ सी॰ दुबे ने "सामाजिक मानवविज्ञान को मानवविज्ञान के उस हिस्से के रूप में परिभाषित किया जिसमें संस्कृति के भौतिक पहलुओं के बजाय सामाजिक संरचना और धर्म के अध्ययन पर प्राथमिक ध्यान दिया जाता है"। यह स्पष्ट है कि सामाजिक मानवविज्ञान सामाजिक संरचना जैसे सामाजिक संस्था, सामाजिक संबंध और सामाजिक गतिविधियों आदि के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करता है।

चार्ल्स विनिक ने कहा है कि “सामाजिक मानवविज्ञान सामाजिक व्यवहार का अध्ययन है, विशेष रूप से सामाजिक रूपों और संस्थानों के व्यवस्थित तुलनात्मक अध्ययन है”।

संक्षेप में, सामाजिक मानवविज्ञान सभी देशों और युगों के मनुष्य के सामाजिक व्यवहार और सामाजिक घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन है।

1.2.2.2 सांस्कृतिक मानवविज्ञान

सामाजिक-सांस्कृतिक मानवविज्ञान में विभाजन को पूरी दुनिया में आसानी से स्वीकार नहीं किया जाता है। हमने पहले ही बताया है कि सामाजिक मानवविज्ञान के संदर्भ में विभिन्न देश में अलग-अलग शब्द हैं। इसी तरह विभिन्न देशों में सामाजिक-सांस्कृतिक मानवविज्ञान शब्द भी अलग है। सांस्कृतिक मानवविज्ञान शब्द अमेरिका में लोकप्रिय है। अमेरिका में, सांस्कृतिक मानवविज्ञान पर जोर दिया जाता है क्योंकि उनका मानना है कि मानव जैविक और सामाजिक आदमी से अधिक सांस्कृतिक भी है। संस्कृति हमें सभ्यता को समझने में मदद करती है, भले ही समय और स्थान विशेष कि हो। अमेरिकी सांस्कृतिक मानवविज्ञान में पुरातत्व भी शामिल है। संस्कृति के अध्ययन पर विशेष जोर ***अमेरिकी स्कूल ऑफ थॉट*** को एक विशेषता प्रदान की, जिसके परिणामस्वरूप ethnology का निर्माण हुआ।

मानव के बारे में ज्ञान के रूप में मानवविज्ञान उन लोगों के सांस्कृतिक पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करता है जो स्वाभाविक नहीं है बल्कि अर्जित किये गए हैं। हार्सकोविट्स के अनुसार, सांस्कृतिक मानवविज्ञान मानव के उन तरीकों का अध्ययन करता है जिनके द्वारा उसने अपनी प्राकृतिक बसाहट के साथ सामंजस्य बनाया, सामाजिक परिवेश का निर्माण किया और कैसे इन रीति-रिवाजों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सीखा, बनाए रखा और सौंपा जाता है।

'संस्कृति' शब्द अपने आप में जटिल है। संस्कृति को विभिन्न मानवविज्ञानी द्वारा अलग तरीके से परिभाषित किया गया है। संस्कृति की सबसे स्वीकृत और संक्षिप्त परिभाषा ‘संस्कृति समाज के सदस्यों द्वारा अधिगृहीत हर एक तत्व है’ के रूप में दी जा सकती है। जो भी भौतिक और अभौतिक सामग्री मानव ने समाज के एक सदस्य के रूप में हासिल किया है वह सांस्कृतिक मानवविज्ञान का विषय। मनुष्य के कार्यो द्वारा निर्मित मानव-परंपराओं, लोकगीतों, सामाजिक संस्थानओं और अन्य सामाजिक तंत्र सब कुछ शामिल है। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि अमेरिकी मानवविज्ञानी न केवल सांस्कृतिक अभिविन्यास का अध्ययन करते हैं बल्कि सांस्कृतिक मानवविज्ञान के क्षेत्र के तहत सामाजिक पहलु भी आता है। यह कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक मानवविज्ञान एक व्यापक शब्द है जो मनुष्य के सभी सामाजिक पहलुओं को सम्मलित करता है लेकिन सांस्कृतिक पहलुओं पर जोर देता है। सांस्कृतिक मानवविज्ञानी के लिए, समाज और संस्कृति बिना सामाजिक व्यवस्था के उभर नहीं सकते। इस संदर्भ में डेविड बिडनी कहते हैं कि

'सामाजिक और सांस्कृतिक मानवविज्ञान को मानवविज्ञान कि शाखाओं के रूप में समझा जाता है जिसके अंतर्गत मनुष्य के समाज और संस्कृति के अध्ययन को सम्मलित किया गया है।

1.2.2.3 सामाजिक मानवविज्ञान कि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सामाजिक मानवविज्ञान, जैसा कि हम इसे भारत, दक्षिण अफ्रीका और अमेरिका के बाहर कहीं और पाते हैं, की उत्पत्ति इंग्लैंड से होती है। इवांस-प्रिचर्ड ने सामाजिक मानवविज्ञान की इंग्लैंड में उत्पत्ति और विकास का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उनका कहना है कि मानवविज्ञान, इथ्नोलोजी के नाम से 1885 से ऑक्सफोर्ड में एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता था। यह क्रमशः कैम्ब्रिज में 1900 और 1908 में लंदन में शुरू किया गया था। लेकिन, पहला पद सामाजिक मानवविज्ञान के नाम से विश्वविद्यालय में, 1908 से शुरू हुआ था। सर जेम्स फ्रेजर को 1908 में लिवरपूल में मानद प्रोफेसर बनाया गया। तब से विषय व्यापक हो गया है और मान्यता प्राप्त हुई। इसे अब ग्रेट ब्रिटेन में सोशल एंथ्रोपोलॉजी के नाम से पढ़ाया जाता है। लेकिन यह तर्क दिया जाता है कि ऐतिहासिक रूप से, 18वीं शताब्दी से कुछ समय पहले मानवविज्ञान शुरू हुआ था।

19 वीं शताब्दी के सामाजिक मानवविज्ञानी डार्विन और उनके सहयोगियों के निष्कर्षों से बहुत प्रभावित थे। इस अनुशासन का विकास में सामाजिक डार्विनवादियों द्वारा दी गई सामाजिक मानवविज्ञान की परिभाषा एक मील का पत्थर है। वर्तमान मानवविज्ञान की नींव हेनरी मेन कि किताब प्रिमिटिव ला (1861) और लुईस हेनरी मॉर्गन की पुस्तकें, प्रिमिटिव सोसाईटी (1877) में रखी थी। ये दोनों लेखकों ने आदिम समाज के सिद्धांतों को विकसित किया जिसका प्रभाव 20 वीं शताब्दी तक देखने को मिलता है। मॉर्गन द्वारा एक सिद्धांत प्रतिपादित किया गया था; अन्य सिद्धांत भी थे; उदाहरण के लिए, वेस्टमार्क का मानव विवाह का सिद्धांत; ब्रिफॉल्ट ने परिवार के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। यहां निष्कर्ष यह है कि उद्विकासवादियों की एक टीम थी, जिसमें संस्कृति, धर्म और सामाजिक मानवविज्ञान के अन्य क्षेत्र के सिद्धांत शामिल थे। इन विकासवादियों में डब्ल्यू.एच.आर.रिवर्स, टाइलर, फ्रेज़र, विलियम जेम्स, ए.सी. हेडन और चार्ल्स सेलिगमैन। ये सभी प्रारंभिक सामाजिक मानवविज्ञानी हैं और सामाजिक विकास के विज्ञान के रूप में सामाजिक मानवविज्ञान को परिभाषित किया। दूसरे शब्दों में, सामाजिक मानवविज्ञान समाज, धर्म, विवाह, रिश्तेदारी आदि सामाजिक संस्थाओं की उत्पत्ति और विकास का अध्ययन करता है।

फ्रांज बोआस और मैलिनोवस्की को अक्सर पहले आधुनिक मानवविज्ञानी के रूप में माना जाता है। बोआस जर्मनी के थे लेकिन वह 1880 में अमेरिकी इंडियन का अध्ययन करने के लिए अमेरिका आए थे। उन्होंने खुद क्षेत्र अनुसंधान किया और आधुनिक अमेरिकी सांस्कृतिक मानवविज्ञान की स्थापना की। मैलिनोवस्की के अनुसार, प्रकार्यात्मकता संस्कृति विकास का सबसे महत्वपूर्ण तरीका है। मैलिनोवस्की के अनुसार, सामाजिक मानवविज्ञान आदिवासी समाज के विभिन्न हिस्सों के आपसी संबंध से संबंधित है। अन्य शब्दों में , आदिवासी अर्थव्यवस्था, राजनीति, रिश्तेदारी आदि सभी परस्पर जुड़े हुए हैं। उनके अनुसार,

सामाजिक मानवविज्ञान आदिवासी समाज के सदस्यों के बीच कार्यात्मक संबंधों का अध्ययन करने में रुचि रखता है। रेडक्लिफ-ब्राउन, मैलिनोवस्की के समकालीन, ने सामाजिक संरचना की अवधारणा विकसित की और उसके रूपों की व्याख्या की। यह सामाजिक मानवविज्ञान में एक और महत्वपूर्ण विकास है। उनके अनुसार, सामाजिक संरचना एक व्यक्ति की प्रस्थिति और उसकी भूमिका के अध्ययन से संबंधित है। दूसरे शब्दों में, यह एक संस्था के भीतर सामाजिक संबंध के नेटवर्क से संबंधित है। रेडक्लिफ-ब्राउन ने मानवविज्ञान को अभी और यहीं के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया। उन्होंने भी प्राथमिक आंकड़ों पर जोर दिया। इस प्रकार, सामाजिक मानवविज्ञानी वर्तमान के सामाजिक संरचना, सामाजिक संस्थाओं और उनके कार्यों के परस्पर संबंध पर ध्यान केंद्रित करने लगे।

लेकिन इस प्रवृत्ति को कुछ आलोचनाओं का भी सामना करना पड़ा जैसे- (1) इससे सामाजिक परिवर्तन का पता नहीं चलता। इसका संबंध केवल सामजिक व्यवस्था से है। (2) जो कुछ भी इसने परिवर्तन माना है, वह परिवर्तन अनुकूली है। पर हर समाज परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरता है। कभी-कभी क्रांतिकारी रास्ते से परिवर्तन आता है। तो, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक अध्ययन इस क्षेत्र को सम्मलित करने में असमर्थ है और इसने आलोचना का द्वार खोल दिया है। इसलिए, 1940 के दशक तक मानवविज्ञानियों ने उद्विकासवाद का अध्ययन करने की आवश्यकता को पुनर्जीवित किया। नव-उद्विकासवाद का दृष्टिकोण में पुरातत्व के क्षेत्र को सम्माहित किया गया। वी.गॉर्डन चाइल्ड, लेस्ली व्हाइट और जूलियन स्टीवर्ड के विचार इस स्कूल का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्होंने नए परिप्रेक्ष्य के साथ सामाजिक विकास को परिभाषित किया। उद्विकास के अध्ययन के विभिन्न नए दृष्टिकोणों के प्रश्न, विशेष को सामान्य के साथ कैसे संयोजित किया जाए पर ध्यान आकर्षित किया गया। मार्विन हैरिस के लेखन जिन्होंने रेडक्लिफ-ब्राउन के कार्यो पर जोर दिया तथा संस्कृति के अध्ययन के लिए nomothetic नाममात्र और ideographic वैचारिक दृष्टिकोण के बीच अंतर को महत्वपूर्ण माना। इसी बीच, रॉबर्ट रेडफील्ड ने सभ्यता के अध्ययन को सामाजिक मानवविज्ञान के लिए जरुरी माना। रेडफील्ड ने लोक-नगर सातत्य और वृहद और लघु परंपराओं की अवधारणाओं को विकसित किया जो एक सभ्यता और उसके विभिन्न आयामों के अध्ययन के लिए बहुत उपयोगी अवधारणाएँ थीं जैसे कि आदिवासी, लोक, अर्ध-शहरी और शहरी। इस प्रकार, गाँव, शहर और शहर के अध्ययन की शुरुआत हुई। इस क्षेत्र में योगदान करने वाले अन्य विद्वान हैं; मॉरिस ई. ओप्लर, मिल्टन सिंगर, मैकीम मेरियट, मैंडल बॉम आदि।

किसी भी अन्य अनुशासन की तरह मानवविज्ञान भी कई नए रुझानों का सामना कर रहा है। सैद्धांतिक आयामों में प्रतीकवाद, नई नृवंशविज्ञान जैसे कई नए सिद्धांत आदि नए वादे लेकर आए हैं। इस क्षेत्र का कई अन्य नए सिद्धांतों और विचारों के साथ लगातार विस्तार होता रहा है। इसके साथ ही कई पहलुओं में सामाजिक मानवविज्ञान का विस्तार भी हुआ है। सामाजिक मानवविज्ञान में विकासात्मक अध्ययन एक प्रमुख क्षेत्र के रूप में उभर रहा है। नए क्षेत्र के नए तरीके और तकनीक भी सामने आ रहे हैं और

अनुसंधान को समृद्ध कर रहें हैं। उत्तर आधुनिकतावाद जैसे विचार नए मंच का निर्माण कर रहे हैं। कई मानवशास्त्रीय उप-क्षेत्र आ रहे हैं जो अलग और विशिष्ट सांस्कृतिक पहलुओं पर ज़ोर दे रहें हैं और सभी उपसर्ग 'एथनो' का उपयोग कर रहे हैं तथा संस्कृति के साथ उनके गठजोड़ को इंगित करें, जैसे कि एथनो-साइंस, एथनोम्यूज़ियोलॉजी, एथनोसाईकोलॉजी, नृवंश-लोकगीत। इस प्रकार, सामाजिक मानवविज्ञान निरंतर मानवशास्त्र की एक शाखा के रूप में विकसित हो रहा है।

1.2.2.4 सामाजिक मानवविज्ञान का उद्देश्य

पिडिंगटन ने सोशल एंथ्रोपोलॉजी के दो उद्देश्यों को स्वीकार किया है-

(i) सामाजिक मानवविज्ञान का प्राथमिक उद्देश्य मानव प्रकृति के बारे में जानकारी एकत्र करना है। मानव प्रकृति एक विवादास्पद विषय है। विभिन्न विद्वानों ने मानव प्रकृति के विभिन्न पहलुओं पर जोर दिया है। आदिम मनुष्य और समाज, मानव प्रकृति को उसके सबसे अल्पविकसित और कच्चे रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसलिए उनका अध्ययन मानव प्रकृति की बुनियादी अनिवार्यताओं की समझ के लिए उपयोगी है।

(ii) सामाजिक मानवविज्ञान का एक अन्य उद्देश्य सांस्कृतिक प्रक्रियाओं और परिणामों का अध्ययन है। अधिकांश आदिम समाज धीरे-धीरे अधिक विकसित समाज के संपर्क में आ रहे हैं। यह संपर्क धीरे-धीरे सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन पैदा कर रहा है।

रॉयल एंथ्रोपोलॉजिकल सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड के अनुसार सामाजिक मानवविज्ञान के सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

(i) अपने वर्तमान स्वरूप में आदिम संस्कृति का अध्ययन।

(ii) सांस्कृतिक संपर्क और विशिष्ट उद्देश्यों का अध्ययन।

(iii) सामाजिक इतिहास का पुनर्निर्माण।

(iv) सार्वभौमिक रूप से मान्य सामाजिक कानूनों की खोज।

इस प्रकार सामाजिक मानवविज्ञान का मुख्य उद्देश्य मानव समाज, सामाजिक संस्थाओं, संस्कृति और नातेदारी का अपने सबसे प्राथमिक रूप में अध्ययन करना है। वर्तमान समय की समझ के लिए उपयोगी होने के अलावा, यह मानव इतिहास तथा मानव समाज के साथ-साथ सामाजिक संस्थानों की प्रकृति के बारे में हमारे ज्ञान को भी बढाता है।

1.2.3 सामाजिक मानवविज्ञान की प्रकृति और क्षेत्र

सामान्यता, सामाजिक मानवविज्ञान का उद्देश्य मानव समाज का समग्र अध्ययन करना है। यह वास्तव में एक समग्र अध्ययन है और मानव समाज से संबंधित सभी पक्षों को सम्मलित करता है। संस्कृति इसके अंतर्गत स्वाभाविक रूप से आती है, क्योंकि यह मानव समाज कि अभिन्न अंग है। तो, बुनियादी

सामाजिक मानवविज्ञान का उद्देश्य मानव का सामाजिक प्राणी के रूप में अध्ययन करना है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए यह एक व्यापक क्षेत्र का अन्वेषण करता है, मानव सामाजिक जीवन के लगभग हर पहलू को सम्मलित करता है।

आधुनिक सामाजिक मानवविज्ञान का उद्देश्य सिर्फ मानव समाज का अध्ययन करना नहीं है, बल्कि आधुनिक मानव जीवन के जटिल मुद्दों को समझना भी है। जैसा कि मानवशास्त्रीय अध्ययन में आदिम लोगों पर ध्यान केंद्रित किया गया है, इन लोगों द्वारा आधुनिक समय में विकास की प्रक्रिया के कारण कई समस्याओं का सामना करना पड़ा इसलिए यह मुद्दा भी मानवविज्ञानीयों के अध्ययन के लिए बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। मानवविज्ञानी न केवल इन समस्याओं के अध्ययन से निपटते हैं, बल्कि इसके लिए एक समाधान खोजने का प्रयास भी करते हैं। विकासात्मक मानवविज्ञान और क्रियात्मक मानवविज्ञान आदि सामाजिक मानवविज्ञान के भीतर विशेष क्षेत्र हैं जो इस तरह की समस्याओं से निपटते हैं। इसलिए, हम कह सकते हैं कि सामाजिक मानवविज्ञान के क्षेत्र और उद्देश्य एक साथ चलते हैं; एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। जैसे-जैसे क्षेत्र बढ़ता है वैसे-वैसे एक नया उद्देश्य सामने आता है।

1.2.3.1 सामाजिक मानवविज्ञान का क्षेत्र

इवांस प्रिचर्ड (1966) के अनुसार, सामाजिक मानवविज्ञान में सभी मानव संस्कृतियों और समाज का अध्ययन शामिल है। बुनियादी तौर पर, यह मानव समाज की संरचना का पता लगाने की कोशिश करता है। सामाजिक मानवविज्ञान प्रत्येक मानव समाज को एक संगठित पूर्णता के रूप में मानता है। रीति-रिवाज, काम करने, जीवन यापन करने, विवाह करने, पूजा करने, राजनीतिक संगठन बनाने के पूरे स्वरूप- ये सभी एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न होते हैं। जैसा कि संरचना और इसके पीछे काम करने वाले विचार अलग-अलग होते हैं, समाज भी बहुत भिन्न-भिन्न होते हैं। सामाजिक मानवविज्ञान पहले इन मतभेदों का पता लगाने के साथ-साथ समानताओं को भी स्थापित करने की कोशिश करता है। जैसा कि हम विभिन्न संस्कृतियों और समाजों को देख सकते हैं, हम इन विभिन्न संस्कृतियों और समाजों में समानता भी देखते हैं। तो, मानवविज्ञानी इन विभिन्नताओं के साथ-साथ समानता का अध्ययन करते हैं।

मूल रूप से, सामाजिक मानवविज्ञान का अध्ययन सामाजिक संरचना के इर्द-गिर्द घूमता है। हम धर्म के अध्ययन का उदाहरण ले सकते हैं। दुनिया के विभिन्न हिस्सों में लोग विभिन्न धर्मों का पालन करते हैं। हर धर्म में अलग-अलग रस्में होती हैं और लोग इन रस्मों को अपनी-अपनी धार्मिक भूमिकाओं के अनुसार निभाते हैं। इन विभिन्न धर्मों के बीच सामान बात पारलौकिक सुपर-नेचुरल में विश्वास है। तो, अंतर और समानता दोनों सामाजिक मानवविज्ञान का अध्ययन विषय बन जाता है।

इवांस-प्रिचर्ड, समाजशास्त्र के साथ सामाजिक मानवविज्ञान की तुलना करते हुए, कहते हैं कि सामाजिक मानवविज्ञान का विषय के रूप में आदिम समाज है। दूसरे शब्दों में, यह आदिम, देशज लोगों,

पहाड़ियों और जंगल के लोगों, अनुसूचित जनजातियों और लोगों के ऐसे अन्य समूहों के अध्ययन से संबंधित है। क्षेत्रकार्य (फील्डवर्क) सामाजिक मानवविज्ञान का एक और अभिन्न अंग है। सामाजिक मानवविज्ञान में आंकडें क्षेत्र से एकत्र किए जाते हैं। इस प्रकार, सामाजिक मानवविज्ञान को अध्ययन के दो व्यापक क्षेत्र के संबंध में परिभाषित किया जा सकता है-

(1) आदिम समाज

(2) क्षेत्रकार्य (फील्डवर्क)।

जॉन बीट्टी (1964) ने वकालत की, कि सामाजिक मानवविदों को अन्य संस्कृतियों का अध्ययन करना चाहिए। यह मानवविज्ञान को सामाजिक संस्थानों के अध्ययन का एक तुलनात्मक अनुशासन बनाता है। थॉमस हायलैंड एरिकसन (1995) सामाजिक मानवविज्ञान में लघु स्थानों के अध्ययन का समर्थन करते हैं। एरिकसेन का कहना है कि सामाजिक मानवविज्ञान आदिम लोगों तक ही सीमित नहीं है; यह किसी भी सामाजिक प्रणाली का अध्ययन करता है और ऐसी सामाजिक प्रणाली की योग्यता यह है कि वह लघु स्तर का, गैर-औद्योगिक प्रकार का समाज है।

एरिकसन के अनुसार, सामाजिक मानवविज्ञान अध्ययन करता है:

1. लघु समाज का
2. गैर-औद्योगिक समाज का
3. समाज के छोटे और बड़े मुद्दे का

सामाजिक मानवविज्ञान के रूप में अलग-अलग सैद्धांतिक रूपरेखाएं सामने आईं, इसके अध्ययन की शुरुआत हुई आदिम समाज से। मॉर्गन ने उद्विकासवादी सिद्धांत को प्रतिपादित किया और मानव समाज में उद्विकास के अध्ययन को महत्वपूर्ण माना। उनके अनुसार मानव समाज तीन मूल चरणों से आगे बढ़ा है– अरण्यवस्था, बर्बरता और सभ्यता। ऐसे उद्विकासवादी दृष्टिकोण के साथ सामाजिक नृविज्ञानियों ने मानव समाज को उद्विकासवाद के आलोक में जांचना शुरू किया। संरचनात्मक- प्रकार्यात्मक का सैद्धांतिक ढांचा ब्रिटेन में एक लोकप्रिय दृष्टिकोण बन गया। सामाजिक मानवविज्ञान शब्द का उपयोग करने वाले ब्रिटिश मानवविज्ञानी ने समाज की अवधारणा पर जोर दिया है, जो उन व्यक्तियों का कुल है जो साथ-साथ रहते हैं और समान भावनाओं को साझा करते हैं। विभिन्न सामाजिक अंतर्संबंध और अंतःक्रियाएं उनके अध्ययन का उद्देश्य हैं। प्रकार्यावाद ने सामाजिक संस्थानों के प्रकार्यात्मक अध्ययन को प्रतिपादित किया। दूसरी ओर, अमेरिकी मानवविज्ञानी सांस्कृतिक मानवविज्ञान शब्द को पसंद करते हैं, सांस्कृतिक मानवविज्ञान शब्द ने संस्कृति की अवधारणा पर ध्यान केंद्रित किया है जो मानव व्यवहार, मौखिक या गैर-मौखिक और उनके उत्पादों- भौतिक या गैर-अभौतिक का योग है। सांस्कृतिक मानवविज्ञानी इसके पीछे के मूल्य को देखते हुए प्रत्येक हस्तक्षेप और अंतर्संबंध का विश्लेषण करने की कोशिश करते हैं। सभ्यता शब्द मानवविज्ञानियों में उद्विकासवादी सिद्धांत के बाद से जाना जाता था, लेकिन यह रॉबर्ट रेडफील्ड का अग्रणी काम था, जिन्होंने

सभ्यता के अध्ययन की शुरुआत करके सामाजिक मानवविज्ञान के विकास के इतिहास में एक आंदोलन लाया। उन्होंने लोक गांवों और शहरी केंद्रों का अध्ययन किया और उन दोनों के बीच सातत्य के स्वरूप और प्रक्रियाओं को समझने का प्रयास किया। इस प्रकार, उन्होंने लोक समाज, शहरी समाज और लोक-शहरी सातत्य की अवधारणा विकसित की। फिर ग्रामीण सभ्यता और कस्बे की एक इकाई के रूप में गाँव का अध्ययन शहरी सभ्यता के केंद्र के रूप में अस्तित्व में आया।

इस प्रकार, मानवविज्ञान केवल आदिम लोगों का अध्ययन नहीं है। सामाजिक मानवविज्ञान का विषय एक विशाल क्षेत्र को समाविष्ट करता है। यह आदिवासी समाज के साथ-साथ शहरी समाज का भी अध्ययन करता है। परिस्थितियों की परवाह किए बिना कोई भी संस्कृति और समाज परिवर्तन से परे नहीं है। पृथक / आदिम समाज भी समय के साथ बदलते हैं। कई बार परिस्थितियों के दबाव के कारण भी समाज नहीं बदलता है। यह पारंपरिक तरीके का सख्ती से पालन करते है, परंपरा को जीवित रखने की लगातार कोशिश करते हैं। सामाजिक मानवविज्ञान क्यों या क्यों नहीं समाज / संस्कृति बदलती है इसका भी अध्ययन करता है। लेकिन, परिवर्तन एक सतत प्रक्रिया, चाहे वह एक सुदूर और अलग-थलग गाँव हो या औद्योगिक शहर, हर जगह लोगों को अपने जीवन स्तर में कई तरह के बदलाव देखने को मिलते हैं, जो समय बीतने के साथ प्रकट होता है।

मनुष्य के जीवन के कई आयाम हैं और हर एक का विस्तार से अध्ययन करने के प्रयासों के परिणामस्वरूप सामाजिक मानवविज्ञान की प्राथमिक शाखा से कई उप-शाखाओं की उत्पत्ति और वृद्धि हुई है जैसे कि आर्थिक मानवविज्ञान, राजनीतिक मानवविज्ञान, मनोवैज्ञानिक मानवविज्ञान, धर्म का मानवशास्त्र इत्यादि। समाज की नई मांगों के साथ कई नई उप-शाखाएँ भी आ रही हैं जैसे- संचार और दृश्य मानवविज्ञान। सामाजिक मानवविज्ञान को अपने अध्ययन की प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए मानव समाज में सभी नए परिवर्तनों को समायोजित करना होगा। इस प्रकार, नए क्षेत्र अपने क्षेत्र का विस्तार करेंगे।

1.2.3.2 भारत में सामाजिक मानवविज्ञान

विश्व मानवविज्ञान के परिदृश्य में, भारतीय मानवविज्ञान बहुत युवा रूप में प्रकट होता है। आंद्रे बेते (1996) ने मानवशास्त्रियों (उनकी राष्ट्रीयता के बावजूद) द्वारा भारत में समाज और संस्कृति के अध्ययन का अर्थ में 'भारतीय मानवविज्ञान' शब्द का इस्तेमाल किया। भारतीय समाज और संस्कृति का अध्ययन देश के अंदर और बाहर विभिन्न मानवविज्ञानियों द्वारा किया जा रहा है। हालांकि, मानवविज्ञान भारत के विभिन्न प्रांतों में विभिन्न जनजातियों और जातियों की परंपराओं और विश्वासों के नृजतियवर्णन संकलन के साथ उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इसकी उत्पत्ति का श्रेय देता है। यह आंकडें ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान ही मानवशास्त्रीय द्वारा एकत्र किया गया था। अकादमिक हित के साथ सरकारी अधिकारियों और मिशनरियों ने पहली बार अठारहवीं शताब्दी में कुछ मानवशास्त्रीय आकडें एकत्र किए। लेकिन, इसके पीछे

का मकसद भारतीय समाजों और संस्कृतियों का अध्ययन करना नहीं था बल्कि ब्रिटिश प्रशासन को सुचारू संचालन के लिए मदद करना था। मिशनरियों का धार्मिक मकसद था। हालाँकि, प्रशासकों और मिशनरि ने जब विभिन्न प्रकार के लोग जो पूरी तरह से विभिन्न संस्कृतियों वाले थे को देखा तो वह चकित रह गए। उन्होंने लोगों और उनके तथ्यों का वर्णन करके, लेखन के माध्यम से अपने अजीब अनुभव को बताने की कोशिश की।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में, भारत में प्रशासकों और मिशनरियों ने भारतीय लोगों और उनके जीवन के बारे में बहुत कुछ लिखा। प्रशिक्षित ब्रिटिश अधिकारी जैसे रिस्ले, डाल्टन, थर्स्टन, ओ मेल्ली, रसेल, क्रुक, मिल्स और कई अन्य जो भारत में तैनात थे, ने भारत की जनजातियों और जातियों पर लिखा। इस दौरान कुछ ब्रिटिश मानवविज्ञानी जैसे रिवर्स, सेलिगमैन, रेडक्लिफ-ब्राउन, हट्टन ने भारत में आकर मानवविज्ञानी क्षेत्र का संचालन किया। इसके बाद पूरी शताब्दी के दौरान, भारत में मानवविज्ञानी सफलतापूर्वक आगे बढ़े। भारतीय नृविज्ञानियों ने पश्चिमी मानवविज्ञानी से काम के विचारों, रूपरेखाओं और प्रक्रियाओं को उधार लिया और अन्य संस्कृतियों के बजाय अपनी संस्कृति और समाज का अध्ययन करने का अभ्यास किया। विभिन्न विद्वानों जैसे एस. सी. रॉय, डी. एन. मजूमदार, जी. एस. घुरे, एस.सी. दुबे, एन. के. बोस, एल.पी. विद्यार्थी और एस. सिन्हा ने भारत में सामाजिक मानवविज्ञान की उत्पत्ति और विकास का पता लगाने की कोशिश की थी। एस. सी. रॉय का पेपर एंथ्रोपोलॉजिकल रिसर्च इन इंडिया (1921) से पहले प्रकाशित जनजातियों और जातियों के कार्यों को प्रतिबिंबित करता है। मानववैज्ञानिक ब्योरों में ब्रिटिश प्रशासकों और मिशनरियों के लेखन शामिल थे, क्योंकि 1921 से पहले भारत में मानवशास्त्रीय कार्य मुख्य रूप से इन लोगों द्वारा किया जाता था। इसके बाद, डी. एन. मजूमदार ने भारत में मानवविज्ञान के उद्विकास का पता लगाने की कोशिश की। यह प्रयास एस.सी. रॉय के पच्चीस वर्षों के बाद किया गया था। डी. एन. मजूमदार ने ब्रिटेन और अमेरिका में उत्पन्न संस्कृति के सिद्धांत के साथ भारत में मानवविज्ञान के विकासशील अनुशासन से संबंधित होने का प्रयास किया। अमेरिकी प्रभाव को पहली बार ब्रिटिश प्रशासकों और मिशनरियों के कार्यों के अलावा पहचाना गया।

जी.एस. घुरिए, ने अपने लेख में समाजशास्त्र, सामाजिक मनोविज्ञान और सामाजिक मानवविज्ञान (1956) के शिक्षण में लिखा है कि भारत में सामाजिक मानवविज्ञान ने इंग्लैंड, यूरोप या अमेरिका में विकास के साथ तालमेल नहीं रखा है। हालाँकि भारत में सामाजिक मानवविज्ञानी कुछ हद तक ब्रिटिश मानवविज्ञानी या कुछ कॉन्टिनेंटल स्कॉलर्स के काम से परिचित हैं, लेकिन अमेरिकी सामाजिक मानवविज्ञान का उनका ज्ञान अपर्याप्त नहीं है। एस. सी. दूबे (1952) ने कहा कि भारतीय मानवविज्ञान को सामाजिक कार्यकर्ताओं, प्रशासकों या राजनीतिक नेताओं से अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, ताकि अनुसंधान उन्मुख मुद्दों से उचित तरीके से निपटा जा सके। एन.के. बोस ने 1963 में अग्रलिखित तीन शीर्षकों के तहत भारत में

मानवविज्ञान की प्रगति पर चर्चा की- प्रागैतिहासिक मानवविज्ञान, शारीरिक मानवविज्ञान और सांस्कृतिक मानवविज्ञान।

1970 के दशक में गाँव के अध्ययन, जाति अध्ययन, नेतृत्व के अध्ययन और सत्ता संरचना, जनजातीय गाँव में नातेदारी और सामाजिक संगठन और एप्लाइड एंथ्रोपोलॉजी जैसे रुझान भारतीय परिदृश्य में आए और एल.पी. विद्यार्थी ने भारत में मानवविज्ञान के विकास का पता लगाते हुए इन मुद्दों पर चर्चा की। उन्होंने मनुष्य और समाज की उचित समझ के लिए विभिन्न विषयों से एकीकृत प्रभाव की आवश्यकता महसूस की। उनका मुख्य जोर 'भारतीयता' पर आधारित था। उनके अनुसार प्राचीन धर्मग्रंथों में परिलक्षित भारतीय विचारकों के विचार सामाजिक तथ्यों से भरे हुए थे और इसलिए उन्हें भारत की सांस्कृतिक प्रक्रिया और सभ्यता के इतिहास की समझ में खोजा जा सकता था। सुरजीत सिन्हा (1968) ने एल. पी. विद्यार्थी के दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए कहा कि भारतीय मानवविज्ञानी आसानी से पश्चिम के नवीनतम घटनाक्रमों का जवाब दे सकते थे लेकिन उन्होंने भारतीय स्थिति को तार्किक प्राथमिकता दी थी।

भारत में, मानवविज्ञान मिशनरियों, व्यापारियों और प्रशासकों के काम से शुरू हुआ, जहां प्रमुख ध्यान भारतीय लोगों की विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि थी। समृद्ध आदिवासी संस्कृति ने सामाजिक मानवविज्ञान के अध्ययन को आकर्षित किया। सामाजिक मानवविज्ञान अनुसंधान के लिए जनजातीय संस्कृति एक प्रमुख क्षेत्र बन गया। यह बदलते चलन के साथ जारी रहा और गाँव की व्यवस्था, और भारतीय सभ्यता के अध्ययन को समायोजित किया। अन्य सामाजिक संस्थान जैसे- धर्म, नातेदारी, विवाह आदि भी शोध के क्षेत्र में आए। भारतीय संस्कृति के रीति-रिवाजों और विविधता ने भारत के सामाजिक मानवविदों के बीच अनुसंधान का एक अनूठा क्षेत्र बनाया। अलग-अलग विचार जैसे कि प्रभु जाति, पवित्र संकुल, जनजाति-जाति सातत्य, लघु और वृहद परंपरा, संस्कृतिकरण आदि ने भारतीय मानवविज्ञान को एक नई दिशा प्रदान की। इस प्रकार, मजबूत भारतीय मानवशास्त्रीय विचार का एक निकाय बनाया गया। नए विचारों के जोड़ के साथ भारतीय मानवविज्ञान का विकास जारी है। पारिस्थितिकी, विकासात्मक अध्ययन आदि जैसे उभरते क्षेत्र भी सामने आ रहे हैं। भारत में मानवविज्ञानी आदिवासी अध्ययन में गहरी रुचि लेते हैं। वैश्वीकरण के दौर में नई चुनौतियां भी सामने आ रही हैं और भारतीय सामाजिक मानवविज्ञानी उस पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं।

1.2.3.3 वर्तमान परिदृश्य

स्वतंत्रता के बाद भारत ने सामाजिक सुधार की नई चुनौतियों का सामना किया, क्योंकि एक नई सरकार ने कार्यभार संभाला। भारतीय संस्कृति की पूरी धारणा का पुनर्निर्माण करना पड़ा, क्योंकि विविध सांस्कृतिक क्षेत्र एक ही छत के नीचे आ गए थे। विभिन्न आदिवासी समाज और संस्कृतियाँ इस बदलती स्थिति से निपटने में असमर्थ थे। प्रशासनिक नीतियों के अलावा, भारतीय सामाजिक नृविज्ञानियों ने इस तरह

के संकट को दूर करने के लिए पहल की और भारतीय सभ्यता की सामान्य छत के नीचे भारत में विविध संस्कृतियों के अध्ययन में रुचि दिखाई। सरकार की नीतियां इन सामाजिक मानवविज्ञान कार्यों से प्रभावित थीं क्योंकि ये कार्य आदिवासी विकास जैसे संवेदनशील मुद्दों से सम्बंधित था। यह रुझान भारतीय मानवविज्ञान के क्षेत्र में जारी है। आज, वैश्वीकरण के युग में, भारत में सामाजिक मानवविज्ञानी आदिवासी समुदायों के सामने नई चुनौतियों से निपटते हैं। विकास अध्ययन के साथ, पहचान और लैंगिक मुद्दे उनके बीच लोकप्रिय हैं। लोक संस्कृति का अध्ययन एक प्रमुख क्षेत्र में व्याप्त है। विकास अध्ययन के साथ, आदिवासी विस्थापन और पुनर्वास जैसे मुद्दों पर सामाजिक मानवविज्ञानी के लिए एक प्रमुख ध्यान केंद्रित किया गया है। जनजातीय कला, स्वदेशी ज्ञान प्रणाली का अध्ययन आदि नए वैश्विक मुद्दों के साथ लोकप्रियता प्राप्त कर रहे हैं जैसे- ग्लोबल वार्मिंग।

1.2.3.4 सामाजिक मानवविज्ञान का भविष्य

मानव समाज के प्रत्येक क्षेत्र में मानवविज्ञान बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। औपनिवेशिक काल के दौरान, यह एक प्रशासनिक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया गया था। सामाजिक मानवविज्ञान उस औपनिवेशिक धारणा से बाहर आ गया है और अब एक नया अनुशासनात्मक रास्ता बना रहा है। एक अकादमिक अनुशासन के रूप में इसका एक सुदृढ़ सैद्धांतिक आधार और अद्वितीय व्यावहारिक आयाम है। निकट भविष्य में भी यह नए सैद्धांतिक ढांचे के साथ अनुशासनात्मक परिवर्तनों को समायोजित करने में वास्तव में सक्षम है। मानवविज्ञान न केवल मानव जीवन के समकालीन स्वरूप को समाविष्ट करता है, बल्कि मानव समाज और जीवन में बदलावों का भी ध्यान से प्रलेखन करता है। यह मानव जीवन के ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक पक्ष को भी समाविष्ट करता है। इसलिए, यह मानव सभ्यता के प्रत्येक चरण के लिए बहुत प्रासंगिक है।

क्लाउड लेवी-स्ट्रॉस ने सामाजिक मानवविज्ञान के भविष्य की परिकल्पना एक अध्ययन के रूप में की है जो व्यक्तियों और समूहों के बीच संचार के मामले में पूर्ण है। संचार का अध्ययन, एक समाज में व्यक्तियों के बीच शब्दों और प्रतीकों का अर्थ, भाषा विज्ञान, ज्ञान, कला आदि के अध्ययन का गठन होगा। विभिन्न समूहों के बीच जीवन-साथी (मातृसत्तात्मक समाज में पुरुष और पितृसत्तात्मक समाज में महिला) के अध्ययन का गठन होगा। विवाह, परिजन समूह और रिश्तेदारी का अध्ययन। व्यक्तियों और समूहों के बीच वास्तु और सेवाओं का संचार आर्थिक संगठन और भौतिक संस्कृति के अध्ययन के दायरे का गठन करेगा। इस प्रकार, मानव समाज के अध्ययनों का अध्ययन संस्कृति के संदर्भ में नहीं, बल्कि उन संरचनाओं के संदर्भ में किया जा सकता है जो संस्कृति का प्रतीक हैं। सामाजिक मानवविज्ञान के क्षेत्र में ऐसे कई नवीन विचार आ रहे हैं और सिद्धांत और व्यवहार दोनों के मामले में इसका दायरा बढ़ता जा रहा है।

1.2.4 सारांश

इस इकाई में इस बात पर ध्यान केंद्रित किया गया था कि मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को समाविष्ट करने वाले अनुशासन के रूप में सामाजिक मानवविज्ञान कैसे विकसित हुआ है। सामाजिक मानवविज्ञान इस प्रकार, विभिन्न लक्ष्यों और दृष्टिकोणों के माध्यम से विभिन्न समय अवधि के साथ विकसित हुआ है और इसने मानव जीवन के लगभग सभी पहलुओं को सम्मलित किया है। आपने सामाजिक मानवविज्ञान के विभिन्न सैद्धांतिक ढांचे के बारे में सीखा। इन सैद्धांतिक रूपरेखाओं के साथ, मानव जीवन के विभिन्न मुद्दों के साथ सामाजिक मानवविज्ञान कैसे व्यवहार करता है, इस पर भी चर्चा की गई। सामाजिक मानवविज्ञान के वर्तमान और भविष्य के परिदृश्य पर भी चर्चा की गई है। आप इस इकाई के अध्ययन के बाद सामाजिक मानवविज्ञान के भारतीय और विश्व परिदृश्य के बारे में समझ पाएंगे।

1.2.5 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

6. मानवविज्ञान एवं सामाजिक मानवविज्ञान को स्पष्ट करते हुए दोनों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
7. सांस्कृतिक मानवविज्ञान की स्पष्ट व्याख्या कीजिए।
8. सामाजिक मानवविज्ञान के प्रकृति एवं क्षेत्र की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
9. भारत में सामाजिक मानवविज्ञान के क्षेत्रों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
10. सामाजिक मानवविज्ञान के भविष्य की व्याख्या कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सामजिक मानवविज्ञान को परिभाषित कीजिए।
2. सामाजिक मानवविज्ञान के इतिहास और विकास का वर्णन कीजिए।
3. भारत में सामाजिक मानवविज्ञान कैसे विकसित हुआ है?
4. सामाजिक मानवविज्ञान के उद्देश्य और क्षेत्र का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
5. सामाजिक मानवविज्ञान का उद्देश्य स्पष्ट करें।

1.2.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Bidney, D. 1953. *Theoretical Anthropology*. Columbia: Columbia University Press.
- Beattie, J. 1964. *Other Cultures: Aims, Methods and Achievements in Social Anthropology*. London: Routledge Kegan Paul.
- Beteille, Andre. 1996a. *Caste, Class and Power: Changing Patterns of Stratification in a Tanjore Village.* Delhi: Oxford University Press, 2nd ed.
- Beteille, Andre. 1996b. 'Inequality', in Alan Barnard and Jonathan Spencer (eds),
- *Encyclopaedia of Social and Cultural Anthropology*. London: Routledge.
- Bose, N.K. 1963. 'Fifty Years of Science in India: Progress of Anthropology and Archaeology'. *Indian Science Congress Association*.
- Dube, S.C. 1952. 'The Urgent Task of Anthropology in India', in the proceedings of the 1Vth *International Congress of Anthropology and Ethnological Sciences*, held at Vienna, 1952, published in 1956, pp. 273-75.
- Dube, S.C. 1962 'Anthropology in India', in *Indian Anthropology: Essays in Memory of D.N. Majumdar*. ed. T.N. Madan and Gopala Sarana. Bombay: Asia Publishing House.
- Eriksen, Thomas Hylland. 1995. *Small Places, Large Issues: An Introduction to Social and Cultural Anthropology*. 2nd edition 2001, London: Pluto Press.
- Evans-Pritchard, E. E. 1966. *Social Anthropology and Other Essays.* New York: Free Press.
- Ghurye, G.S. 1956. 'The Teachings of Sociology, Social Psychology and Social Anthropology'. *The Teachings of Social Sciences in India*. UNESCO Publication.
  1956 pp 161-73.

- Haddon, A. C. 1934. *History of Anthropology*. London: Watts and Co. chapter1. Majumdar, D.N. and T.N. Madan. 1957. *An Introduction to Social Anthropology*. Bombay: Asia Publishing House.
- IGNOU notes on SOCIAL ANTHROPOLOGY: NATURE AND SCOPE.
- Malinowski, Bronislaw. 1922. *Argonauts of the Western Pacific*. Sixth impression 1964. London: Routledge & Kegan Paul Ltd.
- Mair, Lucy. 1972. *An Introduction to Social Anthropology*. Oxford: Oxford University Press.
- Roy, S.C. 1923. 'Anthropological Researches in India'. *Man in India*. Vol-1 1921. Pp 11-56.
- Sinha, Surajit. 1968. 'Is There an Indian Tradition in Social Cultural Anthropology: Retrospect and Prospect'. Presented in a conference. *The Nature and Function of Anthropological Traditions*. New York: Wenner Gren Foundation for Anthropological Research.
- Vidyarthi, L.P. 1978. *Rise of Anthropology in India*. Delhi: Concept Publishing Company.

इकाई 3 सामाजिक मानवविज्ञान का अन्य विषयों से संबंध
(Relationship of Social Anthropology with Other Disciplines)

इकाई की रूपरेखा

1.3.0 उद्देश्य
1.3.1 प्रस्तावना (Introduction)
1.3.2 अन्य सामाजिक विज्ञान के विषयों के साथ सामाजिक मानवविज्ञान का संबंध
- **1.3.2.1** सामाजिक मानवविज्ञान और समाजशास्त्र (Social Anthropology and Sociology)
- **1.3.2.2** सामाजिक मानवविज्ञान और मनोविज्ञान (Social Anthropology and Psychology)
- **1.3.2.3** सामाजिक मानवविज्ञान और इतिहास (Social Anthropology and History)
- **1.3.2.4** सामाजिक मानवविज्ञान और इथनोलोजि (नृजातीय विज्ञान) (Social Anthropology and Ethnology)
- **1.3.2.5** सामाजिक मानवविज्ञान और अर्थशास्त्र (Social Anthropology and Economics)
- **1.3.2.6** सामाजिक मानवविज्ञान और राजनीति विज्ञान (Social Anthropology and Political Science)
- **1.3.2.7** सामाजिक मानवविज्ञान और सामाजिक कार्य (Social Anthropology and Social Work)
- **1.3.2.8** सामाजिक मानवविज्ञान और सांस्कृतिक अध्ययन (Social Anthropology and Cultural Studies)
- **1.3.2.9** सामाजिक मानवविज्ञान और साहित्य (Social Anthropology and Literature)
- **1.3.2.10** सामाजिक मानवविज्ञान और जनस्वास्थ्य (Social Anthropology and Public Health)
- **1.3.2.11** सामाजिक मानवविज्ञान और नीति और शासन (Social Anthropology and Policy and Governance)
- **1.3.2.12** सामाजिक मानवविज्ञान और प्रबंधन (Social Anthropology and Management)

1.3.3 सारांश (Summary)
1.3.4 बोध प्रश्न
1.3.5 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात, विद्यार्थी निम्नलिखित में समझ हो सकेंगे-

- सामाजिक मानवविज्ञान और विभिन्न विषयों के मध्य संबंधों को समझ सकेंगे।
- सामाजिक मानवविज्ञान की जैविक और सामाजिक कारकों की व्याख्या करने की क्षमता जिसके द्वारा मनुष्य की संस्कृति और व्यवहार को समग्रता से समझ सकेंगे।

1.3.1 प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक मानवविज्ञान वह मानवविज्ञान की शाखा है जो मानव संस्कृति से संबंधित है और समाज, सांस्कृति और सामाजिक घटनाओं पर जोर देती है. इसमें अंतर व्यक्तिगत और अंतर समूह संबंध विशेष रूप से गैर साक्षर लोगों के सम्मलित हैं। सभी सामाजिक विज्ञान मानव के व्यवहार का अध्ययन करते हैं, लेकिन मानवविज्ञान का संदर्भ, विषयवस्तु, दृष्टिकोण समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विषयों से बहुत अलग है। समाज की आंतरिक विशेषताएं के अध्ययन के अलावा, सामाजिक मानवविज्ञान समाज का बाहरी अध्ययन जैसे जनसंख्या की विशेषताएं और इसकी प्रगति की दर और चरण भी करता है। समाज की समस्याओं को इन कारकों का उपयोग करके को समझा जाता है। दूसरे, यह संस्थानों का भी अध्ययन करता है जैसे - राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, कानूनी, स्तरीकरण आदि। यह उन विशेषताओं का अध्ययन करता है जो इन संस्थाओं में सामान हैं और जो सुविधाएँ भिन्न हैं। उनकी विशेषज्ञता और स्वायत्तता के स्तर का भी अध्ययन किया जाता है। दुर्खीम, ने सामाजिक मानवविज्ञान को सामाजिक संस्थानों का अध्ययन कहा है। सामाजिक मानवविज्ञान सामाजिक संबंधों का अध्ययन है। सामाजिक संबंध का अर्थ व्यक्तियों के बीच की अंतर्क्रिया है। व्यक्तियों के बीच की अंतर्क्रिया समाज के मानदंडों और मूल्यों की मध्यस्थता द्वारा और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित होती है।

1.3.2 अन्य सामाजिक विज्ञान के विषयों के साथ सामाजिक मानवविज्ञान का संबंध

सामाजिक और सांस्कृतिक मानवविज्ञानी समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, सामाजिक कार्य, सांस्कृतिक अध्ययन, साहित्य, सार्वजनिक स्वास्थ्य, नीति और शासन अध्ययन, प्रबंधन, आदि जैसे सामाजिक विज्ञानों से प्राप्त दृष्टिकोण की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल करते हैं। इस प्रकार, मानव व्यवहार की समझ के लिए अपनी खोज में इन सभी विषयों को संबंधित करने में सक्षम है, और उन सभी को उस तरीके की व्याख्या करने के लिए आकर्षित करता है जिसमें सभी जैविक और सामाजिक कारक समग्रता में मनुष्य की संस्कृति और व्यवहार को चित्रित करते हैं।

1.3.2.1 सामाजिक मानवविज्ञान और समाजशास्त्र (Social Anthropology and Sociology)

सामाजिक मानवविज्ञान को आमतौर पर अन्य संस्कृतियों के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसमें प्रतिभागी अवलोकन की तकनीक का उपयोग कर गुणात्मक आंकड़ों का संकलन किया जाता है। सामाजिक मानवविज्ञान, समाजशास्त्र के समान है, लेकिन समाजशास्त्र के समरूप नहीं है, कम से कम पिछली शताब्दी के संदर्भ में जिस दौरान प्रत्येक अनुशासन जिस प्रकार विकसित हुआ हैं। सामाजिक मानवविज्ञान ने पूर्व-औद्योगिक समाजों पर, तो समाजशास्त्र ने औद्योगिक समाजों पर ध्यान केंद्रित किया है; मानवविज्ञानी ने अन्य संस्कृतियों में अपने शोध किया, प्रतिभागी अवलोकन की तकनीक को नियोजित किया, तुलनात्मक (विशेष रूप से पार-सांस्कृतिक) अध्ययन की वकालत की। समाजशास्त्रियों ने अपने स्वयं के समाजों में शोध किया, प्रश्नावली का इस्तेमाल किया, और शायद ही कभी अपने सामान्यीकरण को पार-सांस्कृतिक रूप से परीक्षण करने का प्रयास किया। बेशक, इन स्वरूप के कई अपवाद हैं, जिसके परिणामस्वरूप समाजशास्त्रियों ने कभी-कभी अपने प्रयोगशालाओं में मानवविज्ञानी के रूप में और कभी-कभी इसके विपरीत रूप में देखा है (बैरेट, 2009)।

हालांकि, इन दो विषयों के बीच महत्वपूर्ण अंतर हैं। पहला बड़ा अंतर यह है कि समाजशास्त्र अपनी परिभाषा के अनुरूप सामाजिक संबंधों का अध्ययन करता है, सामाजिक मानवविज्ञानी भी समाजशास्त्रियों की तरह एक ही विषयवस्तु का अध्ययन करते हैं, परन्तु वे अन्य मामलों में भी रुचि रखते हैं जैसे लोगों के विश्वासों और मूल्यों, जिनका सामाजिक व्यवहार से सीधा जुड़ाव नहीं दिखता है। सामाजिक मानवविज्ञानी उनके विचारों और विश्वासों के साथ-साथ उनके सामाजिक रिश्तों में भी दिलचस्पी रखतें है, हाल के वर्षों में कई सामाजिक मानवविज्ञानी ने अन्य लोगों के विश्वास प्रणाली का अध्ययन न केवल समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से किया है, बल्कि सूचनादाता के अपने दृष्टिकोण से भी किया है।

सामाजिक मानवविज्ञान और समाजशास्त्र के बीच दूसरा महत्वपूर्ण अंतर है कि, सामाजिक नृविज्ञानियों ने ज्यादातर ऐसे समुदायों में काम किया है, जो कम परिचित और तकनीकी रूप से कम विकसित दोनों हैं, जबकि समाजशास्त्रियों ने मुख्य रूप से अधिक जटिल, पश्चिमी-समाज, समाजों की सामाजिक संगठन और विशेषताओं के प्रकारों का अध्ययन किया है। दोनों में अंतर करना कठिन है अर्थात इनके मौलिक सिद्धांत के बजाय इनके सामाजिक क्षेत्र में अंतर है। इस तरह सामाजिक मानवविज्ञान द्वारा लघु समाजों के अध्ययन ने समाजशास्त्रीय ज्ञान में मुख्य योगदान किया है।

अंत में, यह कह सकते हैं कि सामाजिक मानवविज्ञानी ज्यादातर अपरिचित संस्कृतियों में काम करते हैं, जिनमे भाषा का अनुवाद एक समस्या है, समाजशास्त्रियों के लिए भाषा कोई बड़ी समस्या नहीं है। समाजशास्त्री आमतौर पर उसी भाषा (कम या ज्यादा) में काम करते हैं जिसको वे बोलते और पढ़ते हैं और कम से कम उनकी कुछ बुनियादी अवधारणाओं और श्रेणियां सामान होती हैं। लेकिन सामाजिक मानवविज्ञानी के लिए, उसके कार्य का सबसे कठिन हिस्सा आमतौर पर उसके द्वारा अध्ययन किए जाने वाले

लोगों की भाषा और विचारों के तरीकों को समझना है, जो अपने आप से बहुत अलग हैं। यही कारण है कि, मानवविज्ञान में, अध्ययन की जा रही समुदाय की भाषा का ज्ञान अपरिहार्य है क्योंकि लोगों के विचारों की श्रेणियों और उनकी भाषा के रूप एक साथ बंधे हुए हैं। इस प्रकार अवधारणाओं और प्रतीकों की व्याख्या और अर्थ के बारे में प्रश्न आमतौर पर समाजशास्त्रियों की तुलना में सामाजिक मानवविज्ञानी के अध्ययन का एक बड़ा हिस्सा होते हैं। समाजशास्त्र, सामाजिक मानवविज्ञान का सबसे करीबी साथी अनुशासन है और दोनों विषय अपनी सैद्धांतिक समस्याओं और रुचियों के कई हिस्से साझा करते हैं। हर सामाजिक मानवविज्ञानी समाजशास्त्री हो सकता है, पर हर समाजशास्त्री सामाजिक मानवविज्ञानी नहीं हो सकता, क्योंकि यद्यपि दोनों सामाजिक रिश्तों से संबंधित हैं, पर मानवविज्ञानी संस्कृति के अन्य पहलुओं के साथ संबंध रखते हैं। हालांकि, सामाजिक मानवविज्ञान और समाजशास्त्र दोनों के शीर्ष विद्वानों को यह चिंता करने का बहुत कम समय मिलता है कि वे क्या कर रहे हैं समाजशास्त्र या सामाजिक मानवविज्ञान।

1.3.2.2 सामाजिक मानवविज्ञान और मनोविज्ञान (Social Anthropology and Psychology)

मन और मानव व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन को मनोविज्ञान कहा जाता है। मनोवैज्ञानिक अपने सिद्धांतों और अनुसंधान के माध्यम से विविध विषयों का अन्वेषण करते हैं। इन विषयों में मस्तिष्क, व्यवहार और व्यक्तिपरक अनुभव के बीच संबंध; मानव विकास; व्यक्ति के विचार, भावनाओं और व्यवहार पर अन्य लोगों का प्रभाव; मनोवैज्ञानिक विकार और उनके उपचार; व्यक्ति के व्यवहार और व्यक्तिपरक अनुभव पर संस्कृति का प्रभाव; व्यक्तित्व और बुद्धिमत्ता में लोगों के बीच अंतर; और लोगों को ज्ञान प्राप्त करने, व्यवस्थित करने, और उनके व्यवहार को निर्देशित करने की क्षमता शामिल हैं।

इस प्रकार मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन का ध्यान मानव व्यवहार के सभी पहलुओं और इसके व्यक्तिगत, सामाजिक और सांस्कृतिक आयाम पर है जो कभी सामाजिक मानवविज्ञान के ज्ञान के बिना कभी पूरे नहीं होंगे। इसलिए, हमारे आसपास की दुनिया में सामाजिक प्रक्रियाओं और अर्थों को समझने के लिए सामाजिक मानवविज्ञान का अध्ययन जरुरी है। सामाजिक मनोविज्ञान और सामाजिक मानवविज्ञान दोनों एक ओर व्यक्तियों के बीच के संबंधों और दूसरी ओर समूहों, समुदायों, समाजों और संस्कृतियों से संबंधित हैं।

बैरेट (2009: 135) के अनुसार, ऐतिहासिक रूप से ब्रिटिश सामाजिक मानवविज्ञान मनोविज्ञान से काफी अलग है। दूसरे शब्दों में सामाजिक मानवविज्ञान अवव्याख्यावाद का विरोध करता है, जिसका अर्थ अन्य अनुशासनात्मक स्तरों (जैसे मनोविज्ञान) द्वारा सामाजिक जीवन की व्याख्या करने का विरोध। इस परिप्रेक्ष्य को दुर्खीम के कार्यों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है, जिन्होंने घोषणा की कि किसी भी समय यदि सामाजिक घटना के लिए एक मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण प्रदान किया जाता है हम निश्चिंत हो सकते हैं कि यह गलत है। अमेरिकी सांस्कृतिक मानवविज्ञान, मनोविज्ञान के लिए अधिक ग्रहणशील रहा है, विशेष रूप से व्यक्तिव केंद्रित अध्ययन। बोआस, व्यक्ति और समाज के बीच संबंधों में रुचि रखते थे, और अंत में संस्कृति

और व्यक्तित्व स्कूल की स्थापना की, जिसमें व्यक्तित्व पर जोर दिया गया था। हाल के वर्षों में मनोवैज्ञानिक मानवविज्ञान नामक एक विशिष्ट दृष्टिकोण सामने आया है, जिसमें दृष्टिकोण और मूल्यों और शिशु-पालन प्रथाओं और किशोरावस्था पर ध्यान केंद्रित किया गया है (Bourguignon, 1979)।

एकमात्र अंतर यह है कि सामाजिक मानवविज्ञान समूह और मनोविज्ञान व्यक्ति का अन्वेषण करता है। सामाजिक मानवविज्ञानी सामाजिक संरचना या संस्कृति के विशेषज्ञ हैं मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व प्रणाली और मानसिक प्रक्रिया जैसे अनुभूति, धारणा, सीखने, भावनाओं और उद्देश्यों में। सामाजिक मानवविज्ञानी व्यक्तित्व प्रणाली को निरंतरता के रूप में लेते हैं और सामाजिक संरचना में भिन्नता के लिए उनका अध्ययन करते हैं, जबकि मनोवैज्ञानिक सामाजिक संरचना को निरंतर मानते हैं और अपने विश्लेषण के आधार के रूप में व्यक्तित्व प्रणाली में बदलाव की तलाश करते हैं।

अपने काम में बैरेट (2009) ने कहा है कि मनोवैज्ञानिक और मानवविज्ञानी दोनों के लिए एकमात्र वास्तविक इकाई व्यक्ति है। सामाजिक मानवविज्ञानी सामाजिक प्रणाली के स्तर पर सामान्यीकरण करते हैं जबकि मनोवैज्ञानिक सामान्यीकरण व्यक्तित्व प्रणाली के स्तर पर करते हैं। अंत में, कुछ सामाजिक मानवविज्ञानी, समाजशास्त्री और मनोवैज्ञानिकों का काम एक सामान्य आधार पर है, जो सामाजिक संरचना और व्यक्तित्व को एकीकृत करने में साझा हितों को दर्शाता है।

1.3.2.3 सामाजिक मानवविज्ञान और इतिहास (Social Anthropology and History)

इतिहासकार मुख्य रूप से अतीत में रुचि रखते हैं, चाहे प्राचीन हो या हाल का, उनका अध्ययन यह जानने के लिए होता है कि क्या हुआ और क्यों हुआ। कुल मिलाकर, वे अधिकतर पिछली घटनाओं और उनकी स्थितियों के विशेष अनुक्रम में रुचि रखते हैं नाकि उन सामान्य स्वरूप, सिद्धांत या कानून में जो इन घटनाओं को प्रदर्शित करते हैं। दोनों ही संदर्भों में इनका ध्यान सामाजिक मानवविज्ञानीयों से बहुत कम है। मानवविज्ञानी सामाज केन्द्रित होकर (हालांकि विशेष रूप से नहीं) संस्कृति या समुदाय की वर्तमान स्थिति को समझने में रुचि रखते हैं। हालांकि अनुशासन अलग-अलग हैं, सामाजिक मानवविज्ञान का इतिहास से दो महत्वपूर्ण बिंदुओं में बहुत करीबी रिश्ता है। पहला मानवविज्ञानी जिसका उद्देश्य समाज की वर्तमान स्थिति के बारे में सम्पूर्ण समझ हासिल करना है, वह शायद ही यह समझने में सफल हो कि यह स्थिति कैसे बनी। अर्थात उसका उद्देश्य वर्तमान को समझना है, न कि अतीत को, लेकिन अक्सर अतीत वर्तमान को समझाने में सीधे प्रासंगिक हो सकता है। एक कठिनाई यह भी रही है कि जिन समाजों ने सामाजिक मानवविज्ञानी का अध्ययन किया है उनमें से कई के पास अतीत के प्रलेखित और सत्यापन योग्य वृतांत के संदर्भ में कोई इतिहास नहीं है, या कम से कम पश्चिमी संस्कृति के हाल के प्रभाव से पहले उनका कोई लिखित इतिहास नहीं था। ऐसे समाजों में, अतीत को कभी-कभी केवल उन व्यक्तियों के संबंध में अलग-अलग माना जाता है जिनकी अलग-अलग प्रस्थिति समाज में संस्थागत हैं।

लेकिन इतिहास एक अन्य अर्थ में सामाजिक मानवविज्ञानी के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है, जो न केवल अतीत की घटनाओं के एक वृतांत के रूप में है, बल्कि वर्तमान को समझाने के लिए, बल्कि समकालीन विचारों के के रूप में भी है जो लोग इन घटनाओं के बारे में सोचते हैं जिसे एक अंग्रेजी दार्शनिक कॉलवुड "अतीत का इतिहास" कहा है, अर्थात अतीत के बारे में लोगों के विचार, समकालीन स्थिति का एक आंतरिक हिस्सा है जो अक्सर मौजूदा सामाजिक संबंधों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं जिसको ज्ञात करना मानवविज्ञानीयों का मुख्य उद्देश्य है। साथ ही, एक ही सामाजिक स्थिति में शामिल लोगों के विभिन्न समूहों में ऐतिहासिक घटनाओं की 'समान' श्रृंखला के बारे में बहुत अलग विचार हो सकते हैं। मिथक और पारंपरिक इतिहास कभी-कभी पिछली घटनाओं के बारे में महत्वपूर्ण सुराग दे सकते हैं। इतिहास लोगों की जागरूक परंपरा का हिस्सा है और उनके सामाजिक जीवन में भी सक्रिय है। यह घटनाओं का सामूहिक प्रतिनिधित्व है। इवांस-प्रिचर्ड ने अपने पुस्तक ‘सोशल एंथ्रोपोलॉजी एण्ड अदर एसेज’ (1950) में कहा था कि प्रकार्यात्मक मानवविज्ञानी (फंक्शनलिस्ट एंथ्रोपोलॉजिस्ट) इतिहास को इस अर्थ में मानते हैं की यह आमतौर पर तथ्य और कल्पना का मिश्रण, जो उस समय की संस्कृति के अध्ययन के लिए अत्यधिक प्रासंगिक है। संस्थाओं के इतिहास की उपेक्षा प्रकार्यात्मक मानवविज्ञानी (फंक्शनलिस्ट एंथ्रोपोलॉजिस्ट) को न केवल कालक्रमिक समस्याओं का अध्ययन करने से रोकती है, बल्कि बहुत प्रकार्यात्मक निर्माणों के परीक्षण से भी रोकती है, जिसको वह सबसे अधिक महत्व देते हैं, क्योंकि यह इतिहास ही है जो उन्हें एक प्रयोगात्मक स्थिति प्रदान करता है।

यह सच है कि रेडक्लिफ-ब्राउन जैसे कुछ प्रारंभिक मानवविज्ञानी इस बात से इनकार करते हैं कि इतिहास में मानवविज्ञान के लिए कोई प्रासंगिकता थी, क्योंकि उन्होंने सोचा था कि इतिहास मुख्यतः विशेष घटनाओं का अध्ययन करता है और अतीत का वैज्ञानिक अध्ययन संभव नहीं था। लेकिन, इवांस-प्रिचर्ड (1968) ने तर्क दिया कि मानवविज्ञान एक सामान्य अनुशासन नहीं है, बल्कि इतिहास की एक शाखा थी। बहुत पहले बोआस (1897) जो अमेरिकी मानवविज्ञान के संस्थापक थे, ने मानववैज्ञानिक जांच की एक केंद्रीय विशेषता के रूप में ऐतिहासिक जांच को शामिल किया था।

दोनों सामाजिक मानवविज्ञानी और इतिहासकार अपरिचित सामाजिक परिस्थितियों को न केवल अपनी सांस्कृतिक श्रेणियों के रूप में, बल्कि जहाँ तक संभव हो, क्रियाओं की श्रेणियों के संदर्भ में भी प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। सामाजिक मानवविज्ञान और इतिहास के बीच मुख्य अंतर उनके विषयवस्तु में बहुत अधिक नहीं है (हालांकि आम तौर पर यह भिन्न होता है) बल्कि सामान्यता की अंश में है जिसका वे अध्ययन करते हैं। इतिहासकार विशेष स्थानों पर विशेष संस्थानों के इतिहास में रुचि रखते हैं। हालांकि एक बहुत ही सामान्य अर्थ में यह सच है कि इतिहासकार इस बात से चिंतित हैं कि व्यक्ति क्या है, सामाजिक मानवविज्ञानी, समाजशास्त्री जैसे ही, सामान्य और विशिष्ट के अध्ययन के साथ संबंध रखते हैं, और यह

द्वंद्वात्मकता बिल्कुल सरल है। सामाजिक विज्ञानों में अक्सर यह अंतर काफी महत्वपूर्ण होता है (अहमद, 1986)।

बैरेट, (2009) ने ठीक ही कहा है; अधिकांश मानवविज्ञानी शायद इस बात से सहमत होंगे कि एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य किसी की नृजातीयवर्णन को समृद्ध करता है। हालांकि इतिहासकारों के विपरीत, मानवविज्ञानी इतिहास को अतीत में जो कुछ हुआ है, उसे दस्तावेज बनाने और समझाने के लिए नहीं शामिल करते, बल्कि वर्तमान को समझने में मदद के लिए शामिल करते हैं। वहाँ भी अनुसंधान की शैलियों में अंतर प्रतीत होता है। जबकि इतिहासकार अक्सर अपने आंकड़ों से मामूली सामान्यीकरण को आकर्षित करने के लिए अनिच्छुक लगते हैं, वहीँ मानवविज्ञानी इतिहासकार की तुलना में इस ओर बहुत कम ध्यान देते हैं और नृजातीयवर्णन से सामान्यीकृत सैद्धांतिक निर्माण करने का उन पर अधिक दबाव होता है।

1.3.2.4 सामाजिक मानवविज्ञान और इथनोलोजि (Social Anthropology and Ethnology)

इवांस-प्रिचर्ड के शब्दों में, "इथनोलोजि लोगों को उनके विस्तार के आधार पर वर्गीकृत करता है"। दूसरे शब्दों में, मानवविज्ञान वर्तमान समय में लोगों के नृजातीय दृष्टिकोण से देखता है, या पिछले समय में लोगों के प्रवासन और मिश्रण से संस्कृतियों का प्रसार कैसे हुआ था। इथनोलोजि और सामाजिक मानवविज्ञान में बहुत समानता है। दोनों देशज और आधुनिक लोगों का अध्ययन करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में सांस्कृतिक मानवविज्ञान और इथनोलोजि पर्यायवाची के रूप में उपयोग किया जाता है। दोनों को मानवविज्ञान से अधिक सामान्य विज्ञान की मानार्थ शाखा माना जाता है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद ही सामाजिक मानवविज्ञान को मानवविज्ञान के साथ जोड़ा गया था। इससे पहले दुर्खीम और रिवर्स के प्रभाव के तहत, अमेरिकी मानवविज्ञानी पहले इस स्थिति को स्वीकार करने में आना-कानी कर रहे थे कि संस्कृति में सामाजिक तथ्य शामिल हैं और मानवविज्ञान या सांस्कृतिक मानवविज्ञान एक स्वायत्त विज्ञान था।

तथ्यात्मक रूप से मानवविज्ञान, संस्कृति इतिहास का एक विज्ञान है। इसका अर्थ है कि एक इथनोलोजिस्ट सांस्कृतिक इतिहास की प्रक्रियाओं को समझाने के लिए सांस्कृतिक और मानसिक नियमों को निर्दिष्ट करना चाहता है। इथनोलोजि और सामाजिक मानवविज्ञान के बीच समानता या घनिष्ठ संबंध सरल है। दोनों ही समाज, अर्थात् मनुष्य और संस्कृति का अध्ययन करते हैं। इथनोलोजि का संबंध सभी समूहों के सामान्य सांस्कृतिक तत्वों से है, न कि स्थान या समय को समझने से।

1.3.2.5 सामाजिक मानवविज्ञान और अर्थशास्त्र (Social Anthropology and Economics)

जैसा कि हम जानते हैं कि अर्थशास्त्र एक विशेष संस्थान पर केंद्रित है, और आर्थिक वस्तुओं के उत्पादन, खपत और वितरण और आर्थिक के साथ विकास, मूल्य, व्यापार और वित्त के अध्ययन से संबंधित है। मानवविज्ञान में आर्थिक मानवविज्ञान नामक विशेषज्ञता का एक क्षेत्र है। यह एक अनमोल तथ्य है कि एक

संस्थागत तरह का अर्थशास्त्र पहली बार मानवविज्ञान में प्रकट होता है जिसके क्षेत्र अनुसंधान का प्रत्यक्ष संबंध विदेशज संस्थागत लोगों से होता है। मानवविज्ञान का अर्थशास्त्र के साथ पर्याप्त अतिच्छादन है। सभी समाजों में पूरी तरह से विकसित मौद्रिक अर्थव्यवस्था नहीं है, सभी समाजों में दुर्लभ वस्तुएं हैं और विनिमय के कुछ साधन हैं।

सामाजिक मानवविज्ञानी मानव समाजों में उत्पादन और वितरण प्रणालियों की सीमा की खोज करने और एक निश्चित समय में, अध्ययन किए जा रहे समाज में, विशेष प्रणाली को समझने में रुचि रखते हैं। अधिकांश सामाजिक मानवविज्ञानी किसी एक समाज की अर्थव्यवस्था के संचालन में वैज्ञानिक रूप से रुचि नहीं हैं; दूसरी ओर, गैर-मानवविज्ञानी अर्थशास्त्री, अपनी अर्थव्यवस्था के संचालन में बेहद दिलचस्पी रखते हैं। वह बहुत अलग-अलग आर्थिक प्रणालियों के संचालन में आमतौर पर ज्यादा दिलचस्पी नहीं दिखाते। आदिम अर्थशास्त्र की "औपचारिकता" बनाम "मूलवादी" व्याख्याओं के नाम के तहत सामाजिक मानवविज्ञान, पश्चिम के तैयार मॉडल के बीच निम्न विकल्प लाएं पहला आर्थिक विज्ञान, विशेष रूप से सूक्ष्म अर्थशास्त्र जो सार्वभौमिक रूप से मान्य है इसलिए आदिम समाजों पर भी लागू होता है दूसरा यदि औपचारिकतावादी स्थिति निराधार है तो आदिम समाजों की अर्थव्यवस्था हेतु एक नए विश्लेषण जो और अधिक उपयुक्त हो विकसित करने की आवश्यकता है।

मार्शल डी. सहलिंस एक सामाजिक मानवविज्ञानी हैं, जिन्होंने आदिम लोगों की अर्थव्यवस्था पर काम किया है। उन्होंने तर्क दिया है कि आधुनिक समाज के लिए पैसा सब कुछ है और एक आदिम समाज के लिए नातेदारी महत्वपूर्ण है। सहलिंस का अवलोकन सामाजिक मानवविज्ञान और अर्थशास्त्र के बीच संबंध और भेदभाव की व्याख्या करता है।

आदिम समाजो के बीच अर्थशास्त्र की स्थिति को मालिनोवस्की द्वारा दिए गए सिद्धांत से देखा जा सकता है। उनका मानना था कि आदिवासियों के बीच अर्थव्यवस्था सामाजिक और सांस्कृतिक समग्रता का एक एकीकृत हिस्सा है। उनका अवलोकन यह था कि आर्थिक प्रणाली और कार्यों को पूरी तरह से तभी समझा जा सकता है जब हम संस्कृति और समाज के अन्य पहलुओं के साथ उनके अंतर्संबंधों को देखें।

बेशक, सामाजिक मानवविज्ञान आदिवासी अर्थव्यवस्था का अध्ययन करता है, और यह इसे अर्थशास्त्र के अनुशासन के करीब लाता है। सामाजिक मानवविज्ञान और अर्थशास्त्र के बीच इस अंतर्निहित संबंध के बावजूद, यह कहा जाना चाहिए कि प्रत्येक की अपनी अलग स्वायत्त स्थिति है। वे अपने दृष्टिकोण और उपागमों में भिन्न होते हैं।

1.3.2.6 सामाजिक मानवविज्ञान और राजनीति विज्ञान (Social Anthropology and Political Science)

मानवविज्ञान का आधार उद्विकासवाद, जीव विज्ञान और मार्क्स, वेबर और दुर्खीम जैसे महान सामाजिक सिद्धांतकार थे, जबकि राजनीतिक विज्ञान की नींव शास्त्रीय दर्शन था। जहाँ सामाजिक मानवविज्ञान समाज के सभी उप-प्रणालियों से संबंधित है वहीँ राजनीतिक विज्ञान, राजनीतिक प्रणाली और सत्ता पर केंद्रित है। हालांकि, यह मानना गलत होगा कि मानवविज्ञान का संबंध सत्ता से नहीं है। एक प्रमुख ब्रिटिश सामाजिक मानवविज्ञानी, एडमंड लीच (1965) ने तर्क दिया है कि सत्ता सभी सामाजिक जीवन का सबसे बुनियादी पहलू है, और इसलिए मानवशास्त्रीय अध्ययन के लिए केंद्रीय है, और वास्तव में मानवशास्त्र में विशेषज्ञता का एक क्षेत्र है जिसे राजनीतिक मानवशास्त्र कहा जाता है।

सामाजिक मानवविज्ञानी, राजनीतिक दृष्टिकोण से कुछ घटनाओं को देखते हैं। समाज के परिष्कार, अध्ययनकर्ता के लक्ष्यों और सैद्धांतिक जागरूकता के आधार पर मानवशास्त्रीय व्यवहारों की एक श्रृंखला है। राजनीतिक और अन्य गतिविधियों का अतिच्छादन अधिक जटिल समाजों की तुलना में सरल समाजों में अधिक है। इसे थोड़ा अलग तरीके से रखने के लिए, विभिन्न सांस्कृतिक पहलुओं की कम कार्यात्मक विशिष्टता है। सरल समाज की गतिविधियों में सामाजिक मानवविज्ञानी स्पष्ट रूप से और मुख्य रूप से राजनीतिक संबंध पर ध्यान केंद्रित करते हैं जो आमतौर पर अन्य प्रकार की गतिविधियों में अंतर्निहित होते हैं।

राजनीतिक गतिविधि सभी मानव सामाजिक क्रिया का एक पहलू है और "रुचि व्यक्तिकरण" सभी प्रणालियों का एक सार्वभौमिक कार्य है। सामाजिक मानवविज्ञानी नीतियों के एक अत्यधिक विविध समुच्य का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके लिए ऐसे राजनीतिक सिद्धांत लागू होना चाहिए जो सार्वभौमिकता का दावा करते हैं। एक राजनीतिक वैज्ञानिक के लिए मानवविज्ञान साहित्य की उपस्थिति न केवल सिद्धांत परीक्षण के लिए एक प्रेरणा है, बल्कि स्थानीय राजनीतिक स्थितियों को भी समझने का आधार है। मानवविज्ञान का राजनीति विज्ञान में सैद्धांतिक योगदान उद्विकासवादी दृष्टिकोण है। कोहेन, (1967) ने स्पष्ट रूप से कहा कि, सामाजिक मानवविज्ञानी लगभग हमेशा समाजों के उद्विकासवादी ढांचे का अध्ययन करते हैं। नए राष्ट्र के स्थानीय क्षेत्रों और संस्थानों पर अनुसंधान राजनीतिक वैज्ञानिक और सामाजिक मानवविज्ञानी को एक ही क्षेत्र और एक ही व्यवहार के अध्ययन से जोड़ते हैं। गैर-पश्चिमी दुनिया के कई हिस्सों में, स्थानीय राजनीतिक प्रणालियां और सामाजिक-राजनीतिक संरचनाओं के रूपों पर बहुत अधिक निर्भर हैं जो अभी भी उनकी पारंपरिक संस्कृतियों से काफी प्रभावित हैं। सामाजिक मानवविज्ञान राजनीति विज्ञान को नृजातीयता के विश्लेषण में मदद कर सकता है और क्षेत्र में प्रतिभागी अवलोकन तकनीकों के उपयोग के लिए शोधकर्ताओं को तैयार कर सकता है (आर. कोहेन, 1967)।

1.3.2.7 सामाजिक मानवविज्ञानऔर सामाजिक कार्य (Social Anthropology and Social Work)

कीथ हार्ट (1996: 42) के अनुसार एकमात्र चीज जो वास्तव में मानवविज्ञान को शेष सामाजिक विज्ञानों से अलग कर सकती है, वह यह है कि, यह मानव प्रकृति और संस्कृति के साथ-साथ समाज को भी संबोधित करता है। समाज और संस्कृति के बारे में ज्ञान सामाजिक कार्यकर्ता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। सामाजिक मानवविज्ञान, व्यक्तिगत संबंधों से लेकर वैश्विक राजनीतिक और आर्थिक संबंधों तक के स्तरों पर सामाजिक संबंधों का व्यवस्थित अध्ययन है। यह अतीत और वर्तमान दोनों में दुनिया के सभी हिस्सों के लोगों के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भौतिक और भाषाई व्यवहार की जांच करता है। सामाजिक कार्यकर्ता कई तरह से लोगों की मदद करते हैं जैसे:- दूसरों के साथ व्यवहार करना, उनकी व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामुदायिक समस्याओं को हल करना और उनके दैनिक जीवन को प्रभावित करने वाली सामाजिक और पर्यावरणीय कारकों को समझाना। सामाजिक कार्यकर्ता विशिष्ट सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में अपने व्यवसायों का अभ्यास करते हैं जो निश्चित रूप से उनके अभ्यास के तरीके को प्रभावित करता है (पियाने, 1997)। सामाजिक समस्याओं को सुधारने और संघर्षों को हल करने के लिए योजना बनाने से पहले उन्हें समाज के मूल्यों, मानदंडों, विश्वासों, विचारधाराओं को ध्यान में रखना होगा।

सामाजिक कार्यकर्ता को खुद को समझना भी उतना ही जरूरी है। सामाजिक कार्यकर्ता स्वयं उन समाजों के उत्पाद हैं, जिनमें वे रहते हैं और अनिवार्य रूप से इससे प्रभावित होते हैं। समाज और संस्कृति के बारे में ज्ञान भी आवश्यक है ताकि सामाजिक कार्यकर्ता को स्वयं या खुद के बारे में जागरूकता प्राप्त करने में मदद मिल सके। सामाजिक कार्यकर्ता का व्यक्तित्व अभ्यास में इस्तेमाल होने वाला एक प्रमुख उपकरण है और संस्कृति, व्यक्तित्व के विकास में एक प्रमुख भूमिका निभाती है।

समाज और संस्कृति बुनियादी अवधारणाएं हैं जिनका उपयोग सामाजिक मानवविज्ञानी हमारे आसपास की सामाजिक वास्तविकता को समझने के लिए करते हैं। सामाजिक मानवविज्ञान में, हम आमतौर पर सामाजिक प्रणाली, उनकी संरचना, उनके संगठन, कार्य, आदि के विभिन्न तुलनात्मक घटकों का अध्ययन करते हैं। सामाजिक प्रणाली अन्योन्याश्रित गतिविधियां, संस्थाएं और मूल्य हैं जिसका अध्ययन सामाजिक मानवविज्ञानी का काम है। सामाजिक प्रणालियों के इन घटकों की पहचान कर, सामाजिक मानवविज्ञान में, विभिन्न सिद्धांत और अवधारणाएं दी गई हैं जिससे सामाजिक संरचना, सामाजिक संगठन और सामाजिक कार्य के अर्थ को समझने में सरलता होती है।

सामाजिक मानवविज्ञान और सामाजिक कार्य कई पहलुओं में भिन्न भी हैं। सामाजिक मानवविज्ञान में समाज के लिए सैद्धांतिक दृष्टिकोण है और सिद्धांत निर्माण इसकी प्रमुख उद्देश्य है। दूसरी ओर सामाजिक कार्य व्यावहारिक होना चाहिए और समस्याओं से निदान दिलाने वाला होना चाहिए। सामाजिक कार्य और सामाजिक मानवविज्ञान के बीच एक और महत्वपूर्ण अंतर यह है कि सामाजिक मानवविज्ञान एक मूल्य मुक्त

अनुशासन है। उद्देश्य और पूर्वाग्रह से मुक्त होना एक गुण माना जाता था। दूसरी ओर सामाजिक कार्य मानवीय सिद्धांतों पर आधारित मूल्य आधारित पेशा है (जॉनसन, 1998:14)। उपरोक्त चर्चा से यह बहुत स्पष्ट है कि सामाजिक कार्य अक्सर अपनी अवधारणायें विभिन्न विषयों से उधार लेते हैं। इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सामाजिक मानवविज्ञान के विपरीत, सामाजिक कार्य ज्ञान स्रोतों की एक विस्तृत श्रृंखला से आता है जिसमें पूर्ववर्ती, अनुभव और सामान्य ज्ञान शामिल हैं।

1.3.2.8 सामाजिक मानवविज्ञान और सांस्कृतिक अध्ययन (Social Anthropology and Cultural Studies)

इक्कीसवीं सदी की दुनिया एक समरूप संस्कृति की ओर बढ़ रही है। सामाजिक वैज्ञानिक सांस्कृतिक अध्ययनों को समाजशास्त्र, साहित्यिक सिद्धांत, फिल्म / वीडियो, सांस्कृतिक मानवविज्ञान और औद्योगिक समाजों में विभिन्न सांस्कृतिक घटनाओं का अध्ययन करने हेतु एक संयोजन के रूप में परिभाषित करते हैं। सांस्कृतिक अध्ययन के शोधकर्ता मूल रूप से इस बात पर ध्यान केंद्रित करते हैं कि किसी विशेष घटना को विचारधारा, नृजाति, सामाजिक वर्ग या लिंग के मामलों से कैसे जोड़ा जाता है। मूल रूप से, सांस्कृतिक अध्ययन रोजमर्रा के जीवन के अर्थ और प्रथाओं से संबंधित है। सांस्कृतिक प्रथाओं में उन तरीकों को शामिल किया जाता है जिससे लोग अपनी संस्कृति में विशेष कार्य करते हैं। हर संस्कृति में लोगों के काम करने के तरीकों से विशिष्ट अर्थ जुड़े होते हैं।

इस प्रकार, सांस्कृतिक अध्ययन हमें नए तरीकों के साथ सार्थक रूप से जुड़ने और बातचीत करने में सक्षम बनाते हैं। यह हमें कई जटिल तरीकों के बारे में जागरूक करता है, जो हमारे जीवन पर प्रभाव डालती है और हमारी संस्कृतियों का निर्माण करती है। सांस्कृतिक अध्ययन में मीडिया और अन्य सांस्कृतिक संस्थाओं और ग्रंथों को गंभीर रूप से पढ़ने के लिए समाज को सशक्त बनाने की क्षमता है। यह हमें यह समझने में भी मदद करता है कि वे हमारे पहचान कैसे बनाते हैं और यह सोचने के लिए कि हम संभवतः उन्हें कैसे आकार दे सकते हैं। इस प्रकार, सांस्कृतिक अध्ययन को एक ऐतिहासिक, मानवतावादी अनुशासन और साथ ही एक प्राकृतिक विज्ञान के रूप में देखा जा सकता है, जो उस पद्धति या दृष्टिकोण पर निर्भर करता है जिसका उपयोग सांस्कृतिक घटनाओं के अध्ययन में किया जाता है। 'संस्कृति' को एक प्राकृतिक अवधारणा के रूप में समझने की पारंपरिक प्रवृत्ति अभी भी न केवल आम लोगों में, बल्कि संस्कृति के अकादमिक क्षेत्र में लगे लोगों के बीच भी काफी प्रभावी है। संस्कृति की ऐसी समझ के परिणामस्वरूप सांस्कृतिक सक्रियता के विभिन्न रूपों में दस्तावेज़ीकरण, संरक्षण, और संस्कृति के संरक्षण का भी परिणाम है। इस प्रकार, संगीत, नृत्य, साहित्य और भाषा आदि जैसे विभिन्न सांस्कृतिक वस्तुओं के व्यवस्थित वर्गीकरण के लिए अग्रणी भूमिका निभाता है। हाल के सांस्कृतिक सिद्धांतों ने दिखाया है कि सांस्कृतिक वस्तुओं का वर्गीकरण बिल्कुल अप्रासंगिक नहीं है, उन्हें 'उच्च' और 'निम्न', 'वृहद' और 'लघु' जैसे पदानुक्रम में व्यवस्थित करना निश्चित रूप

से वांछित नहीं है क्योंकि यह 'देशज' या 'लोक' संस्कृति की बजाए 'उच्च' और 'कुलीन' संस्कृति के 'उत्सव' पर आधारित है। हालाँकि, वर्तमान में, 'उच्च' और 'निम्न' जैसे शब्द अब सांस्कृतिक सिद्धांतों में उपयोग नहीं किए जाते हैं, क्योंकि सभी संस्कृतियों को समान माना जाता है। सामाजिक मानवशास्त्रीय ज्ञान के अनुसार हर संस्कृति का अपना दृष्टिकोण होता है।

1.3.2.9 सामाजिक मानवविज्ञान और साहित्य (Social Anthropology and Literature)

विद्वान और शिक्षाविद बहुत बार सामाजिक मानवविज्ञान और साहित्य के बीच एक सख्त अनुशासनात्मक सीमा की वैधता पर सवाल उठाते हैं, ऐसे समय में जब स्कूल और कॉलेज ऐसे अध्यापकों को नियुक्त कर रहे हैं जो दो या दो से अधिक अनुशासन को मिला कर एक विभग की स्थापना कर रहे हैं। सामाजिक मानवविज्ञानी द्वारा नृजातीयवृतांत में साहित्य का उपयोग किया जा सकता है, उदाहरण के लिए पीढ़ियों का जीवन इतिहास एक महत्वपूर्ण आंकड़ों का स्रोत हो सकता है। परंपरा कथाओं का संग्रह लोगों के नृजातीयवृतांत में मूल्यों को जोड़ सकता है। अनुष्ठान और प्रदर्शन का अध्ययन करने में, विक्टर टर्नर समकालीन कविताओं के साथ-साथ नवजागरण नाटकों के दृष्टिकोण का भी उपयोग करते है।

साहित्य को सामाजिक 'विरूपण साक्ष्य' या सामाजिक 'प्रवचन' के रूप में परिभाषित करने और सांस्कृतिक आलोचना के भीतर साहित्यिक अध्ययनों को फिर से परिभाषित करने के मौजूदा प्रयासों में समाजशास्त्री और मानवविज्ञानीयों ने समाज और संस्कृति को अपने प्राथमिक विषयों के रूप में लाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है (एशले,1990)। आज, सामाजिक मानवविज्ञानी संस्कृति के अध्ययन में संदर्भ और अनुभव का प्रतिनिधित्व करने के लिए नए तरीके लेकर आए हैं। नृजातीयवृतांत पाठ, कथा, रूपक और "सच्ची कल्पना" के रूप में नया दृष्टिकोण है।

सामाजिक मानवविज्ञानी भी अलिखित रूपों का अध्ययन करने के लिए मौखिक साहित्य का उपयोग करते हैं जिन्हें साहित्यिक गुणों से युक्त माना जा सकता है। यह आयाम मौखिक इतिहास जैसे मिथकों, कथाओं, महाकाव्यों, गीतों, प्रशंसा काव्य, लम्हों, और गीतों के पाठ और कभी-कभी नीतिवचन, नाटक और पहेलियों को भी सम्मलित करता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें साहित्य के क्षेत्र के दोनों विद्वान, भाषाई अध्ययन और लोक कलाकार लंबे समय से सामाजिक मानवविज्ञानी के साथ बातचीत कर रहे हैं।

इस प्रकार सामाजिक मानवविज्ञान और साहित्य अध्ययन का उद्देश्य साहित्य के अनुभव को मानवविज्ञान में एकीकृत कर सार्वभौमिक करना है। साहित्यिक अध्ययन और अध्ययन के अन्य क्षेत्र के बीच की सीमाओं को तोड़ने और सांस्कृतिक अध्ययन में साहित्यिक अध्ययन को एकीकृत करने का इरादा बाद की 20 वीं शताब्दी में एक स्पष्ट महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। व्याख्यात्मक मानवविज्ञान के विकास में क्लिफोर्ड गीर्ट्ज़ की भूमिका को शायद ही कभी कम करके आंका जा सकता है। वह सबसे प्रसिद्ध सामाजिक मानवविज्ञानी में से एक है। फिर भी आज, व्याख्यात्मक मानवविज्ञान के भीतर, गीर्ट्ज़ के आलोचक बढ़ रहे

हैं और उनका प्रभाव कम हो रहा है। "गहन वर्णन" क्या है? इसकी मुख्य विशेषताएं क्या हैं? यह कैसे किया जाता है? हमें यह कैसे पता चलता है कि "मूल निवासी का दृष्टिकोण" अर्थात, किसी अन्य संस्कृति के सदस्य कैसे सोचते हैं, महसूस करते हैं और अनुभव करते हैं? "गहन विवरण" और मानवशास्त्रीय सिद्धांत के बीच क्या संबंध है? आदि कुछ बढ़ते प्रश्न हैं।

इस प्रकार यह व्याख्यात्मक मानवविज्ञान की समानता को दर्शाता है जो मुख्य रूप से देशज दृष्टिकोण को प्राप्त करने से संबंधित है। यह कुछ प्रासंगिक प्रश्नों की उठाता है जैसे- हम कैसे मूल इतिहास और साहित्य को पढ़ना चाहिए? क्या हम ऐसी मूल अभिव्यक्तियों को आंकड़ों के रूप में, सांस्कृतिक कलाकृतियों के रूप में उपयोग कर सकते हैं? नृजातीयवृतांतकर्ता को ऐसा करने में क्या संशोधन करना पड़ सकता है? ये कुछ ऐसे सवाल हैं जिनके जवाब देने के लिए साहित्य मदद करेगा।

1.3.2.10 सामाजिक मानवविज्ञान और जनस्वास्थ्य (Social Anthropology and Public Health)

जनस्वास्थ्य "सार्वजनिक, निजी, समुदाय और व्यक्ति के रोग को रोकने, जीवन को लम्बा करने और समाज के संगठित प्रयासों और समाज, संगठनों के सूचित विकल्पों के माध्यम से स्वास्थ्य को बढ़ावा देने का विज्ञान है" (Winslow, C.E.A.1920)। मानवविज्ञान, चिकित्सा और चिकित्सा पद्धति के बीच सम्बन्धों को अच्छी तरह से प्रलेखित करता है। सामान्य मानवविज्ञान ने बुनियादी चिकित्सा विज्ञान में एक उल्लेखनीय स्थान हासिल कर लिया है (जो उन विषयों के अनुरूप है जिन्हें आमतौर पर पूर्व-नैदानिक के रूप में जाना जाता है)। इसलिए नहीं क्योंकि प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल, ग्रामीण चिकित्सा और अंतर्राष्ट्रीय जनस्वास्थ्य में ज्ञान के एक उपकरण के रूप में बीसवीं शताब्दी में नृजातीयवृतांत ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। चिकित्सा द्वारा नृजातीयवृतांत का परित्याग तब हुआ जब सामाजिक मानवविज्ञान ने अपनी व्यावसायिक पहचान के एक रूप में नृजातीयवृतांत को अपनाया और सामान्य मानवविज्ञान की प्रारंभिक परियोजना से प्रस्थान करना शुरू कर दिया।

लोकप्रिय चिकित्सा, या लोक चिकित्सा की अवधारणा, बीसवीं शताब्दी की शुरुआत से डॉक्टरों और मानवविज्ञानी दोनों के लिए महत्वपूर्ण हो जाती है। डॉक्टरों, मानवविज्ञानी और चिकित्सा नृविज्ञानियों ने इन शब्दों का उपयोग स्वास्थ्य पेशेवरों की मदद के अलावा संसाधनों का वर्णन करने के लिए किया, जो कि यूरोपीय या लैटिन अमेरिकी किसान किसी भी स्वास्थ्य समस्याओं को हल करने के लिए उपयोग करते थे। इस शब्द का उपयोग दुनिया के विभिन्न हिस्सों में आदिवासियों की स्वास्थ्य प्रथाओं का वर्णन करने के लिए किया गया था, विशेष रूप से उनके देशज ज्ञान पर जोर देने के साथ। इसके अलावा, लोकप्रिय चिकित्सा पद्धतियों के आसपास के रीति-रिवाजों का अध्ययन करने के साथ ही विज्ञान और धर्म के बीच संबंध भी पश्चिमी मनोचिकित्सकों के लिए चुनौती बना हुआ है। डॉक्टर लोकप्रिय चिकित्सा को मानवशास्त्रीय

अवधारणा में बदलने की कोशिश नहीं कर रहे; बल्कि वे वैज्ञानिक रूप पर आधारित हो के इसका निर्माण करना चाहते हैं।

चिकित्सा अवधारणा में वे बायोमेडिसिन की सांस्कृतिक सीमा को स्थापित करने के लिए उपयोग कर सकते हैं (कोमलेस, 2002)। व्यावसायिक मानवविज्ञानी ने बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में लोक चिकित्सा की अवधारणा का उपयोग करना शुरू किया। उन्होंने जादुई प्रथाओं, चिकित्सा और धर्म के बीच अंतर करने के लिए इस अवधारणा का उपयोग किया। इसके अलावा, उन्होंने इस अवधारणा को लोकप्रिय चिकित्सकों और स्व-चिकित्सा पद्धतियों की भूमिका और महत्व का पता लगाने का प्रयास किया। पेशेवर मानवविज्ञानी लोकप्रिय चिकित्सा को कुछ सामाजिक समूहों के विशिष्ट सांस्कृतिक अभ्यास के रूप में देखते थे जो बायोमेडिसिन की सार्वभौमिक प्रथाओं से अलग थे। इस प्रकार, यह माना जा सकता है कि हर संस्कृति की अपनी विशिष्ट लोकप्रिय औषधि है जो उसकी सामान्य सांस्कृतिक विशेषताओं पर आधारित है।

इस अवधारणा के तहत, चिकित्सा प्रणालियों को प्रत्येक नृजातीय समूह के सांस्कृतिक इतिहास के विशिष्ट उत्पाद के रूप में देखा जाता है। वैज्ञानिक बायोमेडिसिन को एक अन्य चिकित्सा प्रणाली के रूप में मानते हैं और इसलिए एक सांस्कृतिक रूप का अध्ययन किया जाता है। जनस्वास्थ्य की समझ और अभ्यास में सामाजिक मानवविज्ञानी दृष्टिकोण, विधियों, सूचना और सहयोग की अनिवार्यता व्यापक रूप से इक्कीसवीं सदी में बताई गई है। सामाजिक मानवविज्ञानी विशेष रूप से स्थानीय प्रतिभागियों के सहयोग से काम करते हुए, विशेष रूप से जनस्वास्थ्य समस्याओं के समाधान के लिए हस्तक्षेपों को विकसित और कार्यान्वित करते हैं। उनका प्राथमिक कार्य मूल्यांकनकर्ताओं के रूप में काम करना है, जनस्वास्थ्य संस्थानों की गतिविधियों और जनस्वास्थ्य कार्यक्रमों की सफलताओं और विफलताओं की जांच करना है। उनका काम प्रमुख अंतरराष्ट्रीय जनस्वास्थ्य एजेंसियों और उनके कामकाज पर ध्यान केंद्रित करना है, साथ ही साथ संक्रामक रोग और अन्य आपदाओं के खतरों के लिए जनस्वास्थ्य प्रतिक्रियाएं भी हैं। इस प्रकार जनस्वास्थ्य में सामाजिक मानवविज्ञानी की भूमिका एक सामाजिक मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण के साथ स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं की जांच करना है, जैसे (i) जनस्वास्थ्य समस्याओं की सामाजिक मानवशास्त्रीय समझ (ii) जनस्वास्थ्य हस्तक्षेपों का सामाजिक मानवशास्त्रीय डिजाइन (iii) जनस्वास्थ्य कार्यक्रमों के सामाजिक मानवशास्त्रीय मूल्यांकन (iv) सामाजिक स्वास्थ्य और जनस्वास्थ्य के सुधार की मानवशास्त्रीय आलोचना। इस प्रकार, सामाजिक मानवविज्ञान की भूमिका जनस्वास्थ्य के अभ्यास में संस्कृति और समाज के अंतर को भरना है (महन और इनहॉर्न, 2011)।

1.3.2.11 सामाजिक मानवविज्ञान और नीति एवं शासन (Social Anthropology and Policy and Governance)

इक्कीसवीं सदी, सामाजिक नीति बनाए की प्रक्रिया, तेजी से बदल रही है। इसके परिणामस्वरूप मानवविज्ञानी, अन्य सामाजिक वैज्ञानिकों के साथ मिलकर, सामाजिक और पर्यावरणीय नीतियों में बदलाव पर वैश्वीकरण के इस नए चरण के प्रभावों पर गंभीर अध्ययन कर रहें हैं। सामाजिक मानवविज्ञान ने एक उपक्षेत्र के रूप में योगदान दिया है, और सामाजिक नीति अनुसंधान, अभ्यास, और नए तरीकों की वकालत की है; इसकी प्रासंगिकता इसलिए भी बढ़ी है है क्योंकि दुनिया तेजी से वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण बदल रही है (ओकोंगवु और मेन्चर, 2000)। वैश्वीकरण का अध्ययन करने वाले सामाजिक मानवविज्ञानी, राज्य, राजनीति, विकास, और अन्य विषयों के साथ, अपने शोध के लिए नीति की केंद्रीयता की खोज कर रहे हैं, और नीति के मानवविज्ञान में काम का एक निकाय विकसित हो रहा है। यद्यपि कुछ सामाजिक मानवविज्ञानी जो नीति का अध्ययन करते हैं वे सार्वजनिक बहस या वकालत में शामिल हो गए, जिससे मानवविज्ञान ने कई आंदोलनों में सक्रियता से भाग लिया, सार्वजनिक नीति का मानवशास्त्र, नीतिगत मुद्दों और प्रक्रियाओं और उन प्रक्रियाओं के महत्वपूर्ण विश्लेषण में अनुसंधान के लिए समर्पित है। हालांकि, मानवविज्ञानी का आम तौर पर सार्वजनिक नीति पर अर्थशास्त्रियों की तुलना में कम प्रभाव होता है, ऐसे कई तरीके हैं जिनके द्वारा मानवविज्ञानी अपनी राय रखते हैं, जैसे कि (क) हम जिन लोगों का अध्ययन करते हैं, उनकी शर्तों का दस्तावेजीकरण करते हैं, या अन्य गरीब या असंतुष्ट बेघर लोगों के अधिवक्ताओं के रूप में कार्य करना (ख) सरकारी नीतियों के प्रभावों को सार्वजनिक करने और वैकल्पिक नीतियों का विश्लेषण करने, लिखने का कार्य (ग) चुने हुए अधिकारियों के लिए सार्वजनिक गवाह के रूप में काम करना (d) अपनी विभिन्न भूमिकाओं में सहायता एजेंसियों के सदस्यों या इन एजेंसियों के भीतर काम करने वाले स्थानीय लोग और उनकी सांस्कृतिक पूंजी से सम्बन्धित महत्वपूर्ण मुद्दों को इंगित करने के लिए काम करना। (च) प्रतिरोध की रणनीतियों का अध्ययन और मानवविज्ञानी का काम कैसे देशज लोगों को सूचित कर सकता है (वेसेल, एट अल 2005)।

लंबे समय से मानवशास्त्रियों के बीच एक सैद्धांतिक और व्यक्तिगत विभाजन हुआ है, जो शुद्ध अनुसंधान पर ध्यान केंद्रित कर रहा है और जो मानव द्वारा सामना की जा रही समस्याओं पर ध्यान केंद्रित कर रहा है। तेजी से बदलती दुनिया में, मानवविज्ञानी के अनुभवजन्य और नृवंशविज्ञान के तरीकों में दर्शाया गया है कि कैसे नीतियाँ सक्रिय रूप से व्यक्तियों की नई श्रेणियों का निर्माण करती हैं। वेसेल, (2005) का सुझाव है कि लंबे समय से स्थापित "राज्य" और "निजी", "स्थानीय" या "राष्ट्रीय" और "वैश्विक," "मैक्रो" और "माइक्रो," "टॉप डाउन" और "डाउन टॉप", और "केंद्रीकृत" और "विकेंद्रीकृत" जैसी श्रेणियों का निर्माण करते हैं जो वर्तमान गतिशीलता को समझने में विफल हैं।

यद्यपि कुछ सामाजिक मानवविज्ञानी कृषि में नीति-संबंधी परियोजनाओं पर पहले के दौर में काम करते थे, लेकिन पर्यावरण और कृषि के क्षेत्र में लागू और नीतिगत कार्यों में मानवविज्ञानी की संख्या में काफी वृद्धि हुई है क्योंकि बहुराष्ट्रीय निगमों ने सरकारों पर सत्ता हासिल की है। मानवविज्ञानी ऐसे मुद्दों में रुचि रखते हैं जैसे कि खेती के पैमाने, पानी का उपयोग, पेट्रोकेमिकल्स और अन्य इनपुट का उपयोग, मोनो क्रॉपिंग में वृद्धि (भविष्य के अकालों के लिए इसकी सभी संभावित क्षमता के साथ) और गुणवत्ता के जीवन के मुद्दे। अन्य लोग जैव विविधता के नुकसान से संबंधित मुद्दों के साथ शामिल रहे हैं, विशेष रूप से पारंपरिक समाजों को उनकी मूल प्रजातियों को संरक्षित करने में मदद करने के लिए अंतरराष्ट्रीय कृषि अनुसंधान के लिए केंद्रों के साथ काम करने वाले एथनो वनस्पतिविदों के बीच। कृषि और संबंधित मुद्दों पर काम करने वाले अधिकांश मानवविज्ञानी "एक तरह से या किसी अन्य प्रमुख संस्थानों और खाद्य प्रणालियों के रुझानों के लिए, विशेष रूप से कार्य कर रहें हैं।

सामाजिक मानवविज्ञानी पारंपरिक रूप से जमीनी स्तर पर काम करने और लोगों और उनकी समस्याओं और मुद्दों को अच्छी तरह से समझाने का प्रयास करते हैं। सामाजिक मानवविज्ञानी की सबसे बड़ी ताकत में से एक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सैद्धांतिक मुद्दों से निपटने के लिए न केवल इस मामले में प्रणालियों को समग्र रूप से देखने की उनकी क्षमता है, बल्कि वैश्वीकरण के सामाजिक, संरचनात्मक और आर्थिक परिणामों पर ध्यान देने के लिए नीति निर्माताओं को प्रभावित करने के लिए काम करना है।

निश्चित रूप से विरोध का दस्तावेजीकरण करने में सामाजिक मानवविज्ञानी के लिए कई भूमिकाएँ हैं। पूंजीवाद द्वारा बनाई गई संकट की स्थितियों को आज मानवविज्ञान के वास्तविक सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता है, सामाजिक मानवविज्ञानी न केवल वैकल्पिक अध्ययन के साथ नीतियां, लेकिन अधिवक्ताओं के रूप में भी काम करते हैं और लोगों के साथ उन्होंने सरकारों, अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों और बहुराष्ट्रीय निगमों पर दबाव डालने के लिए भी कार्य किया है। ये ऐसे मुद्दे हैं जो इक्कीसवीं सदी के दौरान सामाजिक मानवविज्ञान की भागीदारी के लिए बहुत उपयुक्त हैं। यह उम्मीद की जाती है कि सामाजिक मानवविज्ञानी, उनके गहन ज्ञान और प्रभावी भाषा का उपयोग करने के तरीके सीखने की क्षमता के आधार पर, नीति निर्माताओं को स्पष्ट और छोटे बयान उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। यदि सामाजिक मानवविज्ञानी नीति को प्रभावित करने में विफल रहते हैं, तो बहुत कम समझ और अंतर्दृष्टि वाले अन्य लोग मानवता के विरोध के लिए ऐसा करेंगे (ऑकॉन्गवु और मेन्चर, 2000)।

1.3.2.12 सामाजिक मानवविज्ञान और प्रबंधन (Social Anthropology and Management)

पिछली शताब्दी में, सामाजिक मानवविज्ञानी ने संस्कृति अवधारणा और अनुभवजन्य अनुसंधान के माध्यम से मानव व्यवहार का एक समग्र विश्लेषणात्मक समझ बनाने का प्रयास किया है। यद्यपि सामाजिक मानवशास्त्रीय अवधारणाओं को बड़े पैमाने पर शिक्षाविदों ने परिभाषित किया है, लेकिन स्वास्थ्य देखभाल,

शिक्षा, व्यवसाय और उद्योग जैसे क्षेत्रों में काम करने वाले शोधकर्ताओं ने सामाजिक मानवशास्त्रीय अवधारणाओं का उपयोग किया है। इन शोधकर्ताओं ने बार-बार यह साबित किया कि व्यापक विश्व की समझ के लिए एक मानवशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में बहुत कुछ है। पहली नज़र में, दो पेशे - मानवविज्ञान और प्रबंधन अत्यधिक भिन्न दिखाई दे सकते हैं। लेकिन करीब से देखने पर सामान्य रुचि के कई बिंदुओं का पता चलता है। उदाहरण के लिए, सामाजिक मानवविज्ञानी की तरह, प्रबंधन व्यवसायी मानवीय व्यवहार से बाहर निकलने का प्रयास करते हैं क्योंकि वे व्यवसाय करने वाले लोगों के आयामों को संबोधित करते हैं। इसलिए, सामाजिक मानवविज्ञानी और प्रबंधन विदों के बीच एक मूल्यवान आदान-प्रदान होता है। कुछ हद तक यह सामाजिक मानवविज्ञानी सलाहकार के रूप में काम कर रहे हैं और कई सलाहकार मानवशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य का उपयोग कर रहे हैं (एनएपीए बुलेटिन, 1990)।

समकालीन व्यापारिक दुनिया में परिवर्तन की दर कई मायनों में व्यापारिक जगत को चुनौती देती है। किसी व्यवसाय का अस्तित्व प्रबंधन पर निर्भर करता है। सामाजिक मानवविज्ञान परामर्शदाताओं और उनके ग्राहकों को पांच प्रमुख रुझानों का सफलतापूर्वक जवाब देने में मदद कर सकता है जो भविष्य में हम सभी के जीने और काम करने के तरीके को आकार देंगे वे कई क्षेत्रों में हैं (Giovannini & Rosansky, 1998)।

1. बढ़ता वैश्वीकरण
2. जनसांख्यिकीय रुझान
3. सामाजिक मुद्दे
4. यांत्रिक नवाचार (टेक्नोलॉजिकल इनोवेशन)
5. संगठनात्मक परिवर्तन

एक क्षेत्र विज्ञान के रूप में सामाजिक मानवविज्ञान की अवधारणा, प्रबंधन के वैचारिक और पद्धति दोनों क्षेत्र में बहु-अनुशासनात्मक अनुसंधान को विकसित करने की बड़ी क्षमता रखती है। मानवविज्ञान की मुख्य विशिष्ट विधि प्रतिभागी अवलोकन है। यह विधि संस्थानों और अन्य सामाजिक घटनाओं में परिवर्तन की प्रक्रियाओं को समझने में, तथा ज्ञान प्रबंधन के कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। सामाजिक मानवविज्ञान का उद्देश्य प्रतिभागियों द्वारा संदर्भों की व्याख्या और अनुभव कैसे किया जाता है उन संदर्भ का सटीक विवरण और सटीक समझ करना है। यह अनुसंधान क्षेत्र के अस्पष्ट और मौन पहलुओं को समझने में सक्षम बनाता है। सामाजिक मानवविज्ञान, हाल के घटनाक्रम को ध्यान में रखते हुए, तीन श्रेणियों में प्रबंधन के अध्ययन, अभ्यास और शिक्षण में योगदान कर सकता है।

1.3.3 सारांश (Summary)

इस प्रकार, सामाजिक और सांस्कृतिक मानवविज्ञानी समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, सामाजिक कार्य, सांस्कृतिक अध्ययन, साहित्य, सार्वजनिक स्वास्थ्य, नीति और शासन अध्ययन, प्रबंधन, आदि जैसे सामाजिक विज्ञानों से प्राप्त दृष्टिकोण की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल करते हैं। इस प्रकार, मानव व्यवहार की समझ के लिए अपनी खोज में इन सभी विषयों को संबंधित करने में सक्षम है, और उन सभी को उस तरीके की व्याख्या करने के लिए आकर्षित करता है जिसमें सभी जैविक और सामाजिक कारक समग्रता में मनुष्य की संस्कृति और व्यवहार को चित्रित करते हैं।

1.3.4 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कौन-कौन से विषयों को सामाजिक मानवविज्ञान ka संज्ञानात्मक विषय माना जाता है?
2. समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में सामाजिक मानवविज्ञान का क्या योगदान है?
3. क्या इतिहासकार पिछली घटनाओं और उनके विशेष अनुक्रमों की स्थितियां का अध्ययन सामाजिक मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण को शामिल किए बिना कर सकते हैं?
4. सांस्कृतिक अध्ययन और साहित्य सामाजिक मानवविज्ञान से कैसे संबंधित हैं ?
5. पारंपरिक और साथ ही समकालीन समाज की विभिन्न समस्याओं को हल करने में सामाजिक मानवविज्ञानी की विविध भूमिकाएँ क्या हैं?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सामजिक मानवविज्ञान एवं प्रबंधन में क्या संबंध है?
2. सामाजिक मानवविज्ञान एवं जनस्वास्थ्य में क्या संबंध है।
3. सामाजिक मानवविज्ञान एवं नीति शास्त्र में क्या संबंध है?
4. सामाजिक मानवविज्ञान एवं अर्थशास्त्र में क्या संबंध है? स्पष्ट कीजिए।
5. सामाजिक मानवविज्ञान एवं इतिहास के संबंधों की व्याख्या कीजिए।

1.3.5 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Ahmad, A.S. 1986. 'Towards Islamic Anthropology'. *The American Journal of Islamic Social Sciences*. Vol. 3, No. 2. I986, 181.
- Anderson, Robert. 1996. *Magic, Science and Health. The Aims and the Achievements of Medical Anthropology*. Fort Worth: Harcourt Brace.
- Ashley, K. M.1990. *Victor Turner and the construction of Cultural Criticism; between Literature and Anthropology*. Indian University Press.
- Barrett, R. Stanley. 2009. *Anthropology: A student's guide to theory and method*. Toronto: University of Toronto Press.
- Boas, F. 1897. 'The social organisation and secret societies of the Kwakiutl' in United States National Museum, Report for 1895. Pp. 311.
- Bourguignon, Erika.1979. *Psychological Anthropology: An introduction to human nature and cultural differences*. New York: Holt, Rinehart and Winston.
- Cohen, R. 1967. 'Anthropology and Political Science: Courtship or Marriage'. *American Behavioural Scientist*. Nov. 1967. Vol. 11. Pp 21-7.
- Comelles, Josep M. & Dongen, Els Van. (eds.) 2002. *Themes in Medical Anthropology*. Perugia: Fondazione Angelo Celli Argo.
- Ember, Carol R., & Ember, Melvin (ed.) 2004. *Encyclopedia of Medical Anthropology: Health and Illness in the World's Cultures*. New York: Kluwer Academic/Plenum Publishers, ISBN 0-306-47754-8.
- Evans–Pritchard, E. E. 1950. *Social Anthropology and Other Essays.* Illionis: The Free Press of Glencoe.
- ____________________ 1968. *Theories of Primitive Religion*. USA: Oxford University Press.
- Foucault, Michel. 1963. *The Birth of the Clinic: An Archaeology of Medical Perception*. London: Routledge.
- Geertz, Clifford. 1988. *Works and Lives. The Anthropologist as Author*. Stanford: Stanford University Press.

- ____________________. 1983. *Local Knowledge: Further Essays in Interpretive Anthropology*. New York: Basic Books.
- ____________________. 1973. *The Interpretation of Cultures*. New York: Basic Books.
- Giddens, A. 1990. *The Consequences of Modernity*. Stanford, CA: Stanford University. Press.

- ____________________. 1995. 'Epilogue: notes on the future of anthropology'. In the *Future of Anthropology: Its Relevance to the Contemporary World*. ed. A Ahmed, C Shore, pp. 272-77, London: Athlone.
- Hall, John. R. & Neitz, Mary Jo.1993. *Culture: Sociological Perspectives*. New Jersey: Prentice Hall, Englewood Cliffs.
- James, Clifford and George Marcus. eds. 1986. *Writing Culture: Poetics and Politics of Ethnography* Berkeley: University of California Press.
- James, Clifford.1988. *Predicament of Culture: Twentieth-century Ethnography, Literature and Art*. Cambridge: Harvard University Press.
- J. Giovannini and L.M.H. Rosansky 1998. 'Anthropology and Management Consulting: Forging a new alliance'. (Vol. 9): *American Anthropological Association*. http://onlinelibrary.wiley.com/doi/10.1111/1467-8551.00042/abstract
- Keith, Hart.1996. 'Comments'. In Tim Ingold (ed.), *Key Debates in Anthropology*.London and New York: Routledge.
- Leach, Edmund.1965. *Political Systems of Highland Burma-A Study of Kachin Social Structure.* Boston: Beacon Press.
- Linstead, S. 1997. 'The Social Anthropology of Management.' *British Journal of Management*. 8: 85–98. doi: 10.1111/1467-8551.00042

- Mahn, Robert A. and Mercia C. Inhorn (Eds).2011. *Anthropology and Public Health- Bridging differences in culture and society*. London: Oxford University Press.
- Nadel, S. F. 1951. *The Foundations of Social Anthropology.* London: Cohen & West
- Okongwu, F.A.and J.P. Mencher. 2000. 'The Anthropology of Public Policy: Shifting Terrains'. *Annual Review of Anthropology*, 29:107-24.
- Payne, Malcolm. 1997. *Modern Social Work Theory.* New York: Palgrave.
- Younghusband, Eilleen.1964. *Social Work and Social Change*. London: George Allen and Unwin Ltd.
- Wedel, Janine R. Cris Shore, Gregory Feldman and Stacy Lathrop. 2005. 'Toward an Anthropology of Public Policy'. *The ANNALS of the American Academy of Political and Social Science.* 600; 30. DOI: 10.1177/0002716205276734
- Winslow, C.E.A.1920. The Untitled field of Public Health, Science, n.s.51.pp.23 (1990), Introduction/The Background/The Field of Management Consulting/The Consulting Process/The Contributions of Anthropology/Management Consulting Knowledge and Skills/Becoming a Management Consultant/A Note to Managers/ Benefits from the Exchange/Notes/References Cited. *NAPA Bulletin*, 9: 1–48. doi: 10.1525/napa.1990.9.1.1

सुझाए गए लेख (Suggested Readings)

- Beattie, J. 1964. *Other Cultures: Aims, Methods and Achievements in Social Anthropology*. London: Routledge Kegan Paul.
- Evans–Pritchard, E.E. 1951. *Social Anthropology*. London: Cohen and West.
- Herskovits, Melville J. 1952. *Man and His Works*. New York: Knopf.

- Hoebel, E. A. and Frost, E. L. 1976. *Cultural and Social Anthropology.* New Delhi. Tata McGraw-Hill Publishing Company Ltd.
- Mair, Lucy. 1965. *An Introduction to Social Anthropology.* New Delhi: Oxford University Press.

खंड 2 संस्कृति एवं परिवार

इकाई 1 संस्कृति: प्रकृति, परिभाषा एवं मानवशास्त्रीय अर्थ

(Culture: Nature, Definition and Anthropological Meaning)

इकाई की रूपरेखा

2.1.0 उद्देश्य
2.1.1 प्रस्तावना (Introduction)
2.1.2 संस्कृति की प्रकृति
    2.1.2.1 मानव: संस्कृति का निर्माता
    2.1.2.2 संस्कृति की विशेषताएं
    2.1.2.3 संस्कृति के लक्षण
2.1.3 संस्कृति की परिभाषाए
2.1.4 संस्कृति की मानवशास्त्रीय परिभाषाएं
2.1.5 बोध प्रश्न
2.1.6 सारांश
2.1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप यह जानने में सक्षम होंगे कि:

- संस्कृति की प्रकृति क्या है और मानव में ही क्यों पायी जाती है?
- संस्कृति की विशेषताएँ और लक्षण क्या हैं?
- संस्कृति की विभिन्न परिभाषाए क्या है और मानवविज्ञानी दृष्टिकोण से संस्कृति का क्या अर्थ है?

2.1.1 प्रस्तावना

यद्यपि संस्कृति शब्द का उपयोग आज अधिकांश सामाजिक विज्ञानों द्वारा एक वैज्ञानिक अवधारणा के रूप में किया जाता है, लेकिन मानवविज्ञान में इसकी सबसे व्यापक परिभाषा प्रदान की गई है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। यही कारण है कि हम समाजों में एक साथ रहते हैं। दिन-प्रतिदिन हम एक-दूसरे के साथ बातचीत करते हैं और सामाजिक संबंधों को विकसित करते हैं। हर समाज में एक संस्कृति होती है, चाहे वह संस्कृति कितनी भी सरल क्यों न हो। हर समाज के सदस्य एक साझा संस्कृति का निर्माण करते हैं जिसे उन्हें

सीखना होता है। संस्कृति विरासत में नहीं मिली है। यह भाषा रूपी वाहन के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रेषित की जाती है। समाजों की तरह, दुनिया भर में संस्कृतियां भिन्न हैं। यह इकाई मानवशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में संस्कृति के अर्थ और परिभाषा पर चर्चा करती है।

2.1.2 संस्कृति की प्रकृति

संस्कृति एक ऐसा शब्द है जिसे हम सभी अपने दिन-प्रतिदिन के उपयोग में लाते हैं। अपने दैनिक उपयोग में, संस्कृति परिष्कृत व्यवहार के रूप में व्यक्तिगत शोधन को संदर्भित करता है। संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा से लिया गया है 'संस्कृति' तथा 'संस्कृत' दोनों ही शब्द संस्कार से बने हैं संस्कार का शाब्दिक अर्थ है कुछ धार्मिक क्रियाओं की पूर्ति करना अर्थात विभिन्न संस्कारों के माध्यम से सामूहिक जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति। लेकिन मानवविज्ञानी काफी अलग तरीके से इस शब्द को परिभाषित एवं उपयोग करते हैं। संस्कृति शब्द का उपयोग मानवविज्ञानी द्वारा बहुत व्यापक अर्थों में किया जाता है क्योंकि संस्कृति में "जीवन की बारीक चीजें" की तुलना में बहुत अधिक सम्मलित होता हैं। "सुसंस्कृत" लोगों और "असंबद्ध" लोगों के बीच कोई भेदभाव नहीं है, क्योंकि सभी लोग मानवविज्ञान के दृष्टिकोण से संस्कृति का निर्माण करते हैं। वस्तुतः संस्कृति हमारे रहन-सहन तथा सोचने समझने की शैली में, हमारे दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों में, कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन तथा आमोद-प्रमोद में हमारे स्वभाव की अभिव्यक्ति है।

मानव इसलिए मानव है, क्योंकि उसके पास **संस्कृति** है, इसके अभाव में वह पशु के समान हैं। संस्कृति ही मानव की सर्वोत्तम रचना है। वस्तुतः मनुष्य संस्कृति का धारक, निर्माता, संवर्धक और संरक्षक है। **भाषा** को मनुष्य का सबसे बड़ा सांस्कृतिक अविष्कार माना जा सकता है।

2.1.2.1 मानव: संस्कृति का निर्माता

मानवशास्त्री **लेस्ली व्हाइट** ने मानव की **प्रतीकात्मक क्षमता** को संस्कृति का आधार माना है। आपके अनुसार प्रतीकात्मक क्षमता के कारण ही मनुष्य **जल** और **पवित्र जल** में अंतर स्पष्ट कर सका, जबकि अन्य प्राणी ऐसा करने में असमर्थ है। अपनी पुस्तक **दी इवोल्यूशन ऑफ कल्चर** (1959) **व्हाइट** ने मानव और केवल मानव को ही संस्कृति का निर्माता माना है। **व्हाइट** ने मानव की पांच विशेषताएं तथा मानसिक क्षमताओं को संस्कृति के निर्माण के लिए उत्तरदाई माना है, जो इस प्रकार है-

मानव की पांच विशेषताएं जो संस्कृति के निर्माण के लिए उत्तरदाई है				
मानव कि सीधे खड़े होने की क्षमता तथा द्विपादगमन	स्वतंत्रतापूर्वक घुमाय जा सकने वाले हाथ एवं अंगूठे की विपरीत स्थिति	मानव की तीक्ष्ण एवं केंद्रित की जा सकने वाली दृष्टि	मानव का मेधावी मस्तिष्क	प्रतीकों एवं भाषा के निर्माण की क्षमता

2.1.2.2 संस्कृति की विशेषताएं

उपर्युक्त परिभाषाएं संस्कृति की प्रकृति को एक सीमा तक प्रतिबिंबित करती हैं, तथापि संस्कृति की **अधोलिखित विशेषताएं** उसकी वास्तविक प्रकृति को पूर्णता स्पष्ट करती है-

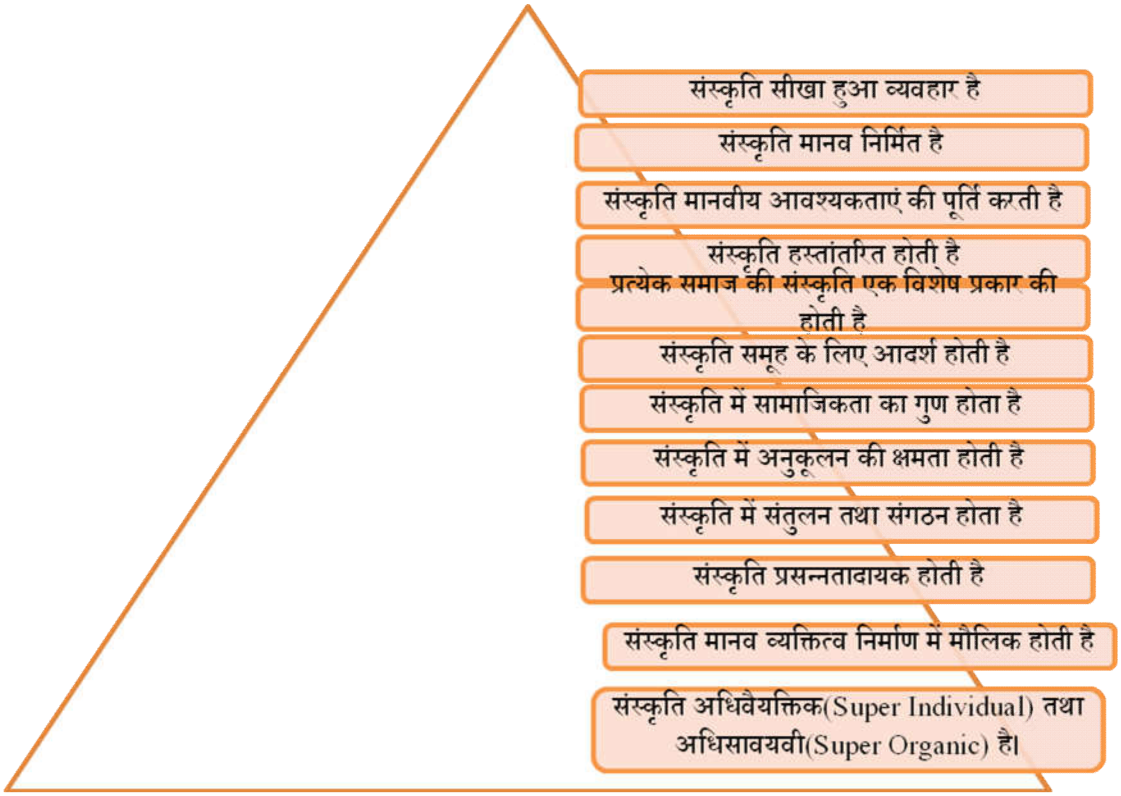

इन विशेषताओं का उल्लेख ए. एल. क्रोबर द्वारा किया गया है। संस्कृति **अधिवैयक्तिक** अर्थात संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की रचना नहीं है, व्यक्ति उसके छोटे से भाग के निर्माण में अपना योगदान अवश्य देता है किंतु उसकी स्थिरता एवं निरंतरता पर उसका अधिकार नहीं होता क्योंकि संस्कृति व्यक्तिगत व्यवहार ना होकर सामूहिक व्यवहार है। व्यक्तिगत व्यवहार उस व्यक्ति की मृत्यु के बाद समाप्त हो जाता है लेकिन सामूहिक व्यवहार पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते हैं। इसी आधार पर संस्कृति को अधिवैयक्तिक (व्यक्ति से ऊपर) कहा गया है।

संस्कृति **अधिसावयवी** (Super Organic) है। सर्वप्रथम **हरबर्ट स्पेंसर** ने संस्कृति के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया, जबकि एक अवधारणा के रूप में इसका प्रयोग सर्वप्रथम **लिप्पर्ट** द्वारा किया गया। इस अवधारणा को विस्तार **क्रोबर** द्वारा दिया गया। वस्तुत: संस्कृति **अधिसावयवी** (सुपरऑर्गेनिक) इस अर्थ में है कि मानव ने अपनी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं का उपयोग कर संस्कृति का निर्माण किया है। व्यक्ति

सावयव (ऑर्गेनिक) है किंतु इसने जिस संस्कृति का निर्माण किया है वह सावयव से ऊपर है। सावयव से अधिक है और इसे ही **अधिसावयवी** (Super Organic) कहा गया है।

क्लकहौन के इस विचार को निष्कर्ष के तौर पर देखा जा सकता है कि संस्कृति में अधिवैयक्तिक (Super Individual) तथा अधिसावयवी (Super Organic) होने का अर्थ केवल इतना है कि मनुष्य किसी संस्कृति में जन्म लेता है, किंतु संस्कृति सहित जन्म नहीं लेता। संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की विरासत नहीं है। वह इसके निर्माण में अपना योगदान अवश्य देता है किंतु संस्कृति का उद्गम विकास, परिवर्तन एवं परिमार्जन एक व्यक्ति पर निर्भर ना होकर संपूर्ण समाज पर होता है।

हर्सकोविट्स ने अपनी पुस्तक **मैन एण्ड हिस वर्क** में संस्कृति के निम्नलिखित विशेषताओं की चर्चा की है –

1) संस्कृति सीखी जाती है।
2) यह एक अर्जित व्यवहार है।
3) संस्कृति जैविकीय, पर्यावरण संबंधी, मनोविज्ञान और मानव अनुभवों के ऐतिहासिक तत्व से प्राप्त की जाती है।
4) संस्कृति का वर्गीकरण संभव है।
5) संस्कृति संरचित है, या चिंतन के प्रतिमानों, अनुभव एवं व्यवहारओं से बनती है।
6) संस्कृति गतिशील है।
7) संस्कृति परिवर्तनशील एवं सापेक्षिक है।
8) विज्ञान की पद्धतियों के विश्लेषण द्वारा संस्कृति अपनी नियमितताओं को प्रदर्शित करती है।
9) संस्कृति एक यंत्र है जहां वैयक्तिक सामंजस्य और संपूर्ण समायोजन द्वारा रचनात्मक अनुभवों को प्राप्त किया जाता है।

2.1.2.3 संस्कृति के लक्षण

क्रोबर ने अपनी पुस्तक **नेचर ऑफ कल्चर** (1952) में संस्कृति के चार लक्षणों की चर्चा की है

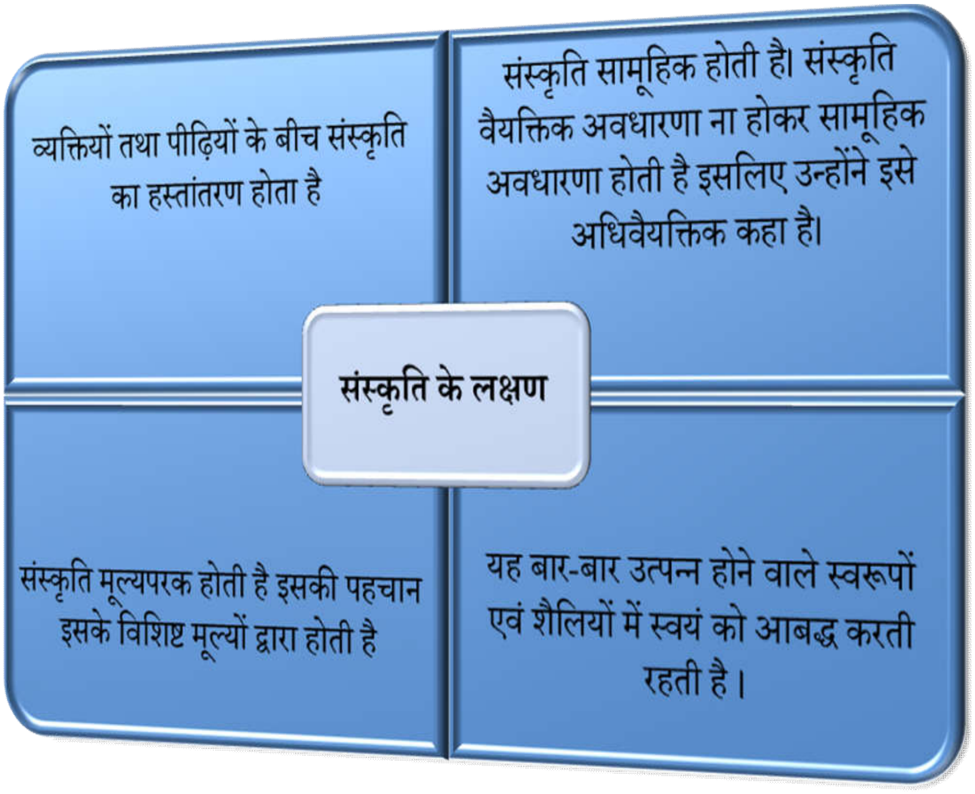

2.1.3 संस्कृति की परिभाषा

प्रत्येक समाज की एक संस्कृति होती है, यह सार्वभौमिक होती है, हालांकि कुछ समाजों में यह सरल हो सकती है, जबकि अन्य में जटिल। इसी तरह हर इंसान सुसंस्कृत है संस्कृति जीनस होमो की विशेषता है। संस्कृति जीवन-यापन की एक रूप-रेखा है। यह मानव जीवन का आधार है। यह जीवविज्ञान पर टिकी हुई है (अर्थात मानव का विक्षित मस्तिष्क, स्वतंत्रतापूर्वक घुमाय जा सकने वाले हाथ इत्यादि) लेकिन जैविक नहीं है। यह मानसिक, तर्कसंगत और भौतिक, तकनीकी प्रक्रियाओं और उत्पादों की समग्रता है। इसी समग्रता को संस्कृति कहते हैं।

न्यूनतम भौतिक वस्तुओं (मूर्त) के बिना मनुष्य का रहना संभव नहीं है। लोगों के बीच सामाजिक संबंधों के संजाल के बिना, मानव जीवन असंभव है। विचारों, नियमों, आदर्शों, प्रतीकों और सोच के पैटर्न (अमूर्त) के बिना मानव अस्तित्व अव्यावहारिक है। प्रतीकों, विचारों, नियमों, आदर्शों और सोच के पैटर्न, सामाजिक संबंधों और भौतिक वस्तुओं के संजाल में एक साथ मानसिक, तर्कसंगत सामग्री, तकनीकी प्रक्रियाएं और उत्पाद शामिल हैं। संस्कृति इस पूरे को एकीकृत करने की रूप-रेखा है। यह मानव के जीवन शैली का कुल समग्र है। संस्कृति मानव जीवन के लिए एक संभावित मार्गदर्शक के रूप में कार्य करती है। एक

मार्गदर्शक के रूप में, यह मनुष्य को यह जानने में मदद करती है कि अच्छा और बुरा, वांछनीय, महत्वपूर्ण और महत्वहीन, तर्कसंगत और तर्कहीन क्या है।

संस्कृति जीवन के लिए एक ऐतिहासिक रूप से निर्मित रूप-रेखा है। पीढ़ी दर पीढ़ी इसमें नई चीजें जोड़ी जाती हैं जिससे संस्कृति का उदविकास और परिवर्तन होता है। वर्तमान में हमारे पास जो संस्कृति है, वह हमारे पूर्वजों द्वारा बनाई गई चीजों के साथ मिलती है तथा बाद की पीढ़ियों द्वारा इसमें कुछ नया जोड़ा जाता है। संक्षिप्त में कहें तो, संस्कृति गतिशील है, जैसे-जैसे समय बीतता है, पहले से मौजूद लोगों के लिए नए तत्व जोड़े जाते हैं।

संस्कृति मानव प्रजाति के लिए अद्वितीय है। किसी भी प्रजाति के पास अपनी जटिलता में मनुष्य की तरह, सीखने, संचार करने और जानकारी को संग्रहीत करने, संसाधित करने और उसी सीमा तक उपयोग करने की क्षमता नहीं है। संस्कृति में नैतिक बल होता है जो मानव व्यवहारों के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है। न तो बंदरों और न ही वानरों के जीवन में नैतिक बल है। नैतिकता संस्कृति का एक हिस्सा है। इसलिए मानव संस्कृति में नैतिक आधार हैं।

संस्कृति जैविक आनुवंशिकता के बजाय सामाजिक शिक्षा का एक उत्पाद है जिसका अर्थ है कि संस्कृति गैर-आनुवंशिक है। यह माता-पिता से संतानों को विरासत में नहीं मिल सकती है, लेकिन इसे सामाजिक रूप से माता-पिता से बच्चों में प्रसारित किया जा सकता है। जानवरों की तरह, मानव व्यवहार नहीं कर सकता। पशु व्यवहार जन्मजात है। जानवरों को व्यवहार या अधिकांश, प्रोटो-संस्कृति विरासत में मिलती है, लेकिन मनुष्य समाजीकरण द्वारा संस्कृति प्राप्त करते हैं।

सभी समाजों में संस्कृति है, हालांकि समान नहीं है। मनुष्यों या समाजों के विभिन्न समूहों में अलग-अलग संस्कृतियाँ हैं। यह सांस्कृतिक विविधता को दर्शाता है जिसका अर्थ है कि संस्कृति में एकता के साथ-साथ विविधता भी है। सभी मनुष्यों में संस्कृति है, लेकिन सभी संस्कृतियाँ एक जैसी नहीं हैं। इस संदर्भ में, "एक संस्कृति" और "संस्कृति" के बीच अंतर करना आवश्यक है। संस्कृति शब्द पूरी तरह से मानव समाजों के जीवन के तरीके को दर्शाता है और "एक संस्कृति" शब्द मानव समाज के विशिष्ट हिस्से के जीवन के तरीके को दर्शाता है जिसे तकनीकी रूप से एक समाज कहा जाता है।

संस्कृति का विश्लेषण तीन आयामों के संदर्भ में किया जा सकता है (अप्पादुरई, 1996)। पहले स्तर पर, मनुष्य प्रकृति और जीवन से संबंधित है। वे वस्तुओं का उत्पादन और उपयोग करते हैं, अंततः उन्हें विनिमय करते हैं। दूसरा स्तर प्रतीकों और अनुष्ठानों से संबंधित है जो मनुष्यों को सामाजिक संबंधों को बनाने और समुदाय का निर्माण करने में मदद करते हैं। तीसरा स्तर अंतिम अर्थ की तलाश है जो लक्ष्य और प्रेरणा प्रदान करता है। धर्म और विचारधाराएं इस खोज का उत्तर प्रदान करती हैं। ये तीन स्तर एक सामाजिक समूह को एक पहचान प्रदान करते हैं और इसे अन्य समूहों से अलग करते हैं।

अप्पादुरई (1996) ने वैश्विक सांस्कृति का पांच-आयामी मॉडल विकसित किया है। पांच आयामों को "एथनोस्कोप्स", "मेडिसकैप्स", "टेक्नोसेप्स", "फाइनेंसैप्स" और "आइडेसैपेस" (“ethnoscapes”, “mediascapes”, “technoscapes”, “finanscapes” and “ideoscapes) नाम दिए गए हैं। वास्तव में, ये वैश्विक सांस्कृति की मानसिक तस्वीर के रूप में चित्रित करते हैं। ethnoscapes द्वारा, अप्पादुरई का अर्थ है उन व्यक्तियों का परिदृश्य जो तबदीली की दुनिया का निर्माण करते हैं जिसमें हम रहते हैं: पर्यटक, आप्रवासी, शरणार्थी, निर्वासित और अन्य गतिशील समूह और व्यक्ति। Technoscape प्रौद्योगिकी का वैश्विक विन्यास है। Finanscape वैश्विक पूंजी का आयाम है- मुद्रा बाजारों, राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंजों और वस्तुओं का। mediascapes समाचार पत्रों द्वारा दी गई सूचना के वितरण और प्रसार को संदर्भित करता है। पत्रिकाओं, टीवी स्टेशनों, फिल्म निर्माण स्टूडियो, आदि और मीडिया द्वारा बनाई गई छवियों के लिए। Ideoscape भी छवियों का एक आयाम है, लेकिन राजनीतिक रूप से निर्देशित और अक्सर राज्यों की विचारधाराओं या आंदोलनों की प्रति-विचारधाराओं के साथ क्या करना है इसको संदर्भित करता है।

टॉमलिंसन (1999) के अनुसार संस्कृति गतिशील है। लोग संस्कृति बनाते हैं और संस्कृति लोगों को बनाती है। संस्कृति बदलती आर्थिक और सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों के साथ परिवर्तित होती है। एक संस्कृति अन्य संस्कृतियों के साथ बदलती है जिसके साथ उसका वाणिज्यिक या राजनीतिक संपर्क होता है। हालांकि, संस्कृतियों का निर्माण लोगों द्वारा किया जाता है। संस्कृति के स्रोत सामाजिक संस्थाएं हैं जो स्वतंत्रता और रचनात्मकता के साथ लोगों का एक समूह। रचनात्मक व्यक्ति संस्कृति के परिवर्तन और विकास में योगदान कर सकते हैं। लोगों के लिए संस्कृति केवल प्रभावों की वस्तु नहीं हैं, बल्कि ऐसे विषय हैं जो विभिन्न प्रभावों को निचोड़ सकते हैं और उन्हें अस्वीकार या एकीकृत कर सकते हैं।

संस्कृति के संबंध में **फीदरस्टोन (1996)** का मानना है कि “संस्कृति मानव के जीवन का एक ऐसा पक्ष है, जो उन्हें मानवीय एवं सामाजिक प्रकृति का बनाता है”। मोरिश ओपलर ने अपनी पुस्तक ‘एन अपाचे लाइफ वे’ (1941) में संस्कृति के लिए लयात्मक पहलुओं को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। उनके अनुसार “प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी सांस्कृतिक विशेषता होती है, जो दूसरे से बिलकुल भिन्न होती है। सांस्कृतिक भिन्नता का कारण उनमें पाए जाने वाले भिन्न-भिन्न लय हैं। लय एक प्रकार की प्रेरणा होती है, जो भौतिक तथा अभौतिक दोनों प्रकार की संस्कृतियों को विशिष्ट रूप प्रदान करती है। इसी तरह क्रोबर (1948) संस्कृति का वर्णन करते हुए उसे अर्जित और संक्रमित चेष्टाविषक प्रतिक्रियाएं, आदतें, तकनीकी, विचार, मूल्यों का समूह और उससे प्रभावित होने वाला वर्तन बताते हैं।

संस्कृति की अवधारणा की समझ के लिए विभिन्न परिभाषाओं, अवधारणाओं और दृष्टिकोणों के बावजूद, यह माना जाता है कि संस्कृति जीवन का एक तरीका है, नैतिकता संस्कृति का एक हिस्सा है। व्यावहारिक रूप से सभी आधुनिक परिभाषाएं प्रमुख विशेषताओं को साझा करती हैं। सारांश में संस्कृति -

- ✓ संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार है जिसे प्रत्येक व्यक्ति उस संस्कृति का सदस्य बन कर सीखता है।

- ✓ संस्कृति को साझा किया जाता है क्योंकि यह सभी लोगों को व्यवहार के बारे में विचार प्रदान करती है।
- ✓ यह प्रतीकात्मक है, क्योंकि यह प्रतीकों के हेर-फेर पर आधारित है।
- ✓ यह प्रणालीगत और एकीकृत है चूंकि संस्कृति के अंग एक एकीकृत संपूर्ण में एक साथ काम करते हैं।

बोडले (1994) सारांश देते हुए कहते हैं कि "संस्कृति कम से कम तीन तत्वों या घटकों से बनी है: लोग क्या सोचते हैं, क्या करते हैं और वे जो भौतिक उत्पाद तैयार करते हैं"। साझा मूल्यों और विश्वासों के रूप में संस्कृति को परिभाषित करने में यह समस्या है कि लोगों के बीच एक बड़ा अंतर हो सकता है, जैसे कि वे क्या सोचते हैं और उन्हें क्या करना चाहिए (मूल्य) और वे वास्तव में क्या करते हैं (व्यवहार)। इन घटकों के अलावा, संस्कृति में कई गुण या विशेषताएं हैं।

2.1.4 संस्कृति की मानवशास्त्रीय परिभाषाएं

क्रोबर तथा **क्लकहौन** ने अपनी पुस्तक **ऑन द कंसेप्ट एण्ड डेफिनेशन ऑफ कल्चर** (1952) में संस्कृति की 300 भाषाओं का संकलन प्रस्तुत किया और बताया कि इस शब्द (संस्कृति) की 164 परिभाषाएं हैं। अपनी पुस्तक **प्रिमिटिव कल्चर** (1871) में **टायलर** ने संस्कृति की सबसे विस्तृत परिभाषा प्रस्तुत की जिसे **मैरिल तथा एल्ड्रिज** ने संस्कृति की शास्त्रीय परिभाषा (क्लासिकल डेफिनेशन) की संज्ञा दी है। **टायलर** के शब्दों में "संस्कृति और सभ्यता वह जटिल समग्रता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा और ऐसे ही अन्य क्षमता और आदतों का समावेश है जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।" **टायलर** की परिभाषा में दो बातें स्पष्ट है 1. संस्कृति अर्जित की जाती है अर्थात यह वंशानुगत नहीं होती तथा 2. व्यक्ति अपनी संस्कृति समाज में रहकर सीखता है।

टायलर की परिभाषा ने उस वैज्ञानिक अवधारणा को खंडित कर दिया जिसके अनुसार यह मान्यता प्रचलित थी की संस्कृति अनुवांशिकता से प्राप्त की जाती है। फल स्वरुप श्वेत संस्कृति को श्रेष्ठ तथा अश्वेत संस्कृति को निम्न समझा जाता था। परंतु इस परिभाषा की कमी ये है की इसमें संस्कृति और सभ्यता को एक दूसरे का पर्यायवाची माना गया है जबकि यह दोनों अलग-अलग अवधारणाएं हैं।

ब्रिटिश प्रकार्यवादी मैलीनोवस्की ने संस्कृति को प्रकार्यात्मक ढंग से बताया है। **मैलिनोवस्की** ने संस्कृति को "जीवन की समग्रता माना है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने शारीरिक, मानसिक एवं अन्य आवश्यकता की पूर्ति करता है और अंततः अपनी स्वायत्तता (प्रकृति के बंधनों से मुक्ति) प्राप्त करता है" के रूप में परिभाषित किया। उनके अनुसार संस्कृति का संबंध वंशागत उपकरण, समान, शिल्पशास्त्रीय प्रक्रिया, विचार, आदत तथा मूल्य से है। इस प्रकार मलिनोवस्की ने संस्कृति को अभौतिक तथा भौतिक अथवा मूर्त

या अमूर्त में विभाजित करने का प्रयास किया है। बाद में अपनी पुस्तक 'साइंटिफिक थ्योरी ऑफ कल्चर' (1944) में संस्कृति को प्रकार्यवाद सिद्धांत के अनुसार परिभाषित किया है, उनके अनुसार "संस्कृति मानव की आवश्यकता पूर्ति का साधन है।" चूंकि संस्कृति का अस्तित्व मानव के अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। अतः संस्कृति का मुख्य प्रकार्य मानव का अस्तित्व बनाए रखना है।

हर्षकोविट्स ने अपनी पुस्तक 'मैन एण्ड हिज वर्क' (1956) में "संस्कृति को पर्यावरण का मानव निर्मित भाग मानते हैं।" उन्होंने पर्यावरण को दो भागों में विभाजित किया है- प्राकृतिक तथा सामाजिक। उन्होंने सामाजिक पर्यावरण के अंदर मानव निर्मित सभी भौतिक तथा अभौतिक सांस्कृतिक वस्तुओं को रखा है अर्थात व्यक्ति को चारों ओर से प्रभावित करने वाली जितनी वस्तुओं का निर्माण मनुष्य द्वारा किया गया व सभी संस्कृति के अंग है।

मजूमदार एवं मदान ने लोगों के जीने के ढंग को ही संस्कृति माना है।

रॉबर्ट एच. लुवी (1936) ने संस्कृति कि व्याख्या करते हुए कहते हैं कि "समाज में से खुद की सृजन प्रवृत्ति से नहीं बल्कि औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा द्वारा, विगत काल से विरासत में प्राप्त किए गए रीति-रिवाजों का कुल जोड़ ही संस्कृति है।" **लोवी** ने संपूर्ण सामाजिक परंपरा को ही संस्कृति कहा है।

क्लूखौन (1952) ने सांस्कृतिक तत्वों को दो भागों में विभाजित करने का प्रयास किया है- प्रकट तथा अप्रकट। प्रकट सांस्कृतिक तत्वों का अवलोकन मानव इंद्रियों द्वारा भी कर सकते हैं, जबकि संस्कृति के अप्रकट तत्वों का अवलोकन केवल दक्ष मानवशास्त्री ही कर सकते हैं। संक्षेप में **क्लकहौन** ने संस्कृति को विचारने, अनुभव करने एवं क्रिया करने की एक विधि माना है।

राल्फ लिंटन ने "संस्कृति ज्ञान, अभिव्यक्ति एवं आदतन व्यवहारों का कुल संग्रह है। इसे किसी समाज के सदस्य आपस में बांटते हैं एवं संचालित करते हैं।"

रुथ बेनेडिक्ट ने "संस्कृति, व्यक्ति की भांति विचार और क्रिया का एक स्थिर प्रतिमान है।"

इसी प्रकार **होबेल** ने अपनी पुस्तक 'मैन इन प्रिमिटिव वर्ड' (1958) में "संस्कृति को सीखे हुए व्यवहार प्रतिमान का कुल योग बताया है।" वे संस्कृति को जैविक वंशागत नहीं मानते हैं, बल्कि वह संस्कृति को सामाजिक अविष्कारों का परिणाम मानते हैं। संक्षेप में **हावेल** ने "संस्कृति संबंधित सीखे हुए 'व्यवहार प्रतिमानों' का संपूर्ण योग है, जोकि एक समाज के सदस्यों की विशेषताओं को बतलाता है, अत: वह प्राणीशास्त्रीय विरासत का परिणाम नहीं है।"

पिडिंगटन ने अपनी पुस्तक 'एन इंट्रोडक्शन टू सोशल एंथ्रोपोलॉजी' (1952) में संस्कृति को भौतिक तथा बौद्धिक साधनों का संपूर्ण योग बतलाया है। इस प्रकार मैलीनोवस्की, बीडेन तथा पिडिंगटन की परिभाषाओं में संस्कृति के अभौतिक तथा भौतिक पक्ष प्रकट होते हैं। भौतिक संस्कृति के अंतर्गत गांव, घर, घेरेलू उपकरण, कृषि उपकरण, युद्ध उपकरण, मनोरंजन उपकरण, भोजन, वस्त्र, आभूषण इत्यादि आते हैं। जबकि अभौतिक संस्कृति के अंतर्गत ज्ञान, विश्वास, मूल्य, प्रथा, कानून, कला, संस्था इत्यादि आते हैं।

संस्कृति के यह दोनों पक्ष एक दूसरे से संबंधित एवं पूरक हैं। संक्षेप में **पिडिंग्टन** ने "संस्कृति उन भौतिक तथा बौधिक साधनों का संपूर्ण योग है, जिनके द्वारा मानव अपनी प्राणीशास्त्रीय तथा सामाजिक आवश्यकताएं को पूरा करता है तथा अपने पर्यावरण से अनुकूलन करता है"

रेडफील्ड (1941) के अनुसार "संस्कृति कला तथा कलात्मक वस्तुओं द्वारा प्रदर्शित परंपरागत ज्ञान का संगठित समूह है।" **रॉबर्ट रेडफील्ड** ने संस्कृति को "**अ बॉडी ऑफ शेयर्ड अंडरस्टैंडिंग**" कहकर संस्कृति की अवधारणा में वैचारिकता के पक्ष को महत्व प्रदान किया है। संक्षेप में **रेडक्लिफ ब्राउन** ने "परंपराओं के अधिग्रहण एवं उनके हस्तांतरण की प्रक्रिया जिनके परिणाम स्वरूप समाज का अस्तित्व सुनिश्चित होता है, संस्कृति है।"

इसी क्रम में अमेरिकी मानवशास्त्रीय लेस्ली वाइट ने संस्कृति के सांकेतिक दृष्टिकोण पर जोर दिया है। वाइट के अनुसार "संस्कृति एक सांकेतिक तथा निरंतर चयन की जाने वाली गतिशील प्रक्रिया है।" **तथा** "संस्कृति प्रतीकों एवं प्रतीकात्मक व्यवहारओं की **समीष्टि** होती है।"

डेविड विडने (दार्शनिक मानवशास्त्री) ने "संस्कृति कृषि-तथ्यों (Agrofacts) प्राविधिक तथ्यों (Artifacts) सामाजिक तथ्य (Sociofacts) तथा मानसिक तथ्यों (Mentifacts) की उपज है।" इन्होने अपनी पुस्तक 'थ्योरिटिकल एंथ्रोपोलॉजी' (1952) में संस्कृति को कृषि तथ्यों, मानसिक तथ्यों, प्राविधिक तथ्यों तथा सामाजिक तथ्यों की उपज मानते हैं। संस्कृति की परिभाषा को और प्रस्तुत करते हुए बीडेन ने कहा है कि "संस्कृति के अंतर्गत व्यक्ति के व्यवहार तथा विचार के साथ-साथ बौद्धिक, कलात्मक और सामाजिक संस्थाएं आती हैं। इन संस्थाओं के माध्यम से मानव अपनी जैविक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तथा अपने पर्यावरण के साथ अनुकुलन करने का प्रयास करता है।

एस. सी. दुबे के अनुसार "हम उसे (संस्कृति को) मानसिक, नैतिक, भौतिक, आर्थिक, समाजिक, राजकीय, कलात्मक अथवा सारांश में मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष में सीखे हुए व्यवहार प्रकारों की समग्रता कह सकते हैं।"

इस प्रकार परंपरागत मानवशास्त्रियों ने समय-समय पर अपने शोधों एवं खोजों के आधार अपने विचार प्रस्तुत कर संस्कृति को परिभाषित किया है। इसके साथ ही साथ उन्होंने संस्कृति को कभी भौतिक, कभी अभौतिक तो कभी प्रकट या अप्रकट इत्यादि भागों में बाटा है। उपरोक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि "संस्कृति एक समग्र है, जो मानव निर्मित है और उसे मानव सीखने के साथ-साथ अगली पीढ़ी में हस्तातरित भी करता रहता है।" संस्कृति के अंतर्गत ज्ञान, कला, विश्वास, लोकाचार, प्रथाएं, रीति-रिवाज, सामाजिक मूल्य, नियम-कानून इत्यादि मानवीय व्यवहार तथा इन व्यवहारों को करने के लिए मानवनिर्मित भौतिक उपकरण जैसे- घरेलू उपकरण, वस्त्र, आभूषण, वाद्य-यंत्र, आधुनिक उपकरण, कृषि उपकरण, औद्योगिक उपकरण, शिल्प उपकरण इत्यादि सम्मिलित हैं।

2.1.5 सारांश (Summary)

इस इकाई में आप ने पढ़ा की संस्कृति की विभिन्न परिभाषाओं, अवधारणाओं और दृष्टिकोणों के बावजूद, यह माना जाता है कि संस्कृति जीवन का एक तरीका है और नैतिकता संस्कृति का एक हिस्सा है। व्यावहारिक रूप से सभी आधुनिक परिभाषाएं प्रमुख विशेषताओं को साझा करती हैं। सारांश में संस्कृति एक सीखा हुआ व्यवहार है जिसे प्रत्येक व्यक्ति उस संस्कृति का सदस्य बन कर सीखता है, संस्कृति को साझा किया जाता है क्योंकि यह सभी लोगों को व्यवहार के बारे में विचार प्रदान करती है, यह प्रतीकात्मक है, क्योंकि यह प्रतीकों के हेर-फेर पर आधारित है और यह प्रणालीगत और एकीकृत है चूंकि संस्कृति के अंग एक एकीकृत संपूर्ण में एक साथ काम करते हैं। निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि "संस्कृति एक समग्र है, जो मानव निर्मित है और उसे मानव सीखने के साथ-साथ अगली पीढ़ी में हस्तातरित भी करता रहता है।" संस्कृति के अंतर्गत ज्ञान, कला, विश्वास, लोकाचार, प्रथाएं, रीति-रिवाज, सामाजिक मूल्य, नियम-कानून इत्यादि मानवीय व्यवहार तथा इन व्यवहारों को करने के लिए मानवनिर्मित भौतिक उपकरण जैसे- घरेलू उपकरण, वस्त्र, आभूषण, वाद्य-यंत्र, आधुनिक उपकरण, कृषि उपकरण, औद्योगिक उपकरण, शिल्प उपकरण इत्यादि सम्मिलित हैं।

2.1.5 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. पुस्तक द इवोल्यूशन ऑफ कल्चर के लेखक कौन है-
   (क) विलियम ह्वाइट (ख) स्पेन्सर (ग) लेविस स्ट्रास (घ) मार्गन
2. निम्नलिखित में से संस्कृति का लक्षण कौन नहीं है?
   (क) संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार है (ख) संस्कृति मानव निर्मित नहीं है
   (ग) संस्कृति मानव आवश्यकता की पूर्ति करती है (घ) संस्कृति समूह के लिए आदर्श है
3. अधिवैयक्तिक संस्कृति के रूप का उल्लेख किसने किया है-
   (क) क्रोबर (ख) स्पेन्सर (ग) लिप्पर्ट (घ) क्लूकहौन
4. पुस्तक 'मैन एण्ड हिज वर्क' के लेखक कौन है-
   (क) क्रोबर (ख) टायलर (ग) हर्षकोविट (घ) अप्पादुरई
5. पुस्तक 'नेचर ऑफ कल्चर' के लेखक कौन है-
   (क) बोडले (ख) टायलर (ग) हर्षकोविट (घ) क्रोबर

उत्तर – 1. विलियम ह्वाइट, 2. संस्कृति मानव निर्मित नहीं है, 3. क्रोबर, 4.हर्षकोविट, 5. क्रोबर

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

6. संस्कृति के अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट कीजिए।
7. संस्कृति की प्रकृति की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
8. संस्कृति को परिभाषित करते हुए संस्कृति की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
9. संस्कृति के मानवशास्त्रीय अर्थ को स्पष्ट कीजिए।
10. संस्कृति के प्रमुख लक्षणों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मानव अपनी किन-किन विशेषताओं के कारण वह संस्कृति का निर्माण करता है?
2. संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
3. मानववैज्ञानिक दृष्टिकोण से संस्कृति का क्या अर्थ है?
4. संस्कृति के प्रमुख लक्षणों को स्पष्ट कीजिए।
5. संस्कृति को अपने शब्दों में परिभाषित कीजिए।

2.1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Hasnain, Nadeem. 2006. *Indian Society and Culture: Continuity and Change.* New Delhi: Jawahar Publishers and Distributors.
2. Hasnain, Nadeem 2009. *Indian Anthropology*. New Delhi: Palaka Prakashan.
3. Johnson, Allan. A. 1995. *The Blackwell Dictionary of Sociology*. Cambridge,Massachusetts: Basil Blackwell.
4. Kumar, Shiv (2018) Ph.D. Thesis **“अभिज्ञान, निरंतरता एवं सांस्कृतिक परिवर्तन: धोबी की पारंपरिक लोक कला पर एक मानवशास्त्रीय अध्ययन”.submitted in MGAHV Wardha**
5. Kroeber, A. L. & Klucichohn, C. (1952). *Culture: A critical review of concepts and definitions.* Cambridge: harward university printing office.
6. Kroeber, A. L., & Klucichohn, C. (1952). *Culture: A critical review of concepts and definition.* Cambridge: harward university printing office.
7. Leslie, G. R. (et al.,1980: 127). *Introductory sociology.* New York: Oxford University Press. pp. 127.

8. MacIver, R. M., & Charles, H. Page. (1949). Society: *An introductory analysis.* New York : Holt Rinehart and Winston.
9. Rai, Nisheeth. (2015).*Twenty one Shades of Anthropology*. Allahabad: Anubhav Publishing House.
10. आहूजा, राम. (2008). *समाजशास्त्र विवेचना एवं परिपेक्ष्य*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स.
11. दुबे, श्यामाचरण. (1993). *मानव और संस्कृति*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
12. श्रीवास्तव, ए. आर. एन. (2001). *सामाजिक मानवविज्ञान*. दिल्ली: सम्यक प्रकाशन.
13. लेस्ले, जी. आर. इट ऑल. (1980). *इंट्रोडक्ट्री सोशियोलॉजी*. न्यूयार्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. पेज-127.
14. मैकाइवर, आर. एम., एण्ड चार्ल्स, एच. पेज. (1949). *सोसायटी: एन इंट्रोडक्ट्री एनालिसिस*. न्यूयार्क: हाल्ट राइनहार्ट एण्ड विसड़म.
15. राय, निशीथ. (2015). *ट्वेंटी वन शादेस ऑफ एंथ्रोपोलॉजी*. इलाहाबाद: अनुभव पब्लिशिंग हाउस.
16. आहूजा, राम. (2008). *समाजशास्त्र विवेचना एवं परिपेक्ष्य*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स.
17. दुबे, श्यामाचरण. (1993). *मानव और संस्कृति*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
18. श्रीवास्तव, ए. आर. एन. (2001). *सामाजिक मानवविज्ञान*. दिल्ली: सम्यक प्रकाशन.

इकाई 2 संस्कृति: उपादान एवं संस्कृति के सिद्धांत

(Culture: Components and Theory)

इकाई की रूपरेखा

2.2.0 उद्देश्य
2.2.1 प्रस्तावना (Introduction)
2.2.2 संस्कृति के उपादान (Components of Culture)
2.2.2.1 सांस्कृतिक तत्व या विशेषक (Cultural Trait)
2.2.2.2 सांस्कृतिक संकुल (Cultural Complex)
2.2.2.3 सांस्कृतिक प्रतिमान (Cultural Pattern)
2.2.2.4 सांस्कृतिक क्षेत्र (Culture Area)
2.2.3 संस्कृति की महत्वपूर्ण अवधारणाएँ
2.2.3.1 मूल्य (Values)
2.2.3.2 मानदंड (Norms)
2.2.3.4 प्रतिबंध (Sanction)
2.2.3.5 आदर्श संस्कृति और वास्तविक संस्कृति (Ideal and Real Culture)
2.2.3.6 प्रकट और अप्रकट संस्कृति (Overt and Covert Culture)
2.2.3.7 स्पष्ट और निहित संस्कृति (Explicit and implicit Culture)
2.2.3.8 तत्वदृष्टि और जीवनदृष्टि (Ethos and Edos)
2.2.3.9 सभ्यता और संस्कृति (Civilization and Culture)
2.2.3.10 सांस्कृतिक सापेक्षवाद (Cultural Relativism)
2.2.4 संस्कृति के सिद्धांत
2.2.4.1 संस्कृति का उद्विकासवाद सिद्धांत
2.2.4.2 संस्कृति का प्रसारवाद सिद्धांत
2.2.4.3 संस्कृति का प्रकार्यवाद सिद्धांत
2.2.4.4 संस्कृति का संरचना-प्रकार्यवादी सिद्धांत
2.2.4.5 संस्कृति का संरचनावादी सिद्धांत
2.2.4.5 संस्कृति का "संस्कृति और व्यक्तित्व" सिद्धांत
2.2.4.6 संस्कृति का नव-उद्विकासवादी सिद्धांत
2.2.5 सारांश (Summary)
2.2.6 बोध प्रश्न
2.2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे-

- संस्कृति के उपादान को समझने में सक्षम होंगे।
- सांस्कृतिक तत्व, संकुल, प्रतिमान और क्षेत्र को समझने तथा लिखने में सक्षम होंगे।
- संस्कृति की महत्वपूर्ण अवधारणाओं को समझेंगे तथा संस्कृति से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों को जानने में सक्षम होंगे।

2.2.1 प्रस्तावना (Introduction)

सभी समाजों में संस्कृति होती है, अर्थात् एक प्रतिमान समग्र जिसमें भौतिक और अभौतिक तत्व होते हैं। सभी संस्कृतियों का मूल संगठन एक ही है, हालांकि समाजों द्वारा विकसित संस्कृतियाँ दूसरे से भिन्न होती हैं। इस इकाई में हमलोग इन्हीं विभिन्नताओं को संस्कृति के उपादानों तथा महत्वपूर्ण अवधारणाओं को समझेंगे। इसके साथ-साथ हम संस्कृति के विभिन्न सिद्धांतों जैसे उद्विकस, प्रसारवाद, प्रकार्यवाद आदि को भी समझ सकेंगे।

2.2.2 संस्कृति उपादान

सभी समाजों में संस्कृति होती है, अर्थात् एक प्रतिमान समग्र जिसमें भौतिक और अभौतिक तत्व होते हैं । सभी संस्कृतियों का मूल संगठन एक ही है, हालांकि समाजों द्वारा विकसित संस्कृतियाँ दूसरे से भिन्न होती हैं। संस्कृति के विभिन्न उपादानों को, जिनसे उसके सम्पूर्ण ढांचे का निर्माण होता है वे निम्नलिखित हैं।

2.2.2.1 सांस्कृतिक तत्व या विशेषक (Cultural Trait)

सांस्कृतिक तत्व एक संस्कृति के एकल तत्व या सबसे छोटी इकाई है। वे "अवलोकन की इकाइयाँ" हैं जो एक साथ मिलकर संस्कृति का निर्माण करती हैं। होबेल के अनुसार सांस्कृतिक तत्व "सीखे हुए व्यवहार प्रतिमान की अप्रतिरोध्य इकाई है।" किसी भी संस्कृति को ऐसी हजारों इकाइयों को शामिल करने के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रकार हाथ मिलाना, पैर छूना, टोपी पहनना, स्नेह के इशारे के रूप में गालों पर चुंबन, महिलाओं को पहले सीट देना, झंडे को सलामी देना, शोक में सफेद 'साड़ी' पहनना, शाकाहारी भोजन लेना, नंगे पैर चलना, मूर्तियाँ, 'किर्पाण' ले जाना, दाढ़ी और बाल बढ़ाना, पीतल के बर्तनों में खाना आदि सांस्कृतिक तत्व हैं।

इस प्रकार तत्व एक संस्कृति की मौलिक इकाइयाँ हैं। यह ये लक्षण हैं जो एक संस्कृति को दूसरे से अलग

करते हैं। एक संस्कृति में पाए गए गुण का अन्य संस्कृति में कोई महत्व नहीं हो सकता है। इस प्रकार सूर्य को जल अर्पित करने का हिंदू संस्कृति में महत्व हो सकता है लेकिन पश्चिमी संस्कृति में कोई नहीं।

2.2.2.2 सांस्कृतिक संकुल (Cultural Complex)

होबेल के अनुसार, "सांस्कृतिक संकुल कुछ मुख्य बिंदुओं के संदर्भ में व्यवस्थित किए गए सांस्कृतिक तत्वों के बड़े समूहों के अलावा कुछ भी नहीं हैं।" सांस्कृतिक तत्व, जैसा कि हम जानते हैं, आमतौर पर अकेले या स्वतंत्र रूप से प्रकट नहीं होते हैं। वे सांस्कृतिक संकुल से अन्य विश्रामित तत्वों के साथ पारंपरिक रूप से जुड़े हुए हैं। किसी एकल विशेषता के महत्व को तब इंगित किया जाता है जब यह पहली बार तत्वों के समूह में जाता है, जिनमें से प्रत्येक सांस्कृतिक संकुल में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार, मूर्ति के सामने घुटने टेकना, उस पर पवित्र जल छिड़कना, उसके मुंह में कुछ खाना डालना, हाथ जोड़कर पुजारी से 'प्रसाद' लेना और 'आरती' गाना धार्मिक संकुल बनता है।

2.2.2.3. सांस्कृतिक प्रतिमान (Cultural Pattern)

एक सांस्कृतिक प्रतिमान तब बनता है जब तत्व और संकुल प्रकार्यात्मक भूमिकाओं में एक दूसरे से संबंधित हो जाती हैं। प्रत्येक सांस्कृतिक संकुल की समाज में भूमिका होती है। इसे इसके भीतर निश्चित स्थान मिला है। एक समाज के सांस्कृतिक प्रतिमान में कई सांस्कृतिक संकुल होते हैं। इस प्रकार भारतीय सांस्कृतिक पद्धति में गांधीवाद, अध्यात्मवाद, संयुक्त परिवार, जाति व्यवस्था और क्षेत्रवाद शामिल हैं। इसलिए एक सांस्कृतिक संकुल में कई सांस्कृतिक तत्व शामिल हैं। क्लार्क विस्लर के अनुसार नौ बुनियादी सांस्कृतिक तत्व हैं जो सांस्कृतिक प्रतिमान को जन्म देते हैं। ये हैं;

1. भाषण और भाषा।

2. भौतिक तत्व।

(a) भोजन की आदतें

(b) आवास

(c) परिवहन

(d) पोशाक

(e) बर्तन, औजार आदि।

(f) हथियार

(g) व्यवसाय और उद्योग।

3. कला।

4. पौराणिक कथा और वैज्ञानिक ज्ञान।

5. धार्मिक प्रथाओं।

6. परिवार और सामाजिक व्यवस्था।

7. संपत्ति।

8. सरकार।

9. युद्ध।

2.2.2.4. सांस्कृतिक क्षेत्र (Culture Area)

संस्कृति क्षेत्र की अवधारणा को 1900 के दशक की शुरुआत में विकसित किया गया था, ऐसे समय में जब अमेरिकी मानवविज्ञान अपनी प्रारंभिक अवस्था में था। फ्रांज बोस और उनके छात्र उत्तरी अमेरिका की "लुप्त हो रहीं " मूल संस्कृतियों के बारे में भारी मात्रा में आंकड़ें एकत्र कर रहे थे। हालाँकि, इस आंकड़ें को व्यवस्थित करने के लिए कोई रूपरेखा नहीं थी। संस्कृति क्षेत्र की अवधारणा पहली बार नृवंशविज्ञानी क्लार्क विस्लर द्वारा प्रतिपादित की गई थी ताकि उत्पन्न जानकारी के लिए एक सैद्धांतिक ढांचा प्रदान किया जा सके। एक संस्कृति क्षेत्र को एक ऐसे भौगोलिक/सांस्कृतिक क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया गया था, जिसकी जनसंख्या और समूह भाषा, उपकरण और भौतिक संस्कृति, नातेदारी, सामाजिक संगठन और सांस्कृतिक इतिहास जैसे महत्वपूर्ण सामान्य पहचान योग्य सांस्कृतिक तत्व साझा करते हैं। इसलिए भौगोलिक क्षेत्र में समान लक्षण साझा करने वाले समूहों को एकल संस्कृति क्षेत्र में वर्गीकृत किया गया। एक संस्कृति क्षेत्र का विचार निश्चित रूप से लोगों के पड़ोसी समूहों के बीच बातचीत को दिखाता है। संस्कृति क्षेत्रों के भीतर और बीच के समूहों की तुलना मानवविज्ञानी उन सामान्य वातावरण और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का परीक्षण करतें हैं जो समूहों को जोड़ सकते हैं या उनके बीच समानताएं और अंतर पैदा कर सकते हैं। संस्कृति क्षेत्र की अवधारणा भी किसी विशेष क्षेत्र में काम कर रहे मानवविज्ञानी के लिए एक सामान्य भाषा प्रदान करती है। अक्सर ऐसा होता है कि अध्ययन क्षेत्र द्वारा केंद्रित होते हैं जो साहित्य को भी समान रूप से केंद्रित करता है। इसके अलावा, अनुसंधान प्रश्न और सैद्धांतिक मुद्दे एक विशेष संस्कृति क्षेत्र में काम कर रहे मानवविज्ञानी को जोड़ने का कार्य करते हैं।

2.2.3 संस्कृति की महत्वपूर्ण अवधारणाएँ

मानवविज्ञान में संस्कृति की व्याख्या और अध्ययन में, मानवविज्ञानी ने संस्कृति की कई विशेषताओं की पहचान की है जो संस्कृति के गुणों को दर्शाते हैं और विभिन्न अर्थों को व्यक्त करते हैं, जिन्होंने संस्कृति के सिद्धांतों को और समृद्ध किया है। एक संस्कृति अपने भागों के योग से अधिक है। मानदंडों और उनके साथ जुड़े भौतिक वस्तुओं की एक सूची संस्कृति का सही चित्र नहीं दे सकती है। विद्यार्थियों के लाभ इनमें से कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाएँ नीचे दी गई हैं।

2.2.3.1मूल्य (Values)

एक संस्कृति में अच्छे, उचित और वांछनीय, या बुरे, अनुचित या अवांछनीय के रूप में क्या माना जाता है, उसे मूल्य कहा जा सकता है। यह लोगों के व्यवहार को प्रभावित करता है और दूसरों के कार्यों के मूल्यांकन के लिए एक मानदंड के रूप में कार्य करता है। संस्कृति के मूल्यों, मानदंडों और प्रतिबंधों के बीच अक्सर एक सीधा संबंध होता है।

2.2.3.2 मानदंड (Norms)

मानदंड व्यवहार के एक मानक प्रतिमान को संदर्भित करता है जिसे समाज द्वारा स्वीकार किया जाता है। मानदंड समाज से समाज में भिन्न हो सकते हैं। आम तौर पर दो तरह के मानक होते हैं औपचारिक मानदंड और अनौपचारिक मानदंड। जो नियम लिखे गए हैं और जिनके उल्लंघन से सजा दी जा सकती है जिसे औपचारिक मानदंड कहा जाता है। इसके विपरीत, अनौपचारिक मानदंडों को आमतौर पर एक समाज द्वारा समझा जाता है और वे अलिखित होते हैं।

2.2.3.4 प्रतिबंध (Sanction)

प्रतिबंधों में पुरस्कार और दंड दोनों शामिल हैं। इसमें संबंधित सामाजिक मानदंडों को धता बताने के लिए निर्धारित दंड या समाज के मानदंडों का पालन करने के लिए पुरस्कार शामिल हैं। एक आदर्श का पालन करने से सकारात्मक प्रतिबंध जैसे कि पदक, आभार शब्द या पीठ पर थपथपाना हो सकता है। नकारात्मक प्रतिबंधों में जुर्माना, धमकी, कारावास, और यहां तक कि अवमानना भी शामिल हैं।

2.2.3.5 आदर्श संस्कृति और वास्तविक संस्कृति (Ideal and Real Culture)

संस्कृति की आदर्शता से तात्पर्य है कि लोगों को कैसा व्यवहार करना चाहिए, या किस तरह से जीना चाहिये। संस्कृति की वास्तविकता से तात्पर्य है वह वास्तविक तरीका है जिस तरह से लोग व्यवहार करते हैं। आमतौर पर आदर्श और वास्तविकता के बीच एक विसंगति है। आदर्श संस्कृति और वास्तविक

संस्कृति के बीच अंतर है। नियम क्या कहते हैं और लोग क्या करते हैं, यह अलग हो सकता है; सांस्कृतिक आदर्श हमें बताते हैं कि क्या करना है और कैसे करना है, लेकिन हम हमेशा ऐसा नहीं करते हैं जो आदर्श तय करते हैं। हम संस्कृति का रचनात्मक उपयोग करते हैं।

2.2.3.6 प्रकट और अप्रकट संस्कृति (Overt and Covert Culture)

एक मानवविज्ञानी, या एक समाज का सदस्य जो संस्कृति के कुछ हिस्सों से अपरिचित है। Overt का मतलब है आसानी से एक संस्कृति का पता लगाने योग्य गुण। इनमें कलाकृतियां, क्रियाएं, उच्चारण शामिल हैं, जिन्हें सीधे जाना जा सकता है। कलाकृतियों में घर, कपड़े, किताबें, उपकरण आदि क्रियाएं शामिल हैं; क्रियाओं में प्रथाओं का पालन, खेल, सम्मान के बाहरी लक्षण शामिल हैं, उच्चारण में गीत, कहावतें आदि शामिल हैं। एक मानवविज्ञानी आसानी से इन बातों का पता लगा सकता है क्योंकि यह बहुत सारे हैं। उन्हें देखने, उन्हें अनुभव करने और उनका प्रलेखन करने के कई अवसर मिलते हैं। दूसरी ओर अप्रकट संस्कृति में उन गुणों का पता चलता है जो किसी बाहरी व्यक्ति द्वारा आसानी से नहीं पहचाने जाते हैं। वाक्य, विश्वास, भय और मूल्य कुछ ऐसे सांस्कृतिक तत्व हैं, जिन्हें आसानी से पहचाना नहीं जा सकता है, अर्थात, वे गुप्त हैं। वे प्रत्यक्ष अवलोकन के लिए उत्तरदायी नहीं हैं और इसके अलावा लोग हमेशा यह नहीं समझा सकते हैं कि वे क्या महसूस करते हैं। इन अमूर्त विचारों को व्यक्त करना आम तौर पर मुश्किल होता है।

2.2.3.7 स्पष्ट और निहित संस्कृति (Explicit and implicit Culture)

क्लूकोहोन के अनुसार स्पष्ट संस्कृति का अर्थ है लोगों के सांस्कृतिक वस्तुओं के अस्तित्व के बारे में जागरूकता। निहित संस्कृति का तात्पर्य लोगों की अज्ञानता या कुछ सांस्कृतिक वस्तुओं की अनभिज्ञता से है स्पष्ट और निहित संस्कृति लोगों को संस्कृति के अनुभव के बारे में बताती है, जबकि प्रकट और अप्रकट संस्कृति पर्यवेक्षक के दृष्टिकोण को संदर्भित करती है।

2.2.3.8 तत्वदृष्टि और जीवनदृष्टि (Ethos and Edos)

क्रोबर ने संस्कृतिक के दो पहलुओं की चर्चा की है जिसे तत्वदृष्टि ethos तथा जीवनदृष्टि edos कहते हैं। तत्वदृष्टि वास्तव में किसी संस्कृति का औपचारिक प्रकटीकरण है जिसमें उसके गुण तथा उससे जुड़ी विचारधाराएँ समाहित है। तत्वदृष्टि आदर्श है जो जीवन के विभिन्न घटनाओं को समझने में दार्शनिक दृष्टिकोण प्रदान करता है। सामान्यतया तत्वदृष्टि एवं जीवन दृष्टि को समझने के लिये तीन प्रणालियाँ अपनायी गई हैं। पहली के अंतर्गत जनजातियों द्वारा स्वयं की उत्पति एवं विषेषताओं का वर्णन उनके स्वयं के द्वारा की गयी है जिसका वर्णन आदिवासी समुदाय के शोधकर्त्ताओं ने किया है। दूसरी श्रेणी के अंतर्गत गैर-आदिवासी विद्वानों का जनजातियों की तत्व दृष्टि एवं जीवन दृष्टि के बारे में क्या कहना है इसे रेखांकित किया जाता है,

तथा तीसरी श्रेणी के अंतर्गत उन अध्ययनों को रखा जा सकता है जिसके अंतर्गत विभिन्न संगीतों, कविताओं, लोकनृत्यों, कहावतों, कहानियों, नारों, मुहावरों इत्यादि का विष्लेषण कर जनजातियों की तत्व दृष्टि एवं जीवन दृष्टि को समझने का प्रयास किया है (Sahay,1977)।

2.2.3.9 सभ्यता और संस्कृति (Civilization and Culture)

सभ्यता एक विशेष प्रकार की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। "सभ्यता" शब्द का उपयोग लगभग संस्कृति के साथ पर्यायवाची रूप से किया गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि सभ्यता और संस्कृति एक एकल इकाई के विभिन्न पहलू हैं। सभ्यता को बाह्य अभिव्यक्ति और संस्कृति को समाज के आंतरिक चरित्र के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार, सभ्यता भौतिक विशेषताओं में व्यक्त की जाती है, जैसे कि उपकरण बनाना, कृषि, भवन, प्रौद्योगिकी, शहरी नियोजन, सामाजिक संरचना, सामाजिक संस्थाएं इत्यादि। दूसरी ओर संस्कृति, सामाजिक मानकों और व्यवहार के मानदंडों, परंपराओं, मूल्यों, नैतिकता, धार्मिक मान्यताओं और प्रथाओं को संदर्भित करती है जो समाज के सदस्यों द्वारा आम तौर पर निर्मित की जाती हैं। संस्कृति और सभ्यता दोनों को एक ही मानवीय प्रक्रियाओं द्वारा विकसित किया गया है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। संस्कृति को आगे बढ़ने के लिए एक सभ्यता की आवश्यकता है। सभ्यता को अपने महत्वपूर्ण बल और अस्तित्व के लिए संस्कृति की आवश्यकता होती है। इसलिए दोनों अन्योन्याश्रित हैं।

2.2.3.10 सांस्कृतिक सापेक्षवाद (Cultural Relativism)

सांस्कृतिक सापेक्षवाद वह दृष्टिकोण है जो यह मानता है की सभी मान्यताऐ, रीति-रिवाज और नैतिकता व्यक्ति के अपने सामाजिक संदर्भ के सापेक्ष होती है। दूसरे शब्दों में, "सही" और "गलत" संस्कृति-विशिष्ट हैं; जिसे एक समाज में नैतिक माना जाता है, उसे दूसरे में अनैतिक माना जा सकता है। चूंकि नैतिकता का कोई सार्वभौमिक मानक मौजूद नहीं है, इसलिए किसी को दूसरे समाज के रीति-रिवाजों को आंकने का अधिकार नहीं है। आधुनिक मानवविज्ञान में सांस्कृतिक सापेक्षवाद को व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है। सांस्कृतिक सापेक्षवादियों का मानना है कि सभी संस्कृतियां अपने आप में योग्य हैं और समान मूल्य की हैं। संस्कृतियों की विविधता, यहां तक कि परस्पर विरोधी नैतिक विश्वास वाले लोगों को भी सही और गलत या अच्छे और बुरे के संदर्भ में नहीं माना जाता है। आज का मानवविज्ञानी सभी संस्कृतियों को मानव अस्तित्व की समान रूप से वैध अभिव्यक्ति मानता है, जिसका विशुद्ध तटस्थ दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाना है। सांस्कृतिक सापेक्षवाद का संबंध नैतिक सापेक्षवाद से है, जो सत्य को परिवर्तनशील मानता है और निरपेक्ष नहीं। सही और गलत का गठन केवल व्यक्ति या समाज द्वारा निर्धारित किया जाता है। चूंकि सत्य वस्तुनिष्ठ नहीं है, इसलिए कोई वस्तुनिष्ठ मानक नहीं हो सकता है जो सभी संस्कृतियों पर लागू हो। कोई यह नहीं कह सकता कि कोई सही है या गलत; यह व्यक्तिगत राय का विषय है, कोई भी समाज दूसरे समाज पर

निर्णय पारित नहीं कर सकता है। सांस्कृतिक सापेक्षवाद किसी भी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के साथ कुछ भी गलत नहीं है (स्वाभाविक रूप से कुछ भी अच्छा नहीं है) तो, आत्म-उत्परिवर्तन और मानव बलिदान की प्राचीन मय प्रथाएं न तो अच्छी हैं और न ही बुरी; वे केवल सांस्कृतिक विशिष्टताएं।

2.2.4 संस्कृति के सिद्धांत

टाइलर द्वारा संस्कृति की शास्त्रीय परिभाषा, संस्कृति की सैद्धांतिक व्याख्या में एक महत्वपूर्ण मोड़ थी, जिसने दुनिया भर के विभिन्न विद्वानों के ध्यान आकर्षित किया। टायलर ने मानव संस्कृति के अस्पष्ट विकास, सिद्धांत, बर्बरता से लेकर सभ्यता तक के सिद्धांत को रेखांकित किया, इस एकतरफा विकास की भावना ने समान विचारधारा वाले विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया, जिन्होंने उद्विकासवादी सम्प्रदाय का गठन किया। संस्कृति के अध्ययन ने ट्रोब्रिएंड आइलैंडर्स के बीच मैलिनोवस्की के फील्डवर्क के बाद एक महत्वपूर्ण मोड़ ले लिया। मैलिनोवस्की की संस्कृति की परिभाषा ने संस्कृति के जैविक पहलू पर जोर दिया और मानव व्यवहार की जैविक विशेषताओं को समझाया। उन्होंने "आवश्यकता"(need) और "लालसा"(impulse) के बीच अंतर किया और आवश्यकता की संतुष्टि पर जोर दिया, जिससे कई कार्य होते हैं, मैलिनोवस्की की संस्कृति की व्याख्या उनके कुछ समकालीनों द्वारा स्वीकार नहीं की गई थी। उदाहरण के लिए रैडक्लिफ-ब्राउन संस्कृति की जैविक व्याख्या में मैलिनोवस्की से पूरी तरह असहमत थे। रैडक्लिफ-ब्राउन सामाजिक संस्था का अध्ययन करने में "संस्कृति" शब्द के उपयोग से सहमत नहीं थे, लेकिन "सामाजिक संरचना" के बारे में उनका विश्लेषण संस्कृति के व्यापक परिप्रेक्ष्य में है। फिर, सामाजिक संरचना में सामाजिक व्यवस्था पर चर्चा करते हुए उन्होंने व्यक्तियों की व्यवस्था पर अधिक जोर दिया।

जबकि उपरोक्त ब्रिटिश मानवविज्ञानी संस्कृति और सामाजिक प्रणालियों की अलग-अलग व्याख्या कर रहे थे, अमेरिका में उनके समकक्षों ने संस्कृति के अभिन्न और मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर अधिक जोर दिया, जिससे उन्हें संस्कृति के विभिन्न अर्थों और व्याख्याओं को विकसित करने में मदद मिली, जिससे "प्रतिमान" का विकास हुआ और "संस्कृति और व्यक्तित्व" विचार के सम्प्रदाय का जन्म हुआ।

2.2.4.1 संस्कृति के उद्विकासवाद का सिद्धांत

आधुनिक विज्ञान के रूप में मानवविज्ञान तब पैदा हुआ था जब उद्विकास का सितारा चमक रहा था। उद्विकासवादी सिद्धांतकारों के प्रभाव में, टेलर और मॉर्गन जैसे अग्रणियों ने मानव समाज और संस्कृति के विकास के अध्ययन के लिए खुद को समर्पित किया। ऐसी धारणा थी कि मानसिक बनावट के दृष्टिकोण से मनुष्य हर जगह समान था। यह मानव जाति की मानसिक एकता के एक चरण में अभिव्यक्ति दी गई थी। नतीजतन यह माना जाता था कि एक जैसी समस्याओं को देखते हुए मनुष्य एक ही तरह के समाधान सोचता है। इस प्रकार, संस्कृति को सरल से जटिल और विभेदित प्रकारों के माध्यम से उद्विकसित होना का कारण

संस्कृति समानताएं और मानव जाति की मानसिक एकता बताया गया। प्रत्येक संस्था, स्थानीय संस्कृति के भीतर स्वतंत्र रूप से उद्विकसित होती है। यदि दो संस्कृतियों ने समान लक्षण या संस्थानों का प्रदर्शन किया तो उन्हें अभिसरण उद्विकास के मामलों के रूप में संदर्भित किया गया।

यह मानते हुए कि मानव समाज निम्न से उच्च प्रकारों में विकसित हुआ है, मॉर्गन ने तीन चरणों को प्रतिपादित किया- मनुष्य शुरू में अरण्यावस्था से बर्बरावस्था और अंत में लिपि के आविष्कार के बाद सभ्यावस्था में रहने लगा। मिट्टी के बर्तनों के आविष्कार के साथ, मनुष्य ने अरण्यावस्था के पुराने दौर में प्रवेश किया। बर्बरता के मध्य काल में सिंचाई द्वारा पशुओं के पौधों का संवर्धन और पौधों की खेती। लौह अयस्क और लोहे के औजारों को गलाने की प्रक्रिया ने देखा कि मनुष्य बर्बरावस्था के बाद के दौर में रहता था। तब वर्णमाला और लेखन के आविष्कार से सभ्यावस्था का आगमन हुआ। टायलर ने धर्मों के उद्विकास का अध्ययन किया। उनका मानना था कि पूर्वज पूजा धर्म का सबसे सरल रूप है जिसके पश्चात धार्मिक बहुदेववाद तथा अंत में एकेश्वरवाद का विकास हुआ। इन सभी अनुमानों के लिए साक्ष्य सांस्कृतिक संदर्भ के महत्व के बारे में बहुत अधिक श्रम किए बिना एक समय और स्थान पर फैली विभिन्न संस्कृतियों से एकत्र किए गए थे। विभिन्न लेखकों ने उद्विकासवाद की आलोचना की है। इन विद्वानों का मत था की संस्कृति का उद्विकास एक सीधी रेखा में नहीं होता है, बल्कि एक परवलयिक वक्र जैसे होते हैं।

2.2.4.2 संस्कृति का प्रसारवाद सिद्धांत

मानवशास्त्र में प्रसारवादी संप्रदाय के अंतर्गत विभिन्न मानवशास्त्रियों ने संस्कृति को आधार बनाकर अपने शोधों एवं लेखों का विस्तृत वर्णन किया है। परंतु इनके लेखों में संस्कृति की व्याख्या प्रायः ऐतिहासिक दृष्टि से देखने को मिलती है। जहां तक जर्मन प्रसारवाद की बात है, जर्मन प्रसारवाद में सांस्कृतिक तत्व एवं संकुल के विभिन्न स्तरों का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया गया है। उन्होंने बताया की सांस्कृतिक तत्व एवं संकुल प्रवासन तथा प्रसार के माध्यम से विभिन्न स्थानों पर प्रसारित हुए हैं। इन्होंने इसके लिए ‘सांस्कृतिक चक्र’ की अवधारणा प्रस्तुत की है। उनके अनुसार प्रत्येक समाज में सांस्कृतिक वस्तुओं का एक क्षेत्र होता है, जिसमें उस विशेष सांस्कृतिक तत्व या संकुल का रूप मिलता है, जैसे-जैसे यह सांस्कृतिक तत्व आगे बढ़ते हैं, उनमें पारिस्थितिक के आधार पर परिवर्तन होता है और वह दूसरे समाज में थोड़ा भिन्न रूप में प्रदर्शित होता है। ग्रेबनर ने अपनी पुस्तक ‘मेथडसर एथनोलॉ’ (1911) में विभिन्न सांस्कृतिक स्तरों की व्याख्या की है। इन्होंने छः क्रमिक सांस्कृतिक स्तरों की व्याख्या की है, जिसमें तस्मानियन संस्कृति को सबसे प्राचीन बताया, जबकि पोलिनेशियन पितृरेखीय संस्कृति को सबसे नवीन बताया। इसके साथ ही साथ उन्होंने संस्कृति के प्रसार को प्राथमिक तथा द्वितीय प्रसार के अंतर्गत विभाजित भी किया है। अमेरिका के सबसे प्रसिद्ध मानवशास्त्री फ्रांज बॉआस ने समाज एवं संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य किया।

इसी तरह क्लार्क विसलर ने भी संस्कृति को अपना आधार बनाकर अपने शोध कार्य और पुस्तकों की रचना की और संस्कृति क्षेत्र की अवधारणा विकसित की। उनके अनुसार "संस्कृति सीखी जाती है। अतः इसका कोई भी तत्व किसी व्यक्ति या समूह द्वारा ग्रहण किया जा सकता है, इससे यह भी स्पष्ट होता है कि समीपवर्ती समूह एक दूसरे से तत्व का ग्रहण दूरस्थ संघ की तुलना में अधिक करते हैं। वह क्षेत्र जिसमें समान संस्कृति पाई जाती है, उसे संस्कृति क्षेत्र के नाम से जाना जाता है"। इसी तरह क्रोबर ने हड्डन द्वारा प्रतिपादित कला के उद्विकासीय क्रम को गलत ठहराया। हड्डन के अनुसार कला का उद्विकास क्रम यथार्थवादी, सांकेतिकवादी तथा रेखागणितीय था, जबकि क्रोबर ने अपनी शोध पुस्तिका में यह दर्शाया कि आरापाहो जनजातियों के मध्य अलंकारिक तथा सांस्कृतिक कला के स्वरूपों का विकास साथ-साथ हुआ है। क्रोबर ने कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में 'तत्व-सूची दृष्टिकोण' पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि संस्कृति अध्ययन में सिद्धांत का निर्माण तथ्य संग्रहण के आधार पर किया जाना चाहिए तथा उनके शिष्यों ने भी विस्तृत सूचना का भंडार स्थापित किया था। क्रोबर का यह अवलोकन था कि विभिन्नता के बावजूद संस्कृति क्षेत्रों में बहुत प्रकार की समानताएं पाई जाती है। अतः उन्होंने सांख्यिकी सह-संबंध पर विशेष बल दिया, ताकि विशेष सांस्कृतिक तत्वों की समानता का पता लगाया जा सके तथा संस्कृति क्षेत्र को स्पष्ट किया जा सके। उनके अनुसार तत्व सबसे कम परिभाषा योग्य अवयव हैं, लेकिन सबसे कम किसे परिभाषित किया जाए? इस प्रश्न का जवाब कठिन था। जैसे नौका एक तत्व है, लेकिन इसके सभी अंग, सजावट, वस्तु प्रयोग तथा बनावट की विधि को तत्व के रूप में देखा जाना चाहिए। क्रोबर ने 'संस्कृति को अधिसावयवी तथा अधिवैयक्तिक कहा है'। यह सत्य है कि व्यक्ति संस्कृति का वाहक है तथा संस्कृति का अस्तित्व उनके सोचे बिना विचार नहीं किया जाता, इसके बावजूद संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की देन नहीं है। कोई भी संस्कृति किसी व्यक्ति से अधिक है। संस्कृति की स्थिरता या निरंतरता किसी व्यक्ति विशेष पर आश्रित नहीं है, क्योंकि संस्कृति किसी व्यक्ति का व्यवहार नहीं है, बल्कि संस्कृति संपूर्ण समूह की आदत या व्यवहार का एक संरूपण है। किसी व्यक्ति विशेष का व्यवहार या आदत उस व्यक्ति की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाती है, लेकिन समूह का व्यवहार पीढ़ी-दर-पीढ़ी अस्तित्व में बना रहता है, क्योंकि संस्कृति की रचना तथा निरंतरता किसी व्यक्ति विशेष पर आश्रित नहीं है। अतः क्रोबर ने संस्कृति को अधिवैयक्तिक कहा है। क्रोबर ने संस्कृति प्रतिमान पर भी अपने विचार रखने का प्रयास किया है। इन्होंने यह बताने का प्रयास किया कि किसी समाज की कला उस समाज की संस्कृति प्रतिमान होते हैं, क्योंकि किसी कला का निर्माण विभिन्न संस्कृति तत्व एवं संकुलों के माध्यम से होता है, जो धीरे-धीरे उस समाज के संस्कृति के प्रतिमान बन जाते हैं।

2.2.4.3 संस्कृति का प्रकार्यवाद सिद्धांत

प्रकार्यवादी मैलीनोवस्की का विचार था कि मनुष्य की आवश्यकताएं अनेक प्रकार की हैं, जैसे- सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, जैविक, भौतिक तथा मानसिक आदि। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव ने भौतिक तथा अभौतिक संस्कृति तत्वों का विकास किया। भाषा, साहित्य, कला, शिल्पविज्ञान आदि का आविष्कार मानव ने अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए किया। मानव की सभी आवश्यकताएं एक-दूसरे से अंतर संबंधित हैं, क्योंकि ये मानव की समग्रता से संबंधित हैं। संस्कृति के एक पहलू में परिवर्तन से संपूर्ण संस्कृति में परिवर्तन हो जाता है। मैलीनोवस्की ने प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक प्रकार की आवश्यकताओं का वर्णन किया है। प्राथमिक या मौलिकता का अर्थ जैविक आवश्यकता, जैसे- भूख, सुरक्षा, योनि इत्यादि संतुष्टि से है। द्वितीय या सहायक या व्युत्पन्न आवश्यकता का संबंध उन संस्थाओं से है, जो मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होती हैं, जैसे- आर्थिक तथा कानून संबंधी। तृतीयक आवश्यकता अथवा समाकलनात्मक आवश्यकता का संबंध उन संस्थाओं से है, जो समाज को एकजुट बनाए रखने हेतु जरुरी होती हैं, जैसे- जादू, धर्म, खेल, कला, इत्यादि। सन 1931 ई. में संस्कृति को परिभाषित करते हुए मैलीनोवस्की ने कहा कि "संस्कृति मानव आवश्यकता पूर्ति का एक साधन है, जिसे सांस्कृतिक यंत्रावली कहते हैं"। अपनी पुस्तक 'साइंटिफिक थ्योरी ऑफ कल्चर' (1944) में संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'संस्कृति संपूर्ण समग्रता है, जिसका संबंध उपकरण, उपभोक्ता, विभिन्न समूहों के संविधानिक प्राधिकार, मानव विचार, शिल्पशास्त्र, स्पष्ट विश्वास एवं रीति-रिवाज से है। हम चाहे अत्यंत सरल या आदिम संस्कृति की चर्चा करें या अधिक जटिल संस्कृति की, लेकिन हमारे सम्मुख विशाल भौतिक, मानव, धार्मिक सामग्री रहती है, जिसके आधार पर मानव प्रत्यक्ष के साथ संबंध स्थापित करता है। यह समस्या इसलिए खड़ी होती है, क्योंकि मानव के पास एक शरीर है जिसके लिए जैविक आवश्यकता की पूर्ति करनी पड़ती है। दूसरी बात यह है कि मानव जिस पर्यावरण में रहता है, उसका मित्र बन जाता है। इस पारिस्थितिकी में पर्यावरण मानव को दस्तकारी के लिए आवश्यक सामग्री प्रदान करती है। इस आधार पर मैलीनोवस्की ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा है कि संस्कृति आवश्यकता पूर्ति का एक साधन है। इस प्रकार संस्कृति का विश्लेषण प्रकार्यात्मक एवं संस्थात्मक अध्ययन द्वारा अधिक स्पष्ट तथा विस्तृत रूप से किया जा सकता है। मैलीनोवस्की ने जादू, धर्म, विज्ञान, कला तथा मिथक के अध्ययन के लिए प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उनका मानना था कि संस्कृति मानव को जीवित रहने के लिए आवश्यक साधन देता है। मैलीनोवस्की ने संकलनात्मक आवश्यकता के अंतर्गत उस संस्थाओं की चर्चा की है जिसका कार्य समाज के सभी लोगों को एक जुट रखना था। इसके साथ ही साथ उनका कार्य समाज का अस्तित्व एवं पहचान बनाए रखना था, जिसके अंतर्गत परंपरा, मूल्य, धर्म, मिथक, कला, उत्सव, खेल, संकेत, भाषा इत्यादि आते हैं। मैलीनोवस्की ने ट्रोब्रियंड द्वीपवासियों की संपूर्ण संस्कृति का अध्ययन किया, जिसमें द्वीपवासियों की कला संस्कृति का अध्ययन महत्वपूर्ण था।

2.2.4.4 संस्कृति का संरचना-प्रकार्यवादी सिद्धांत

रेडक्लिफ ब्राउन ऐसे मानवशास्त्री थे, जो काल्पनिक या अनुमानित अध्ययन के प्रति रुचि नहीं रखते थे, लेकिन उन्होंने कर्तव्य और निष्ठा के साथ अंडमान निवासियों की पौराणिक कथाओं, संस्कार, उत्सव, रीति-रिवाजों को लिपिबद्ध किया। अंडमान द्वीपवासियों के ऊपर लिखित उनका शोध प्रबंध करीब 15 साल तक अप्रकाशित रहा। इस लंबी अवधि में उन्होंने दुर्खीम तथा मार्शल मास के लेखन एवं सिद्धांत का अध्ययन किया। कुछ दिनों के पश्चात वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अर्थ एवं प्रकार का अध्ययन ऐतिहासिक पुनर्निर्माण की तुलना में ज्यादा महत्वपूर्ण है। जब अंडमान द्वीपवासियों के ऊपर लिखित उनकी पुस्तक सन 1922 ई. में प्रकाशित हुई, तब उसमें अर्थ एवं प्रकार की झलक दिखाई पड़ी। उनकी पुस्तक में अंडमान द्वीपवासियों की पौराणिक कथाओं तथा रीति-रिवाजों का केवल विवरण नहीं था, वरन विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया था। रेडक्लिफ ब्राउन के अनुसार सामाजिक संरचना व्यक्तियों की संस्थागत भूमिका तथा संबंधों की व्यवस्था है। इस व्यवस्था की निरंतरता, संरचनात्मक निरंतरता के रूप में जानी जाती है। व्यक्ति तथा समूह परिवर्तनशील है, इनसे सामाजिक संरचना का निर्माण होता है। एक व्यक्ति या समूह के स्थान पर दूसरे व्यक्ति या समूह उत्पन्न हो जाते हैं। अतः सामाजिक निरंतरता गतिशील है। इस संरचनात्मक निरंतरता में व्यक्ति तथा समूह में परिवर्तन होता है, लेकिन स्वरूप अपरिवर्तित या अपरिवर्तनशील रहता है। ब्राउन ने सामाजिक निरंतरता की बात अंडमान द्वीपवासियों के सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषता के संदर्भ में प्रस्तुत की थी। उनके अनुसार अंडमान द्विपवासी तथा उनकी संस्थाएं परिवर्तित हो सकती हैं, लेकिन उनके समाज में पीढ़ियों से चलने वाली पौराणिक कथाएं, रीति-रिवाज, कला, विश्वास, गीत, उत्सव, संस्कार, सामाजिक मूल्य इत्यादि सदा गतिमान रहेंगे एवं समय के साथ इनके स्वरूप में कुछ परिवर्तन अवश्य हो सकता है।

2.2.4.5 संस्कृति का संरचनावादी सिद्धांत

क्लाउड लेवी स्ट्रॉस ने भाषा को माध्यम बनाकर संस्कृति को संरचना के रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया। इनके अनुसार-

1. भाषा एवं संस्कृति सदृश्य है।
2. भाषा एवं संस्कृति औपचारिक रूप से समान है।
3. भाषा एवं संस्कृति अनुरूप है।
4. भाषा एवं संस्कृति सह-संबंधित हैं।

इस विचार के मुख्य आधार यह है कि ‘दोनों सांस्कृतिक व्यवहार को स्वीकार करते हैं तथा दोनों क्रियाओं की देन हैं। अतः दोनों मूल रूप से समान हैं। इस संबंध में निष्कर्ष मुख्यतः दो प्रकार के हैं, प्रथम- उनके कार्य करने के सिद्धांत को अचेतन स्तर पर दर्शाना चाहिए। द्वितीय- प्रत्येक का नियंत्रण सार्वभौमिक नियम द्वारा होता है। संपूर्ण तर्क का सामान्य कारण यह है कि भाषा के समान नातेदारी, कला तथा संस्कृति के

अनेक तत्व संचारण व्यवस्था है। इस संबंध में लेवी स्ट्रास का कहना है कि समाज व संस्कृति को भाषा तक घटाएं बिना हम समान्य संस्कृति को संचारण सिद्धांत के अंतर्गत प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं। यह तीन स्तर पर संभव है, प्रथम- नातेदारी तथा विवाह नियम समूहों के बीच नारी का वितरण दर्शाता है। द्वितीय- ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार नियम सेवा तथा वस्तु वितरण दर्शाता है। तृतीय- भाषा विषयक नियम सूचनाओं का विवरण दर्शाता है। अतः कला, धर्म, पौराणिक कथा, धार्मिक कृत्य आदि भाषा के उदाहरण हैं। लेवी स्ट्रास अचेतन मस्तिष्क के स्वभाव के अध्ययन के संदर्भ में पौराणिक कथा के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया। लेवी स्ट्रॉस ने आदिम मस्तिष्क के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया, इससे संबंधित उन्होंने अपनी पुस्तक ‘सेवेज माइंड’ (1962) प्रकाशित की। उनका दृष्टिकोण भाषा विज्ञान के आधार पर आदिमानव के अचेतन मस्तिष्क को समझने का प्रयास था। उन्होंने आदिमानव की पौराणिक कथाओं, गीतों, व्यवहारों, मिथकों इत्यादि को भाषा का एक माध्यम मानकर अध्ययन किया। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि क्लाउड लेवी स्ट्रास ने भाषा के विभिन्न नियमों को सामाजिक संरचना के आधार पर व्याख्यायित किया है। उनका मानना था कि समाज में प्रचलित पौराणिक कथाएं, गीत, मिथक, प्रथाएं, धर्म, धार्मिक कृत्य, नृत्य, भाषण, संभाषण इत्यादि भाषा के माध्यम हैं, जो उस समाज के सामाजिक संरचना को व्यक्त करते हैं। स्ट्रास ने ज़ोर दे कर कहा कि भाषा संस्कृति का ही एक हिस्सा है, जिसके माध्यम से मानव ने अपने अचेतन मस्तिष्क के मनोभावों को प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त किया। भाषा ही एक ऐसा माध्यम था, जिसके द्वारा आदिमानव ने अपने सुख-दुख, जीवन संघर्ष, हास-परिहास इत्यादि को पौराणिक कथाओं, परंपराओं, मूल्यों, गीतों, मिथकों, व्यवहारों इत्यादि के माध्यम से अपने समाज में अपनी पहचान, सांस्कृतिक विशेषता एवं निरंतरता के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित किया।

2.2.4.5 संस्कृति का “संस्कृति और व्यक्तित्व” सिद्धांत

इस क्रम में 1920 के दशक के फ्रांस बोआस तथा क्रोबर के कुछ शिष्य मारग्रेट मीड, रूथ बेनेडिक्ट तथा कोराडु-बोआस आदि उद्विकासवाद, प्रसारवाद, प्रकार्यवाद, संरचना-प्रकार्यवाद तथा अन्य परंपरागत सिद्धांतों के आलोचक बन गए। इन विद्वानों का मत था कि संस्कृति तथा समाज के संबंध में स्थापित परंपरागत मानवशास्त्रीय सिद्धांत सांस्कृतिक आचरण और व्यवहार की मूल व्याख्या नहीं करते हैं। अतः उन विद्वानों के अनुसार समय की मांग सांस्कृतिक व्यवहार का विश्लेषण था। सांस्कृतिक व्यवहार का अर्थ, उन विद्वानों के अनुसार ‘किसी सांस्कृतिक समूह के सदस्यों के आचरण, चरित्र या व्यक्तित्व से था’। विभिन्न सांस्कृतिक समूह के सदस्यों का चरित्र समान नहीं था और विभिन्नता प्रस्तुत करता था। इन विद्वानों ने कुछ मूल प्रश्नों का समाधान करना चाहा। इनका प्रथम प्रश्न था कि किसी सांस्कृतिक समूह के सदस्यों के व्यक्तित्व में समानता क्यों होती है? हालांकि अपवाद स्वरूप व्यक्तिगत अंतर भी था। इनका दूसरा प्रश्न था कि क्यों एक सांस्कृतिक समूह के सदस्यों का व्यक्तित्व दूसरे सांस्कृतिक समूह के सदस्यों से भिन्न था? इन प्रश्नों के

समाधान हेतु इन विद्वानों ने संस्कृति की ओर अपना ध्यान केंद्रित किया। इन विद्वानों ने पाया कि किसी एक संस्कृति संघ के सदस्यों के व्यक्तित्व में समानता है, क्योंकि उन सभी सदस्यों के समाजीकरण की प्रक्रिया समान सांस्कृतिक वातावरण में संपन्न होती है। एक समूह की संस्कृति दूसरे समूह की संस्कृति से भिन्न होती है। अतः एक समूह के सदस्यों का व्यक्तित्व, आचरण, व्यवहार आदि दूसरे समूह के सदस्यों के व्यक्तित्व, आचरण, व्यवहार आदि से भिन्न होता है। इन विद्वानों ने संस्कृति एवं व्यक्तित्व के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन मनोविश्लेषण के आधार पर करने का प्रयास किया। इन विद्वानों के अनुसार संस्कृति एवं व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक हैं तथा एक दूसरे से संबंधित है। इन विद्वानों में अंतर विषयक दृष्टिकोण तथा परसांस्कृतिक तुलना पर विशेष ध्यान दिया। इन विद्वानों का मानना था कि मानवविज्ञान का संबंध मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, जीवविज्ञान इत्यादि से है। उनके अनुसार व्यक्तित्व एक व्यक्ति की आदत, मनोवृत्ति, लक्षण तथा विचार का एक ऐसा संगठित योग है, जो बाह्य रूप से विशिष्ट एवं सामान स्थिति तथा भूमिका के रूप में संगठित रहता है तथा आंतरिक रूप से उसकी आत्मा चेतना एवं स्वयं की अवधारणा, पहचान, मूल्य विचार तथा उद्देश्य के रूप में व्यवस्थित रहता है। व्यक्तित्व मानव द्वारा सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष के अंतर्गत समाज में अपनी संस्कृति के अनुसार किया जाने वाला व्यवहार होता है। इस रूप में कोई भी व्यक्ति अपने समाज की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। जिस संस्कृति में व्यक्ति का जन्म होता है, उसी के रीति-रिवाज, व्यवसाय, प्रथा, कला, साहित्य, भाषा, धर्म, मूल्य आदि का उस पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। अतः व्यक्तित्व, संस्कृति व समाज की अभिव्यक्ति होती है। व्यक्तित्व निर्माण का तीसरा पक्ष मनोवैज्ञानिक है। इसके अंतर्गत व्यक्ति की अभिरुचि, भावना, अभिवृत्ति, अभिज्ञान, उद्वेग, प्रेरणा, मूल्य, क्षमता, कृति, प्रकृति आदि को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मानव के द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में मानव के अंतर्मन से अथवा जीवन संघर्षों से निकलने वाली स्मृतियां मानव की अभिज्ञान का द्योतक होती हैं, जिससे संबंधित अध्ययन मीड, बेनेडिक्ट एवं कोराडु-बोआस ने किया था।

संस्कृति एवं व्यक्तित्व के अंतर्गत संस्कृति प्रतिमान की अवधारणा भी दी गयी थी। संस्कृति के अंतर्गत संस्कृति प्रतिमान की अवधारणा भी विशेष महत्व रखती है। हालांकि मानवशास्त्रियों के बीच संस्कृति प्रतिमान की अवधारणा ज्ञात थी, लेकिन रूथ बेनेडिक्ट के पूर्व मानवशास्त्रियों ने सार्वभौमिक संस्कृति प्रतिमान दर्शाने का प्रयास किया था। संस्कृति तत्व तथा संस्कृति संकुल मिलकर संस्कृति प्रतिमान का निर्माण करते हैं। संस्कृति तत्व, संस्कृति की सबसे लघु इकाई है। जब कई संस्कृति तत्व मिल जाते हैं, तब संस्कृति संकुल का निर्माण होता है। जब संस्कृति तत्व एवं संस्कृति संकुल का समाकलन प्रकार्यात्मक समग्रता में होता है, तब संस्कृति प्रतिमान का निर्माण होता है। अतः स्पष्ट है कि संस्कृति प्रतिमान कई संस्कृति तत्व तथा संस्कृति संकुलों से बना होता है।

2.2.4.6 संस्कृति का नव-उद्विकासवादी सिद्धांत

जूलियन एच. स्टीवर्ड (1955) ने अपनी पुस्तक 'थ्योरी ऑफ कल्चरल चेंज' में सांस्कृतिक उद्विकास की बात की है। उन्होंने सांस्कृतिक उद्विकास को तीन श्रेणी में बाटा है- एकरेखीय उद्विकास, सार्वभौमिक उद्विकास एवं बहुरेखीय उद्विकास। स्टीवर्ड ने विश्व की विभिन्न संस्कृतियों को इन उद्विकासीय श्रेणियों में रखा है। इसके साथ ही साथ उन्होंने सांस्कृतिक पारिस्थितिकी की भी चर्चा की है। उनका मानना था कि विश्व की जितनी भी संस्कृतियां हैं, उनका स्थानीय पारिस्थितिकी से विशेष संबंध होता है। स्थानीय पारिस्थितिकी के आधार पर विभिन्न संस्कृतियों में विभिन्न भौतिक उपकरणों का समावेश होता है। इसके लिए उन्होंने मानव एवं उनके आवास के बीच के अंतर्संबंध को दर्शाया है। उनका मानना था कि मनुष्य अपने आवास का निर्माण सांस्कृतिक पारिस्थितिकी के अंतर्गत करता है। उन्होंने विज्ञान एवं पर्यावरण के बीच अंतर संबंधों के विश्लेषण पर विशेष जोर दिया है। उन्होंने कला को भी सांस्कृतिक पारिस्थितिकी के अंतर्गत रखा है। मानव के अंतर्ज्ञान से निर्मित कला किसी समाज की एक अद्भुत और अमूल्य धरोहर होती है, जो उस समाज की विशेष संस्कृति का प्रतीक होती है। नवउद्विकासवादी लेस्ली वाइट (1949-1959) ने भी संस्कृति को विभिन्न स्वरूपों में बताया है। उन्होंने सांस्कृतिक व्यवस्था के तीन अंग बताए हैं- शिल्प-आर्थिक, सामाजिक एवं सैद्धांतिक। इस प्रकार वाइट के अनुसार 'संस्कृति मुख्य रूप से एक यंत्रावली है, जिसके द्वारा ऊर्जा का व्यवहार मानव सेवा के लिए विभिन्न कार्यों में होता है। इनके अनुसार संस्कृति प्रतीक पर आधारित वस्तुओं एवं घटनाओं का दैहिकेतर सांसारिक सातत्य है। विशेष एवं प्रत्यक्ष रूप से संस्कृति का निर्माण औजार, बर्तन, वस्त्र, आभूषण, रीति-रिवाज, संस्था, विश्वास, संस्कार, खेल-कूद, कला, भाषा इत्यादि से हुआ है। वाइट ने संस्कृति के निर्माणकारी कारकों की चर्चा की है, लेकिन इन कारकों का मानव के साथ अंतः संबंध एवं मानव के अभिज्ञानता के संबंध में चर्चा नहीं की है। वाइट ने सांस्कृतिक विकास को प्रदर्शित करने वाले सूत्र का निर्माण भी किया है, जिसका संबंध शिल्प विज्ञान एवं ऊर्जा से है। उनका मानना था कि व्यक्ति जितना अधिक कुशल और सक्षम होगा उसकी संस्कृति उतनी ही विकासशील होगी। इस सूत्र के अनुसार "एक व्यक्ति में अपने समाज में उच्च स्थान प्राप्त करने की क्षमता होती है। जैसे-जैसे प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष ऊर्जा अधिग्रहण एवं प्रयोग की क्षमता बढ़ती जाती है या ऊर्जा नियंत्रण के साधन संबंधित क्षमता या अर्थव्यवस्था में या दोनों में वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे संस्कृति का विकास होता जाता है।" यही वाइट का ऊर्जा-शिल्प मॉडल था, जिसमें कला का क्षेत्र अनछुआ रह गया था।

2.2.5 सारांश (Summary)

मानवविज्ञान में संस्कृति की व्याख्या और अध्ययन में, मानवविज्ञानी ने संस्कृति की कई विशेषताओं की पहचान की है जो संस्कृति के गुणों को दर्शाते हैं और विभिन्न अर्थों को व्यक्त करते हैं, जिन्होंने संस्कृति के सिद्धांतों को और समृद्ध किया है। इस इकाई में हमने इन्ही अवधारणाओं और उपादान को वर्णन और विश्लेषण किया गया है। संस्कृति के संबंध में विभिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न थे और इस कारण इन्होंने संस्कृति के भिन्न-भिन्न सिद्धांत प्रतिपादित किये जिसका उल्लेख इस इकाई में किया गया है।

2.2.6 बोध प्रश्न

बहुविल्पीय प्रश्न

1. एक संस्कृति की एकल तत्व या सबसे छोटी इकाई है
   (क) तत्व या विशेष (ख) संस्कृति संकुल (ग) सांस्कृतिक प्रतिमान (घ) सांस्कृतिक मूल्य
2. संस्कृति के दो पहलू तत्वदृष्टि (ethos) तथा जीवनदृष्टि (edos) का उल्लेख किया-
   (क) हर्षकोविट (ख) मार्गन (ग) टायलर (घ) क्रोबर
3. सांस्कृतिक सापेक्षवाद की अवधारणा दी-
   (क) स्पेन्सर (ख) हर्षकोविट (ग) गिडीन्स (घ) हेनरी मेन
4. स्थान 'ट्रोब्रिएंड आईलैन्डर्स' का अध्ययन किया
   (क) क्लूखौन (ख) टायलर (ग) मैलिनोवस्की (घ) मार्गन
5. किसने संस्कृति के उद्विकास के तीन चरण, अरन्यावस्था, बर्बरावस्था एवं सभ्यावस्था स्तर में बाटा-
   (**क**) मैलिनोवस्की (ख) टायलर (ग) क्लूखौन (घ) मार्गन

उत्तर- 1. तत्व या विशेष, 2. क्रोबर, 3. हर्षकोविट, 4. मैलिनोवस्की, 5. मार्गन

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. संस्कृति के विभिन्न उपादानों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. संस्कृति के उद्विकासीय सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
3. संस्कृति के प्रसारवाद एवं प्रकार्यवाद सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
4. संस्कृति के 'संस्कृति और व्यक्तित्व' सिद्धांत को स्पष्ट कीजिए।
5. संस्कृति संकुल, प्रतिमान एवं क्षेत्र की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. संस्कृति के विभिन्न उपादानों का वर्णन कीजिए।
2. संस्कृति और सभ्यता में अंतर सपष्ट कीजिए।
3. संस्कृति के नव-उद्विकसावादी सिंद्धांत की विवेचना कीजिए।
4. मूल्य की व्याख्या कीजिए।
5. प्रकट एवं अप्रकट संस्कृति की व्याख्या कीजिए।

2.2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Angelloni, Elvio. 1998. 'Anthropology'. Annual Additions. Slvice Dock: Dushkin/ McGraw-Hill.
- Bodley, J.H. 1994. *Cultural Anthropology: Tribes, States and the Global System*. New York: McGraw-Hill Higher Education.
- Erickson, P. A., & Murphy, L. D. (2003). A history of anthropological theory (2nd ed.). Peterborough, Canada: Broadview Press.
- Ferraro, Gary P. 1992. *Cultural Anthropology: An Applied Perspective*. St.Paul, New York: West Publishing Company.
- Hammond, Peter. 1971. *An Introduction to Cultural and Social Anthropology.* New York: The McMillan Company.
- Harris, M. 1975. *Culture, People, Nature: An Introduction to General Anthropology*. New York: Thomas Y. Crowell.
- Herskovits, M. 1948. *Man and His Works*. New York: Knopf.
- Howard, Michael C and Janet D.H. 1992. *Anthropology:Understanding Human Adaptation.* New York: Harper Collins.
- Kumar, Shiv (2018) Ph.D. Thesis **"अभिज्ञान, निरंतरता एवं सांस्कृतिक परिवर्तन: धोबी की पारंपरिक लोक कला पर एक मानवशास्त्रीय अध्ययन".submitted in MGAHV Wardha**
- Keesing, Roger M. 1981. *Cultural Anthropology*. New York: Holt, Rinehart and Winston.

- Kroeber, A. L. (1931). The culture-area and age-area concepts of Clark Wissler. In S. A. Rice (Ed.), Methods in social sciences (pp. 248-265). Chicago: University of Chicago Press.
- Kluckhohn and Kelly. 1945. ‘The Concept of Culture’. In *The Science of Man in the World Crisis,* Ralph Linton ed. New York: Columbia University Press.
- Kottak, Conrad P. 2002. *Anthropology: The Exploration of Human Diversity.* 9th ed. Boston: McGraw-Hill.
- Maclver, R. M. 1931. *Society - Its Structure and Changes*. New York: Hay Long and Richard Smith Inc.
- Malinowski, Bronislaw. 1944. *The Scientific Theory of Culture.* Oxford: Oxford University Press.
- Nadel S.F. 2006. ‘The Typological Approach to Culture’. *Journal of Personality*. Vol. 5. Issue 4, April
- Sumner, W. G. 1906. *Folkways*. New York: Ginn.
- Trigger, B. G. (1989). A history of archaeological thought. Oxford: Cambridge University Press.
- Tylor, E.B. 1871. *Primitive culture*. London: J. Murray.

इकाई 3 परिवार: अर्थ, परिभाषा, प्रकार एवं उत्पत्ति के सिद्धांत

(Family: Meaning, Definition, Type and Theories of Origin)

इकाई की रूपरेखा

2.3.0 उद्देश्य

2.3.1 प्रस्तावना (Introduction)

2.3.2 परिवार: एक प्रस्तावना (Family: An Introduction)

2.3.3 परिवार का अर्थ और परिभाषाएँ (Meaning and Definition of Family)

2.3.3.1 परिवार की विभिन्न परिभाषाएं हैं (Various Definition of Family)

2.3.4 परिवार: एक पार-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (Family: A Cross-Cultural Perspective)

2.3.5. परिवार के अध्ययन का एक मानववैज्ञानिक दृष्टिकोण (Anthropological Perspective On the Study of Family)

2.3.5.1 घरेलू समूह (Domestic Group)

2.3.6 परिवार के प्रकार (Types of Family)

2.3.6.1 विवाह प्रथा के आधार पर (On the basis of Marriage Practices)

2.3.6.2 निवास के नियम के आधार पर (On the Basis of Rule of Residence)

2.3.6.3 वंश के आधार पर (On the Basis of Descent or Ancestry)

2.3.6.4 रक्त संबंधों की प्रकृति के आधार पर (On the Basis of Nature of Blood Relations)

2.3.6.5 सत्ता के आधार पर (On the Basis of Authority)

2.3.6.6 आकार, संरचना और संरचना के आधार पर (On the Basis of Size, Structure and Composition)

2.3.7 पारिवारिक रूपों में बदलाव (Variations in family forms)

2.3.8 परिवार की उत्पत्ति के सिद्धांत (Theories of the Origin of Family)

2.3.8.1 यौन साम्यवाद का सिद्धांत (Theory of Sex Communism)

2.3.8.2 पितृसत्तात्मक परिवार का सिद्धांत (Patriarchal Family Theory)

2.3.8.3 मातृसत्तात्मक परिवार का सिद्धांत (Matriarchal Family Theory)

2.3.8.4 उद्विकास वादी सिद्धांत (Evolutionary Theory)

2.3.8.5 एकविवाही (मोनोगैमी) का सिद्धांत (Theory of Monogamy)

2.3.8.6 बहुकारक सिंद्धांत (Multi Factor Theory)

2.3.9 सारांश (Summary)

2.3.10 बोध प्रश्न

2.3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप निम्नलिखित में सक्षम होंगे :

- परिवार का अर्थ और परिभाषाएँ समझने में सक्षम होंगे।
- परिवार के अध्ययन के लिए एक मानववैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझने में सक्षम होंगे।
- परिवार के प्रकार और इनके आधार को समझने में सक्षम होंगे।
- परिवार के उत्पत्ति के सिद्धांतों को समझने में सक्षम होंगे।

2.3.1 प्रस्तावना

जब एक बच्चा पैदा होता है, तो वह एक परिवार में पैदा होता है जिसे समाज का सबसे छोटी सामाजिक इकाई है। परिवार वह सामाजिक इकाई है जो बच्चे को सामाजिक मानदंडों, मूल्यों, नियमों और विनियमों से अवगत करती है। उनका समाजीकरण करती है। अंग्रेजी शब्द फेमली को हिन्दी भाषा में विभिन्न शब्दों जैसे कुटुम्ब, गृह, कुल और परिवार के नाम से जाना जाता है। इस इकाई में हम परिवार की विभिन्न परिभाषाएँ, परिवार के प्रकार और एक सामाजिक संस्था के रूप में परिवार की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांत समझेंगे। इसके अतिरिक्त हम परिवार का पार-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, परिवार के अध्ययन का मानववैज्ञानिक दृष्टिकोण और घरेलू समूह के बारे में भी जानेंगे।

2.3.2 परिवार: एक प्रस्तावना

परिवार, समाज की एक मुख्य अभिव्यक्ति है जो विचारों और मान्यताओं के समुच्चय को सम्मलित करता है। जो मूल्यों को दर्शाने के साथ-साथ व्यक्तिगत स्तर और समूह स्तर पर समाज को समझने में मदद करता है। कुटुंब (household) उन सामाजिक समूहों को संदर्भित करता है जो नातेदारी तथा गैर-नातेदारी संबंधों पर आधारित हो सकते हैं। एक कुटुंब (household) के सदस्य जरूरी नहीं की केवल रक्त से या वैवाहिक संबंधी हो, यह सहपाठी, दोस्त, या बिना किसी संबंध के भी हो सकता है। घरेलू समूह (Domestic Group) संसाधन स्वामित्व वाले समूहों को संदर्भित करता है। समाज के परिवर्तन, विकास और उन्नति को समझने के लिए परिवार, कुटुंब और घरेलू समूह का अध्ययन करने की आवश्यकता है। कई विद्वानों ने परिवार को नातेदारी और परिजनों के विशिष्ट रूपों में चिन्हित किया गया है। उदाहरण के लिए, अगर कोई कहता है, "पिछले हफ्ते पूरा परिवार अंतिम संस्कार में शामिल हुआ था"; घर सात पीढ़ियों से परिवार में रहा है; मैं अपनी पत्नी के साथ यहां अपार्टमेंट में रहता हूं लेकिन मेरा परिवार लंदन में है। जब

किसी को बेटी की शादी के रिसेप्शन के लिए उसके दोस्त द्वारा आमंत्रित किया जाता है, तो प्राथमिक विचार यह आता है कि वह किसके साथ जाना चाहिए या वे कौन लोग हैं, जो उसके साथ जा सकते हैं, क्या वह निमंत्रण पति और पत्नी या पति, पत्नी और अविवाहित बच्चे या पति, पत्नी, अविवाहित बच्चे और पति के माता-पिता या पति, पत्नी और विवाहित बच्चे अपने बच्चों के साथ। ये सोचने के तरीके हैं कि जब कोई शब्द का उपयोग कर रहा है तो परिवार को कैसे परिभाषित किया जाए। ऐसे कई दृष्टिकोण हैं जिनके द्वारा कोई भी परिवार की धारणा को परिभाषित कर सकता है। परिवार की परिभाषा कुटुंब या घरेलू समूह के साथ होती है। जब रिश्तेदारी, सहवास, विवाह और श्रम के विभाजन को भी शामिल किया जाता है तो परिवार का वर्णन करना जटिल और कठिन हो जाता है।

जॉर्ज पीटर मर्डॉक कहते हैं कि परिवार एक सामाजिक समूह है जिसकी विशेषता आम निवास, आर्थिक सहयोग और प्रजनन है। इसमें दोनों लिंग, जिनमें से कम से कम दो सदस्य के मध्य सामाजिक संबंध हो, एक या अधिक बच्चे हों या यौनसंबंधी सहवास करने वाले जोड़े हों। उन्होंने कहा कि परिवार के कई महत्वपूर्ण कार्य हैं: यह प्रजनन, भोजन और आश्रय प्रदान करता है, यह आर्थिक गतिविधि और उत्पादन की इकाई है, यह उपभोग की इकाई है, सदस्यों के बीच सहयोग दर्शाता है, इसमें श्रम का विभाजन होता है, यह प्राथमिक समाजीकरण, मूल्य और व्यक्तित्व निर्माण में मनोवैज्ञानिक कार्य करता है। जैविक और सामाजिक कारकों की अंतर्क्रिया एक परिवार को सार्वभौमिक समूह का रूप देती है। किसी भी घटना में हम मानव परिवारों के सामाजिक और जैविक-कारकों का निरीक्षण कर सकते हैं।

2.3.3 परिवार का अर्थ और परिभाषाएँ

समकालीन संदर्भ में, पूरे मानव इतिहास में पारिवारिक संबंधों के किसी न किसी रूप में व्याप्तता और निरंतरता के बावजूद, एक परिवार की परिभाषा पर कोई एक समान सहमति नहीं है। पश्चिम में, 1960 के दशक के आसपास, पारिवारिक मुद्दों के संबंध में सामाजिक विचार में क्रांति ने "परिवार" की एकीकृत अवधारणा को तोड़कर परिवारों पर समकालीन चर्चाओं को प्रभावित करना जारी रखा है। जैसा कि यह वैचारिक समस्या बनी हुई है, सामाजिक वैज्ञानिक और नीति निर्माता इस बात पर बहस कर रहे हैं कि कैसे व्यक्तियों का समूह परिवार बनता है और यह क्यों मायने रखता है। संपूर्ण मानव इतिहास में पारिवारिक संबंधों के किसी न किसी रूप की व्यापकता और निरंतरता के बारे में एकमत होने के बावजूद, वर्तमान संदर्भ में, एक परिवार क्या है, इसकी परिभाषा पर एक समान सहमति नहीं है। पश्चिम में पारिवारिक मुद्दों के संबंध में सामाजिक विचार में क्रांति, जो कि 1960 के दशक की उथल-पुथल से हुई थी, ने "परिवार" की एकीकृत अवधारणाओं को तोड़कर परिवारों पर समकालीन चर्चाओं पर प्रभाव डालना जारी रखा है। एमिल दुर्खीम ने अपने काम में जोर दिया कि परिवारों ने कई रूपों को अपनाया और फिर भी एक प्रमुख सामाजिक संस्था बनी

रही। इस अवधारणा को जॉर्ज मर्डोक (1949) द्वारा और विस्तृत किया गया था। अपने आधार के रूप में पश्चिमी और गैर-पश्चिमी दोनों समाजों के डेटा का उपयोग करते हुए, मर्डोक ने निष्कर्ष निकाला कि हर समाज को परिवार की इकाइयों की विशेषता थी जो आर्थिक सहयोग, यौन प्रजनन और आम निवास के आसपास आयोजित की जाती हैं। उनकी परिभाषा (जो अभी भी उपयोग में है) की कार्यात्मक प्रकृति के कारण व्यापक रूप से आलोचना की गई है। समकालीन सिद्धांतकार बताते हैं कि परिवार की अवधारणा वास्तव में नैतिक प्रभाव के साथ एक वैचारिक निर्माण है। परिवार की परिभाषा पर बहस भी परिवार के अधिकारों के बजाय व्यक्तिगत अधिकारों के लिए तर्क के साथ खत्म हो गई है, और कुछ का यह भी कहना है कि केवल कुछ प्रकार के परिवारों को सामाजिक लाभ के प्राप्तकर्ता के रूप में माना जाना चाहिए। वर्तमान में, बोजन, श्नाइडर और कॉर्बेट (2004) का सुझाव है कि "परिवार की कोई एकल परिभाषा संभव नहीं हो सकती है"। परिवार की मौजूदा परिभाषा को दो तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता है:

- संरचनात्मक (Structural) परिभाषाएँ जो कुछ रक्त विशेषताओं, कानूनी संबंधों या निवास की कुछ विशेषताओं के अनुसार पारिवारिक सदस्यता निर्दिष्ट करती हैं; तथा
- प्रकार्यात्मक (Functional) परिभाषाएं जो उन व्यवहारों को निर्दिष्ट करती हैं जो परिवार के सदस्य प्रदर्शन करते हैं, जैसे कि आर्थिक संसाधन साझा करना और युवा, बुजुर्ग, बीमार और विकलांगों की देखभाल करना।

2.3.3.1 परिवार की विभिन्न परिभाषाएं

ऑक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार एक रक्त या विवाह से संबंधित लोगों का एक समूह जिसमें माता-पिता और उनके अविवाहित बच्चे एक इकाई के रूप में एक साथ रहते हैं।

परिवार एक सामाजिक समूह है जिसकी विशेषता आम निवास, आर्थिक सहयोग और प्रजनन है। इसमें दोनों लिंगों के वयस्क शामिल हैं, जिनमें से कम से कम दो एक सामाजिक रूप से स्वीकृत यौन संबंध बनाए रखते हैं, और एक या एक से अधिक बच्चे, स्वयं या गोद लिए हुए, यौन रूप से सहवास करने वाले युगल (मर्डोक, 1949 स्टील, किड, और ब्राउन, 2012, में उद्धृत)।

ऑस्ट्रेलियाई सांख्यिकी ब्यूरो के अनुसार दो या अधिक व्यक्ति, जिनमें से एक की उम्र कम से कम 15 वर्ष है और जो रक्त, विवाह (पंजीकृत या डी फैक्टो), गोद लेने से संबंधित हैं और जो आमतौर पर एक ही घर में रहते हैं।

अमेरिकी जनगणना ब्यूरो के अनुसार एक परिवार दो लोगों या अधिक (जिनमें से एक गृहस्थ है) का एक समूह है जो जन्म, विवाह या गोद लेने और एक साथ रहने से संबंधित है; ऐसे सभी लोगों (संबंधित उप-सदस्यीय सदस्यों सहित) को एक परिवार का सदस्य माना जाता है।

व्यक्तियों के एक समूह जो सीधे परिजनों द्वारा जोड़ा जाता है, जिनमें से वयस्क सदस्य बच्चों की देखभाल की जिम्मेदारी लेते हैं (गिडेंस 1993)।

संबंधित परिजनों का एक संजाल (Goldthorpe, 1987)

परिवार "औपचारिक, रक्त या विवाह संबंधों के बजाय अंतरंग कनेक्शन के व्यक्तिपरक अर्थ को दर्शाता है "(सिल्वा एण्ड स्मार्ट, 1999)।

एक परिवार व्यक्तियों का एक समूह होता है जिसमें एक पीढ़ीगत संबंध मौजूद होता है (यानी, माता-पिता और उनके बच्चे। इसके अतिरिक्त, परिवार के सदस्य घनिष्ठ अंतरंग संपर्क प्रदान करते हैं (आमतौर पर गहरी प्रतिबद्धता, विश्वास, सम्मान और लंबे समय तक दायित्व की भावना की विशेषता है। यह माना जाता है कि यौन अंतरंगता माता-पिता के बीच संबंध का एक तत्व है। संसाधनों को प्राप्त करने, आवंटित करने और वितरित करने (जैसे, समय, पैसा, स्थान, और करीबी व्यक्तिगत संपर्क) में सहायता प्रदान करता है (डे, 2010)।

एक परिवार "कम से कम एक वयस्क सदस्य और एक या एक से अधिक लोगों द्वारा गठित एक मनोसामाजिक समूह है, जो एक समूह के रूप में पारस्परिक आवश्यकता पूर्ति, पोषण, और विकास के लिए काम करते हैं (फिट्ज़पैट्रिक और वाम्बोल्ट, 1990)।

2.3.4 परिवार: एक पार-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

परिवार दुनिया भर में एक मुख्य सामाजिक संस्था के रूप में मिलते हैं। कई उत्तरी यूरोपीय देशों और कनाडा में, पारिवारिक अवधारणाओं में अब समलैंगिक सेक्स विवाह शामिल है, जो कानूनी हो गया, जिसकी शुरुआत डेनमार्क में 1989 में आधिकारिक तौर पर पंजीकृत कानून के साथ हुई, जिसके बाद नॉर्वे (1993) में पंजीकृत समान लिंग वाले लोगों के लिए कानूनी अधिकारों का विस्तार हुआ। स्वीडन (1994), नीदरलैंड (2001), बेल्जियम (2003), स्पेन (2005), ब्रिटेन (2005), और कनाडा (2005)। एक व्यापक मानवविज्ञान साहित्य में प्रलेखित घरेलू समूहों और परिवारों का जो उल्लेख मिलता है वह इनसे मौलिक रूप से भिन्न हैं। वैश्वीकरण और परिवारों के बीच संबंधों पर व्यापक परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए, गैर-पश्चिमी समाजों में परिवार की अवधारणा की जांच करने का सुझाव दिया गया है। कई गैर-पश्चिमी समाजों में, एक व्यक्ति के लिए संदर्भ समूह आज भी, उसके परिजनों से होता है, ऐसे रिश्ते जो नाभिक (न्यूक्लियर) परिवार के संबंधों से बहुत आगे तक फैले हुए हैं जो संयुक्त राज्य और यूरोप में इतने सारे लोगों के लिए आदर्श हैं। इन समाजों में, परिवारों को अक्सर निर्णय लेने की प्रक्रिया में खींचा जाता है, जो उन मुद्दों पर व्यक्तिगत जीवन को

प्रभावित करता है। हालांकि, कई गैर-पश्चिमी स्थानों में परिजनों के लिए दायित्व का अत्यधिक महत्व है और सामूहिक समूह की देखभाल से कोई विचलन किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को बर्बाद कर सकता है। पारिवारिक जिम्मेदारियां, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों के बावजूद भी महत्वपूर्ण बनी हुई हैं।

2.3.5. परिवार के अध्ययन का एक मानववैज्ञानिक दृष्टिकोण

इस प्रकार के दृष्टिकोण संस्कृति और व्यक्तित्व के क्षेत्र में समस्याओं के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं। इसमें दो कार्यप्रणाली से समस्याओं का अध्ययन किया जाता है अर्थात् किसी दिए गए समाज के सांस्कृतिक प्रतिमानों के अधिक विश्वसनीय और वस्तुनिष्ठ विवरण पर कैसे पहुँचें और संस्कृति और व्यक्ति के बीच संबंधों की बेहतर समझ कैसे प्राप्त करें। परिवार के अध्ययन परिवार में अवसाद, परिवार में समस्या, परिवार की अस्थिरता पर केंद्रित हैं; जिसका उपयोग सामाजिक कार्यकर्ता, समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सक और अन्य लोगों द्वारा किया गया जाता है। इन्हें संपूर्ण अध्ययन के रूप में चित्रित किया जा सकता है जिसमें पारिवारिक जीवन के विशेष पहलू पर विचार किया जाता है। किसी व्यक्ति और उसके सांस्कृतिक प्रतिमान के अध्ययन की समस्या का सामना करने के लिए मानवविज्ञान में विभिन्न पद्धति का उपयोग किया जाता है, लेकिन व्यावहारिक और सैद्धांतिक पक्ष, दोनों ही इसकी सीमा होती है। हालांकि, अधिकांश मानवशास्त्रीय अध्ययनों में, परिवार को एक स्टीरियोटाइप के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जहां मुख्य जोर वास्तविक पारिवारिक जीवन की सामग्री और विविधता के बजाय परिवार के संरचनात्मक और औपचारिक पहलुओं की प्रस्तुति पर होता है। एक ध्रुव पर संस्कृति के वैचारिक चरम और दूसरे पर व्यक्ति के बीच की खाई को पाटने के लिए गहन मामले के अध्ययन का उपयोग किया जाता है। पारिवारिक मामले के अध्ययन हमें उन कारकों के बीच अंतर करने में सक्षम बनाते हैं जो सांस्कृतिक हैं और जो स्थितिजन्य हैं। विशिष्ट परिवारों का अध्ययन करने के लिए, एक संस्कृति का अध्ययन करने का लाभ यह है कि इससे हमें कोई व्यक्ति किस प्रकार संस्था का अर्थ प्राप्त करता है यह समझने में मदद मिलती है। मेयर फोर्ट्स ने परिवार की व्याख्या एक घरेलू समूह के रूप में की है।

2.3.5.1 घरेलू समूह

किसी भी सामाजिक संस्था का समग्र रूप से अध्ययन करने के लिए, इसे पारिस्थितिक, आर्थिक, जनसांख्यिकी, मनोवैज्ञानिक और शारीरिक रूप से विचार करना महत्वपूर्ण है जो इसके आकार और संरचना को प्रभावित करता है। घरेलू समूह पर्यावरण, जैविक, मनोवैज्ञानिक घटकों में निहित है। घरेलू समूह संसाधन स्वामित्व वाले समूहों को संदर्भित करता है। एक घरेलू समूह के सदस्य श्रम के अपने हिस्से का योगदान करते हैं और विशेष रूप से श्रम विभाजन के आधार पर विभिन्न प्रकार की उत्पादन गतिविधि करते हैं, विशेष रूप से उम्र, लिंग और प्रस्थितिके आधार पर। उनके पास राजनीतिक कार्य भी होते हैं, वे व्यक्तिगत रूप से पूरी

तरह से इस कार्य में प्रशिक्षिण लेते हैं ताकि व्यक्ति राजनीतिक-ज्यूरल डोमेन में प्रवेश कर सकें। चूंकि वे संसाधन के मालिक समूह हैं, इसलिए घरेलू समूह उत्पादन इकाई के रूप में कार्य करता है। घरेलू समूह के सदस्य उन संसाधनों का उपयोग करने में लगे रहतें हैं जो समूह के पास हैं और आर्थिक उत्पादन में शामिल हैं। यही कारण है कि परिवार की परिभाषाएं घरेलू समूह के साथ ओवरलैप होती हैं। एक घरेलू समूह में श्रम और आर्थिक उत्पादन शामिल थे, एक बार इन संसाधनों का संकलन हो जाने के बाद, इसे विभिन्न खपत इकाई के बीच विभाजित किया जाता है। इन इकाइयों में अक्सर अलग रसोईघर, अलग आवासीय इकाइयाँ और भिन्न उपभोग इकाइयाँ हो सकती हैं। उदाहरण: बहुविवाहित समाज में उत्पादन की खपत इकाई प्रजनन की एक इकाई के रूप में कार्य करती है। पति और पत्नी अभी भी युवा हैं और संतान को जन्म दे रहे हैं, लेकिन जब पत्नी रजोनिवृत्ति प्राप्त कर लेती है या पति वृद्ध हो जाता है, प्रजनन में अक्षम हो जाता है तो वे उपभोग इकाइयों में सम्मलित हो जाते हैं।

मेयर फोर्ट्स ने कहा कि घरेलू समूह अनिवार्य रूप से हाउसहोल्डिंग और हाउसकीपिंग ग्रुप हैं जो सामग्री संसाधन और सांस्कृतिक संसाधन प्रदान करने के लिए संगठित करते हैं जिन्हें अपने सदस्यों को बनाए रखने और बढ़ाने के लिए आवश्यक है। वे चक्रीय विकास से गुजरते हैं। ये चक्र हमेशा प्रक्रिया में होते हैं। यह विशेष रूप से घरेलू समूह के विकास चक्र के रूप में जाना जाता है जो एक व्यक्ति के जीवन और समूह की गतिशीलता को समाविष्ट करता है। उन्होंने आगे कहा कि प्रत्येक घरेलू समूह, घरेलू समूह के विकास चक्र में तीन चरणों से गुजरता है:

1) विस्तार का चरण- यह शादी से शुरू होता है और पहले बच्चे के जन्म तक फैलता है और अंतिम बच्चे के जन्म तक इसका विस्तार होता रहता है। यह चरण पत्नी/महिला की प्रजनन क्षमता और पत्नी के रजोनिवृत्ति और पति की असमर्थता जैसे शारीरिक कारकों पर निर्भर है। यह विस्तार, अवधि की लंबाई निर्धारित करता है।
2) फैलाव का चरण- यह पहले सबसे बड़े बच्चे के विवाह से शुरू होता है और यह अंतिम सबसे छोटे बच्चे के विवाह तक जारी रहता है। पितृवंशीय प्रणाली में, बेटे आम तौर पर अपने घरेलू समूह की एक नई गृहस्थी, उत्पादन और उपभोग की नई इकाई स्थापित करते हैं। कुछ घरेलू समूहों में, सबसे छोटा बेटा पिता के साथ रहता है।
3) प्रतिस्थापन का चरण- यह माता-पिता की उम्र बढ़ने के साथ शुरू होता है और समय बीतने के साथ उनकी मृत्यु तक जारी रहता है, माता-पिता बूढ़े हो जाते हैं और किसी भी शारीरिक गतिविधि को करने के लिए कोई सहनशक्ति नहीं होती है। वे अपने बच्चों पर भरोसा करते हैं वे उनसे अनुरोध करते हैं कि वे अपने कार्य का प्रतिनिधित्व करें। इस प्रक्रिया में माता-पिता अब आर्थिक इकाई में भाग नहीं लेते हैं, इस प्रकार उनका अधिकार/शक्ति धीरे-धीरे कम हो जाती है।

बच्चे स्वायत्त तरीके से बढ़ते हैं और निर्णय लेते हैं। बच्चे माता-पिता परिवार के मुखिया की जगह लेते हैं और फिर विस्तार के चरण से गुजरते हैं।

ये 3 चरण जरूरी नहीं कि चरणों के समान अनुक्रम का पालन करें। कुछ समूह विस्तार के चरण को छोड़ सकते हैं। घरेलू समूह मानव कारखाने की तरह है जो बच्चे/व्यक्ति का पोषण करता है। एक व्यक्ति का जीवन, जीवन के चार चरणों से गुजरता है

• मातृकेन्द्रित सेल- माता-शिशु युग्म, तब शुरू होता है जब बच्चा मां के गर्भ में होता है।
• पितृकेन्द्रित सेल- जब बच्चा रेंगना शुरू करता है, तो पिता बच्चे के करीब आता है और उसकी जिम्मेदारी लेता है। बच्चा माता-पिता से बुनियादी कौशल प्राप्त करता है और उनके करीब आता है।
• घरेलू समूह में प्रवेश करना- बच्चा चलना शुरू कर देता है, घर से बाहर निकलने की अनुमति नहीं, माता-पिता / बड़ों / भाई-बहनों के मार्गदर्शन में लगातार बच्चा अपने माता-पिता के अलावा अन्य लोगों से कौशल सीखता है।
• पॉलिटिको-ज्यूरल डोमेन में प्रवेश करना- बच्चा घरेलू डोमेन के बाहर सार्वजनिक ज्ञानक्षेत्र में प्रवेश करता है और कार्यालयों में जिम्मेदारियों, पदों को ग्रहण करता है।

2.3.6 परिवार के प्रकार

विभिन्न मानवविज्ञानियों ने परिवार को वर्गीकृत करने का प्रयास किया। परिवार का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया गया है। परिवार एक सार्वभौमिक सामाजिक समूह है, इसके चर, रूप, संरचना या प्रकार समाज से समाज में भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में संयुक्त परिवार का अच्छी तरह से अध्ययन कर सकते हैं और विकसित देशों में नाभिक परिवार के विभिन्न रूपों में. इसमें कोई संदेह नहीं है की कई कारकों, संस्कृति और सामाजिक मूल्यों में भिन्नता मौजूद है, इस प्रकार विभिन्न प्रकार के परिवार पाए जाते हैं। इसलिए परिवार का सार्वभौमिक वर्गीकरण प्रदान करना एक कठिन कार्य है।

2.3.6.1 विवाह प्रथा के आधार पर

परिवार को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है:

a) एकविवाही परिवार- परिवार में एक पति, एक पत्नी और बच्चे शामिल होते हैं। उन दोनों को एक से अधिक जीवनसाथी रखने की मनाही है। इस रूप को आदर्श रूप माना जाता है।

b) बहुविवाही परिवार- एक व्यक्ति के एक से अधिक पति / पत्नी होते हैं। एक पुरुष एक से अधिक महिलाओं से शादी करता है या एक पत्नी एक से अधिक पतियों से विवाह करती है। बहुविवाह परिवार दो प्रकार के होते हैं, अर्थात् बहुपत्नी परिवार और बहुपति परिवार।

• **बहुपति परिवार-** एक समय में एक महिला के कई पति होते हैं। यदि पत्नी के पति एक दूसरे से संबंधित नहीं हैं, तो इसे गैर- भ्रातृवादी के बहुपत्नी परिवार के रूप में जाना जाता है। उदाहरण, केरल के नायर। यदि महिला के पति भाई के रिश्ते में एक-दूसरे से संबंधित हैं, तो इसे भ्रातृवादी बहुपत्नी परिवार के रूप में जाना जाता है। उदाहरण: नीलगिरि पहाड़ियों की टोडा और उत्तराखंड के जौनसार और बावर क्षेत्र की खासा। इसमें सबसे बड़ा भाई सभी रस्में निभाकर पत्नी लाता है और सभी छोटे भाई उसके साथ यौन संबंध रखते हैं। यदि पत्नी और छोटे भाई के बीच उम्र का अंतर है, तो वह धार्मिक रूप से एक पत्नी लाता है, फिर से सभी भाइयों की पत्नी के रूप में वह राहत है।

• **बहुपत्नी परिवार-** एक पुरुष को एक से अधिक महिलाओं से विवाह करने की अनुमति है। इस प्रकार इस परिवार में एक पति और कई पत्नियाँ हैं। उदाहरण: अरुणाचल प्रदेश में इडु मिश्मी जनजाति और नागालैंड के कोन्याक। सभी पत्नियां पति के साथ नहीं रह सकती हैं, पत्नियों के पास एक समान अन्न भंडार है, लेकिन वे अलग-अलग गृह में रहती हैं।

2.3.6.2 निवास के नियम के आधार पर

परिवार को छह प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है:

a) मातृस्थानी परिवार- वह परिवार जिसमें एक व्यक्ति अपनी पत्नी के मातृ निवास में विवाह उपरांत रहता है। यह किस्म नंबियार, मेघालय के खासी, केरल के नायर के बीच पाई जाती है।

ख) पितृस्थानी परिवार- वह परिवार जिसमें विवाह के बाद बेटी अपने घर से बाहर जाती है और अपने पति के पिता के निवास रहती है। यह प्रकार आमतौर पर उत्तरी और मध्य भारत के अधिकांश स्थानों में पाया जाता है।

ग) द्विस्थानी परिवार- इस प्रकार में, शादी के बाद विवाहित जोड़े अपने निवास को वैकल्पिक रूप से बदलते रहते हैं। पति के पैतृक और पत्नी के मातृक दोनों परिवारों को महत्व दिया जाता है। सभी अनुष्ठानों, दोनों पक्षों से रीति-रिवाजों का अभ्यास किया जाता है।

d) मातृस्थानी परिवार- पति निवास बदलता है, जरूरी नहीं कि पत्नी के मातृ स्थान पर रहे बल्कि पत्नी के मातृ रिश्तेदारों के पास रहता है। उदाहरण: केरल के नायर, मुख्य रूप से अपनी पत्नी की संपत्ति की देखभाल करने के लिए, पति पास के स्थान पर चले जाते हैं।

ई) पितृस्थानी परिवार- इस परिवार में, महिला अपने पति के साथ पति के रिश्तेदारों के पास रहती है।

f) नवस्थानी परिवार- जब पति और पत्नी अपने माता-पिता से दूर एक नया स्वतंत्र परिवार स्थापित करने का निर्णय लेते हैं और एक नए स्थान पर बस जाते हैं। उदाहरण: यदि पति का परिवार चेन्नई में रहता है और पत्नी का परिवार दिल्ली में रहता है, और पति और पत्नी दोनों लंदन में एक नए स्थान पर बस जाते हैं।

छ) मातृमामास्थानी परिवार- इस प्रकार का परिवार मातृसत्तात्मक समाजों में पाया जाता है। संपत्ति की देखभाल के लिए बहन के बेटे को पत्नी लाने और अपनी माँ के भाई मामा के परिवार में शामिल होने की आवश्यकता होती है। इसका मतलब है कि शादी के बाद नवविवाहित जोड़ा पत्नी के मामा के घर रहता है। "अवंकु" का अर्थ है मामा। उदाहरण: केरल के मातृसत्तात्मक समाज।

2.3.6.3 वंश के आधार पर

परिवार को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है:

a) **पितृवंशीय परिवार-** यह किस्म आमतौर पर पूरी दुनिया में प्रचलित है। इस प्रकार में वंश को पिता रेखा के माध्यम से निर्धारित किया जाता है और पिता से पुत्र और पौत्र तक जारी रहता है। संपत्ति और परिवार का नाम या जाति बेटों को विरासत में मिली है। उदाहरण: हरियाणा के जाट। इस प्रकार में पुरुष प्रमुख है और महिलाएं या तो हाशिए पर हैं या निम्न दर्जे की हैं। पितृसत्तात्मक परिवारों को आगे चलकर अति पितृसत्तात्मक परिवारों और मध्यम पितृसत्तात्मक परिवारों में विभाजित किया जाता है।

b) **मातृवंशीय परिवार-** वंश माता के माध्यम से विरासत में मिला है। यह मां के माध्यम से अपनी बेटी को उसकी पोती वगैरह के लिए जारी रहता है। संपत्ति और परिवार का नाम या जाति मातृसत्तात्मक रेखा के माध्यम से विरासत में मिलती है। इस प्रकार में महिलाओं का दबदबा है और उनका दर्जा ऊंचा है। उदाहरण: केरल के नायर।

c) **द्विवंशीय परिवार-** वंश को माता और पिता दोनों के माध्यम से पहचान या निर्धारित किया जाता है। उदाहरण नेहरु परिवार।

2.3.6.4 रक्त संबंधों की प्रकृति के आधार पर

परिवार को दो प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है:

a) दाम्पतिक परिवार- इस प्रकार के परिवार में विभिन्न लिंगों के दो वयस्क व्यक्ति विवाह से एक दूसरे से संबंधित होते हैं, एक विषम जोड़ी, जिनके बच्चे हो सकते हैं / नहीं हो सकते हैं। उदाहरण: संयुक्त राज्य अमेरिका का नाभिक परिवार।

b) समरक्त परिवार- इस प्रकार में पति और पत्नी एक दूसरे से रक्त संबंधित होते हैं, वे या तो क्रॉस-चचेरे भाई या समानांतर चचेरे भाई होते हैं। पति और पत्नी का संबंध रक्त से होता है। उदाहरण: आंध्र प्रदेश के मुस्लिम या रेड्डी के कुछ समूह या केरल के कुछ गैर-ब्राह्मणों के बीच।

2.3.6.5 सत्ता के आधार पर

इस आधार पर परिवार को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है:

a) पितृसत्तात्मक परिवार- इसमें सारी शक्ति पितृ पुरुष यानी पिता के हाथों में है। सत्ता का हक़ परिवार के सबसे बड़े पुरुष सदस्य को दिया जाता है जो परिवार के अन्य सदस्यों पर पूर्ण शक्ति / अधिकार रखता है। वह मुख्य निर्णय लेने वाला होता है। उनकी मृत्यु के बाद, परिवार के सबसे बड़े बेटे को शक्ति प्रदान की जाती है। यह प्रकार भारत में हिंदुओं के संयुक्त परिवारों में सबसे अधिक पाया जाता है।

b) मातृसत्तात्मक परिवार- इसमें शक्ति / अधिकार परिवार की सबसे बड़ी महिला सदस्य के हाथ में होता है। नारी को उच्च स्थिति और स्वतंत्रता प्राप्त होती है। वह सारी संपत्ति की मालिक है। वंश को मातृ रेखा के माध्यम से जाना जाता है। वह मुख्य निर्णय निर्माता होती है। शक्ति / अधिकार पत्नी या बड़ी बेटी को सौंप दिया जाता है। यह किस्म मुख्य रूप से खासी, जैंतिया, मेघालय के गारो जनजातियों और केरल के नयारों में पाई जाती है।

c) समतावादी परिवार- इस प्रकार में की शक्ति / अधिकार समान रूप से पति / पत्नी के बीच साझा / वितरित किए जाते हैं। ये दोनों संयुक्त निर्णय लेते हैं और एक दूसरे की जिम्मेदारियों को साझा करते हैं। बेटे और बेटी दोनों को समान अनुपात में विरासत / संपत्ति मिलती है।

2.3.6.6 आकार, संरचना और संरचना के आधार पर

परिवार दो प्रकारों में विभाजित है:

क) एकाँकी/नाभिक परिवार- यह प्रकार दुनिया भर में पाया जाने वाला सबसे प्राथमिक और आदर्श रूप है। नाभिक परिवार में एक पति, पत्नी और उनके अविवाहित बच्चे होते हैं। इससे परिवार की एक बुनियादी इकाई का गठन होता है, परिवार का आकार छोटा होता है। यह एक स्वतंत्र स्वायत्त इकाई है। इसे प्राथमिक परिवार के रूप में भी जाना जाता है।

ग) संयुक्त परिवार- इस परिवार का आकार बड़ा है जो एक नाभिक परिवार से परे है। दो से अधिक नाभिक परिवार हो सकते हैं। यह प्रकार आमतौर पर हिंदू संयुक्त परिवार के बीच पाया जाता है। इस परिवार में पिता, माता, उनके बेटे और उनकी पत्नियां, अविवाहित बेटियां, पोते, बाबा, चाचा, चाची, उनके बच्चे, पिता के समानांतर चचेरे भाई और उनके बच्चे शामिल हैं। पहले संयुक्त परिवार एक प्रकार के व्यवसाय में लगे हुए थे और अगली पीढ़ी उस व्यवसाय का अनुसरण करती थी। लेकिन अब वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण के साथ प्रत्येक परिवार के सदस्य अलग नौकरी में लगे हुए हैं। संयुक्त परिवार में ज्यादातर तीन से चार पीढ़ियों के सदस्य शामिल होते हैं। यह माता-पिता-बच्चे के संबंध का विस्तार करता है।

2.3.7 पारिवारिक रूपों में बदलाव

नाभिक और संयुक्त परिवार के अलावा परिवार के कई और रूप हैं। ये विविधताएं भारत में विशेष रूप से देखी जाती हैं। निम्नलिखित विभिन्न पारिवारिक रूप हैं:

a) नाभिक परिवार- जिसमें अविवाहित बच्चों के साथ या बिना विवाहित जोड़े, पति और पत्नी शामिल हैं। नाभिक परिवार (Nuclear Family) शब्द का प्रयोग पहली बार जी.पी. मर्डोक, अमेरिकी मानवविज्ञानी, अपनी पुस्तक 'सोशल स्ट्रक्चर' में किया था। उन्होंने परिवार का अध्ययन करने के लिए शास्त्रीय दृष्टिकोण दिया।

b) समग्र परिवार- नाभिक परिवार की एक और भिन्नता जो तब पाई जाती है जब नाभिक परिवार क्षैतिज रूप से फैलता है यानी बहुविवाहित के कारण। उदाहरण:- एक परिवार जिसमें पति और पत्नी अपने बच्चों के साथ होते हैं, पति दो और पत्नियाँ लाता है और उनके साथ बच्चे हो सकते हैं; बहुपत्नी परिवार।

c) विस्तारित परिवार- जिसमें नाभिक परिवार की तुलना में व्यापक समूह शामिल हैं। सदस्य विवाह, रक्त और यहां तक कि गोद लेने के माध्यम से एक दूसरे से संबंधित हैं। विस्तारित परिवार में दोनों प्रकार के वंश संबंधी और संपार्श्विक संबंधी (पूर्वज एक लेकिन वंश अलग) प्रकार के सदस्य हैं, जिसका अर्थ है पिता, पुत्र, माता-पिता, अपने बेटे की पत्नी के साथ रहता है। उदाहरण:- भारत में पश्चिमी राज्य के कई संयुक्त परिवार विस्तारित परिवार से मिलते जुलते हैं, जैसे पंजाबी परिवार में वंश और संपार्श्विक दोनों सदस्य हैं।

d) संयुक्त परिवार- आमतौर पर भारत, चीन, जापान में पाए जाते हैं- ये देश कृषि में परंपराओं से अधिक जुड़े हुए हैं। संयुक्त परिवार में पिता, उनके विवाहित पुत्र होते हैं, सभी अपनी पत्नियों और अविवाहित बच्चों के साथ रहते हैं। उदाहरण:- भारत के उत्तर क्षेत्र में पाया जाता है।

e) स्टेम परिवार- इस प्रकार का परिवार आदर्श संयुक्त परिवार के साथ आता है जो विखंडित या विघटित हो जाता है, इसके कुछ सदस्य बाहर चले जाते हैं। स्टेम परिवार वे परिवार हैं जो कभी संयुक्त परिवार का हिस्सा थे। उदाहरण:- मेघालय में खासी जनजाति, मातृसत्तात्मक समुदाय जहां सबसे छोटी बेटी पति लाती है, उसे संपत्ति, जमीन में सब कुछ मिलता है और अविवाहित बच्चों के साथ रहती है। यहां बड़ी बहनों को बाहर जाना पड़ता है और एक नया गृहस्थ पति और बच्चों को स्थापित करना पड़ता है। ये स्टेम परिवार हैं जो एक समय में संयुक्त परिवार का हिस्सा थे।

f) अनुपूरक नाभिक परिवार- यह वास्तव में एक नाभिक परिवार या एक से अधिक अविवाहित / विधवा / अलग-थलग रिश्तेदार हैं। उदाहरण:- पति, पत्नी, उनके अविवाहित बच्चे और पति की अविवाहित बहन उनके साथ रहते हैं।

g) उप-नाभिक परिवार- यह परिवार एक पूर्व नाभिक परिवार का एक टुकड़ा है जिसमें एक विधवा, और उसके अविवाहित बच्चे होते हैं।

h) अनुपूरक उप-नाभिक परिवार- रिश्तेदारों का एक समूह जो पूर्व में पूर्ण नाभिक परिवार के सदस्य हैं और कुछ अन्य अविवाहित/अलग/ विधवा हैं जो नाभिक परिवार के सदस्य नहीं थे। उदाहरण:- एक परिवार जिसमें पति, पत्नी, उनके बच्चे रहते थे और फिर पति की मृत्यु हो जाती है, पत्नी की सास उससे जुड़ जाती है।

i) एकल व्यक्ति गृहस्थी- ऐसा गृह जिसमें केवल एक ही सदस्य हो।

j) संपार्श्विक संयुक्त परिवार- इस प्रकार के दो या दो से अधिक विवाहित जोड़ों में जिनके बीच एक भाई-बहन का बंधन होता है और जो भाई-बहन के रिश्ते और उनके अविवाहित बच्चों में भाई-बहन का रिश्ता हो सकता है।

k) पूरक संपार्श्विक संयुक्त परिवार- इस परिवार में संपार्श्विक संयुक्त परिवार और अविवाहित / विधवा / तलाकशुदा रिश्तेदार शामिल होते हैं।

l) रेखीय संयुक्त परिवार– जोड़े जिनके बीच में रेखीय सम्बन्ध (वर्टिकल) होता है। रेखीय सम्बन्ध आमतौर पर माता-पिता और विवाहित पुत्रों के बीच होता है। उदाहरण:- पिता, माता अपने विवाहित पुत्रों और पत्नियों के साथ रहते हैं।

m) अनुपूरक रेखीय संयुक्त परिवार- रेखीय संयुक्त परिवार के साथ-साथ अविवाहित / तलाकशुदा / विधवा रिश्तेदार जो रेखीय संबंध नहीं रखते थे। उदाहरण:- पिता, माता, उनके विवाहित पुत्र और पत्नी और पत्नी के अविवाहित भाई उनके साथ रहते हैं।

n) रेखीय संपार्श्विक संयुक्त परिवार- तीन या अधिक जोड़े रेखीय (पिता-विवाहित बेटे) और समवर्ती (उनकी पत्नियों के साथ विवाहित भाई) साथ में रहतें हैं। उदाहरण:- माता-पिता के साथ दो या अधिक विवाहित बेटे (या विवाहित भाई) और उनकी पत्नियां और उनके अविवाहित बच्चे।

o) पूरक वंशानुगत संपार्श्विक संयुक्त परिवार- इस प्रकार में, वंशीय संपार्श्विक संयुक्त परिवार के साथ अविवाहित/तलाकशुदा/पृथक/विधवा रिश्तेदार जो परिवार से संबंधित नहीं हैं रहतें हैं। उदाहरण:- माता-पिता दो या अधिक विवाहित भाइयों और उनके अविवाहित बच्चों के साथ-साथ पत्नी की बहन या अविवाहित भतीजे/भतीजी।

p) अन्य प्रकार- इस प्रकार में वे परिवार शामिल हैं जिन्हें एक शब्द के तहत वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है, परिवार के इस रूप में, विधवा भतीजे के साथ रहती है। उदाहरण:- विधवा बहन भाई के बेटे के परिवार के साथ रहती है।

2.3.8 परिवार की उत्पत्ति के सिद्धांत

परिवार एक सामाजिक संस्था है जिसे आदिम समाजों की बहुत शुरुआती रूप में जाना जाता है। इसका अर्थ है कि परिवार सदा से था केवल इसका स्वरूप अलग था। MacIver के अनुसार, "इतिहास में ऐसा कोई चरण नहीं था जिसमें परिवार जैसी सामाजिक संस्था अनुपस्थित थी"।

परिवार की उत्पत्ति के बारे में विवाद है लेकिन परिवार की उत्पत्ति के बारे में उद्विकास के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत निम्नलिखित हैं।

1. यौन साम्यवाद का सिद्धांत

2. पितृसत्तात्मक सिद्धांत

3. मातृसत्तात्मक सिद्धांत

4. एकविवाही (मोनोगैमी) का सिद्धांत

5. उद्विकासवादी सिद्धांत

6. बहुकारक सिद्धांत

2.3.8.1 यौन साम्यवाद का सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार, "प्राचीन समाजों में स्थायी यौन विनियमन पर कोई नियंत्रण नहीं था। कोई भी पुरुष या महिला अन्य पुरुष या महिला के साथ यौन संबंध स्थापित कर सकती / सकता था और यौन संबंध पर कोई प्रतिबंध नहीं था। एक महिला को आतिथ्य के संकेत के रूप में मेहमानों के लिए प्रस्तुत किया जाता था। मुक्त पुरुष और महिला के बीच के इस तरह के मुक्त यौन संबंध के चरण को यौन साम्यवाद कहा जाता है। इस प्रकार का परिवार मनुष्य की भावना या उसकी ईर्ष्या का उत्पाद था। जब अपनी पत्नियों की जरूरत महसूस हुई तब पारिवारिक जीवन शुरू हुआ था।

2.3.8.2 पितृसत्तात्मक परिवार का सिद्धांत

यह सिद्धांत प्लेटो और अरस्तू द्वारा दिया गया था और सर हेनरी मेन द्वारा विस्तृत किया गया था। इस सिद्धांत के अनुसार पुरुष का बच्चों और पत्नी पर प्रमुख अधिकार माना जाता था। रोम में आदमी को अपनी पत्नी और बेटों को मारने का अधिकार दिया गया था। तो, उस आदमी को परिवार का मुखिया कहा जाता था। इस सिद्धांत के अनुसार पहले परिवार की उत्पत्ति हुई जो पितृसत्तात्मक था। यह सिद्धांत दोषपूर्ण है क्योंकि अधिकांश अन्य प्राचीन समाजों में मां को अधिकार और नियंत्रण की शक्ति थी।

2.3.8.3 मातृसत्तात्मक परिवार का सिद्धांत

कुछ लोग परिवार की उत्पत्ति के मातृसत्तात्मक सिद्धांत का प्रतिनिधित्व करते हैं ब्रिफ़ोटिस के अनुसार प्राचीन समाजों में लोगों को पितृत्व के साथ बच्चे के संबंध के बारे में पता नहीं था। प्राचीन समाजों के लोग स्वतंत्र व्यवहार करते हैं एक दूसरे के साथ संभोग करते हैं, जो यह नहीं जानते थे कि पिता कौन है। निश्चित रूप से माँ को बच्चे को जन्म देने और उसके पालन-पोषण के लिए जाना जाता था। इस सिद्धांत से ऐसा लगता है कि परिवार की उत्पत्ति मातृसत्तात्मक थी, बाद में पिता के महत्व पर सभ्यता की प्रगति और कृषि के विकास के साथ वृद्धि हुई थी।

2.3.8.4 उद्विकासवादी सिद्धांत

अमेरिकी समाजशास्त्री मॉर्गन ने परिवार की उत्पत्ति के उद्विकासवादी सिद्धांत को सामने रखा है। उनके अनुसार उद्विकासवाद का यह सिद्धांत निम्न चरणों से गुजरा है।

1) **समरक्त परिवार:** इस प्रकार के परिवार में, रक्त संबंधीयों के बीच विवाह की मनाही नहीं थी।

2) **समूह परिवार:** इस प्रकार के परिवार में, एक परिवार के भाई दूसरे परिवार की बहनों के साथ विवाह कर सकते हैं, लेकिन इस तरह के यौन पर प्रतिबंध नहीं था। यौन संबंधों के नियम निर्धारित नहीं थे।

3) **सिण्डेस्मियन परिवार:** इस अवस्था में एक पुरुष एक समय में एक महिला के साथ शादी कर सकता है लेकिन परिवार में विवाहित महिला के यौन संबंधों को परिभाषित नहीं किया गया था।

4) **पितृसत्तात्मक परिवार:** इस प्रकार के परिवार में पुरुष की श्रेष्ठता थी, और वह एक समय में कई महिलाओं के साथ यौन संबंध रखता था।

5) **एक-विवाही परिवार:** यह परिवार प्रणाली का वर्तमान चरण है। इस प्रकार में एक पुरुष एक समय में एक महिला के साथ विवाह कर सकता है।

2.3.8.5 एकविवाही (मोनोगैमी) का सिद्धांत

यह सिद्धांत वेस्टनमार्क ने प्रस्तुत किया था जो उनकी पुस्तक "हिस्ट्री ऑफ ह्यूमन मैरिज" में है। यह डार्विन, जुकरमैन और मालिनोवस्की द्वारा समर्थित था। डार्विन के अनुसार परिवार एक पुरुष की आवश्यकता और एक महिला के मालिक होने की इच्छा से उत्पन्न हुआ। यह सिद्धांत व्यक्ति की स्वामित्व और ईर्ष्या की भावना पर आधारित है। मैन पॉवर और अधिकार के कारण, वह एक महिला को अपने पास रखना चाहता था और उसके साथ यौन संबंध बनाता था। बाद में इस प्रथा को आमतौर पर समाज द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

2.3.8.6 बहुकारक सिद्धांत

कई समाजशास्त्रियों/मानवविज्ञानियों का मानना है कि राल्फ लिंटन के अनुसार परिवार के विकास के लिए कई कारक जिम्मेदार हैं, "समाजों ने अपने उद्विकास के एक ही रेखा का पालन नहीं किया है अपितु यह उद्विकास बहुरेखीय रहा है। ऐसे बहुत से कारक हैं जो इसके उद्विकास को प्रभावित करते हैं"। इस तरह से यह सिद्धांत आधुनिक समाजशास्त्रियों/मानवविज्ञानियों के लिए स्वीकार्य है। MacIver के अनुसार, परिवार के मूल में कारक निम्नानुसार हैं।

1. यौन संबंध: यह परिवार की उत्पत्ति का मूल कारक है। परिवार के सदस्यों की संतुष्टि के लिए यौन आवश्यक है। यह प्रजनन के लिए आवश्यक है।

2. प्रजनन: परिवार का मुख्य प्रकार्य बच्चों के प्रजनन और उनके पालन-पोषण करना है। यह पुरुष और महिला के बीच बच्चे पैदा करने की इच्छा है।

3. आर्थिक संगठन: बुनियादी जरूरतों की पूर्ति में परिवार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पुरुष पत्नी और परिवार के सदस्यों की आवश्यकताओं के लिए अर्थव्यवस्था का स्रोत है ।

चर्चा से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि, परिवार के उद्विकास और उत्पत्ति का कोई विशिष्ट सिद्धांत नहीं है, लेकिन कई लोगों ने मूल के बारे में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। अब अगर हम देखें, तो बहु-कारक सिद्धांत सभी समाजशास्त्रियों द्वारा स्वीकार किया जाता है।

2.3.9 सारांश (Summary)

परिवार पर उपरोक्त चर्चा से हम संक्षेप में बता सकते हैं कि परिवार दो ऐसे लोगों को साथ लाने का एक तरीका है जो समाज द्वारा प्रशासित कार्यों को जारी रखने के लिए एक-दूसरे के साथ रहते हैं। सामाजिक संरचना के रूप में परिवार कब और कैसे आया, यह सवाल अभी भी बहस का विषय बना हुआ है। अन्य संस्थानों की तरह परिवार भी कई बदलावों से गुजरे हैं और हम पारंपरिक समाजों में परिवार प्रणाली में बहुत भिन्नताएँ देखते हैं। लेकिन वर्तमान युग में बहुपति, बहुपत्नी और संयुक्त परिवार व्यवस्था वाले अधिकांश पारंपरिक समाज नाभिक परिवारों में बदल रहे हैं। इस इकाई के अध्ययन उपरांत हमने ये समझा कि परिवार सार्वभौमिक प्राथमिक समूह है हालांकि इसकी कोई सार्वभौमिक परिभाषा नहीं है। परिवार का कोई विकल्प नहीं है। यह एक अद्वितीय सामाजिक संस्था है और इसके सामाजिक संगठन हैं। परिवार के बिना कोई भी समाज या सभ्यता मौजूद नहीं है। समाज एक सार है जो परिवार की नींव को दर्शाता है। दोनों, जैविक और सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों ने इस सार्वभौमिक समूह के गठन का कार्य किया है। परिवार और घरेलू समूहों के बीच अंतर करना मुश्किल है, क्योंकि दोनों की इकाइयां अर्थात आर्थिक इकाई, उपभोग इकाई, मनोवैज्ञानिक इकाई और सामाजिक-सांस्कृतिक इकाई एक समान है।

2.3.10 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. गैर-भ्रातृवादी बहुपति परिवार पाया जाता है-

(क) मिश्मी में, (ख) कोन्याक में, (ग) केरल के नयरों में, (घ) नागा में

2. पितृसत्तात्मक परिवार का सिद्धांत दिया-

(क) हेनरी मेन, (ख) ब्रीफाल्ट, (ग) मार्गन, (घ) मर्डाक

3. नाभिक परिवार का सर्वप्रथम उल्लेख किसने किया-

(क) टायलर, (ख) मार्गन, (ग) मर्डाक, (घ) हर्षकोविट

4. परिवार की उत्पत्ति के संबंध में उद्विकासवादी सिंद्धांत दिया-

(क) हेनरी मेन, (ख) ब्रीफाल्ट, (ग) मार्गन, (घ) मर्डाक

5. परिवार के उद्विकास में सिंडेसियन परिवार का उल्लेख किसने किया है-

(क) टायलर, (ख) मार्गन, (ग) मर्डाक (घ) हर्षकोविट

उत्तर- 1. केरल के नयरों में, 2. हेनरी मेन, 3. मर्डाक, 4. मार्गन, 5. मार्गन,

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

11. 'परिवार एक पार-सांस्कृतिक' अवधारणा की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

12. परिवार के प्रकारों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

13. परिवार के उत्पत्ति के यौन साम्यवाद एवं पितृ-सत्तात्मक सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

14. परिवार के मातृसत्तात्मक एवं एकविवाही सिद्धांत को स्पष्ट कीजिए।

15. परिवार आकार, एवं संरचना के आधार पार प्रकार की व्याख्या कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. परिवार को परिभाषित कीजिए।
2. परिवार के वर्गीकरण को स्पष्ट कीजिए।
3. समकालीन समाज में परिवार के बदलते आयामों पर चर्चा कीजिए।
4. परिवार के अध्ययन के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।
5. विवाह के आधार पर परिवार के प्रकार को स्पष्ट कीजिए।

2.3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Beck-Gernsheim, E. (2002). *Reinventing the family: In search of new lifestyles*. Malden, Mass.: Polity Press.
- Day, R. D. (2010). *Introduction to family processes* (5th ed.). New York: Routledge.
- Edwards, A. P., & Graham, E. E. (2009). The Relationship Between Individuals' Definitions of Family and Implicit Personal Theories of Communication. *Journal of Family Communication, 9*(4), 191-208. doi: 10.1080/15267430903070147
- Ferraro, Gary and Susan Andreatta. 2010. Cultural Anthropology: An Applied
- Perspective (eight edition). USA: Wadsworth Cengage Learning.
- Fox, Robin. 1967. Kinship and Marriage. Baltimore, Md.: Penguin.
- Jha, Makhan. 1945. An Introduction to Social Anthropology. New Delhi: Vikas
- Publishing House Pvt. Ltd.
- Julius, Gould & William L. Kolb. eds. 1964. A Dictionary of the Social Sciences.
- New York: The Free Press.
- Leeder, E. J. (2004). *The family in global perspective : a gendered journey*. Thousand Oaks, Calif. ; London: Sage Publications.
- Lindsay, J., & Dempsey, D. (2009). *Families, relationships and intimate life*. South Melbourne,: Oxford University Press.
- Mair, Lucy. 1997. An Introduction to Social Anthropology. Delhi: Oxford University Press.
- Steel, L., Kidd, W., & Brown, A. (2012). *The family* (2nd ed.). Houndmills, Basingstoke England: Palgrave MacMillan.
- Westermarck, Edward. 1922. The History of Human Marriage. The Allerton Book Company.

इकाई 4 नातेदारी: परिभाषा एवं प्रकार
(Kinship: Definition and Types)

इकाई की रूपरेखा

2.4.0 उद्देश्य
2.4.1 प्रस्तावना (Introduction)
2.4.2 नातेदारी अध्ययन का इतिहास (History of Kinship Study)
2.4.3 नातेदारी: अर्थ और परिभाषा (Kinship: Meaning and Definition)
2.4.4 नातेदारी शब्दावली (Kinship Terminology)
2.4.5 नातेदारी दृष्टिकोण (Kinship Approaches)
2.4.5.1 नातेदारी भूमिका की संरचना (Structure 0f Kinship Roles)
2.4.6 नातेदारी संबंध दर्शाने हेतु मानवशास्त्रीय चिन्ह (Anthropological Symbols for Kinship)
2.4.7 नातेदारी का उपयोग (Kinship Usages)
2.4.8 वंशानुक्रम के नियम (Rules 0f Descent)
2.4.9 मानवविज्ञान में नातेदारी अध्ययन की अद्वितीयता (Uniqueness Of Kinship In Anthropology)
2.4.10 सारांश (Summary)
2.4.11 बोध प्रश्न
2.4.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम होंगे-

- आप नातेदारी प्रणाली का इतिहास और संरचना को समझने में सक्षम होंगे।
- आप नातेदारी की प्रकृति और समाज के वंशावली के आधार को सीखेंगे।
- आप नातेदारी, नातेदारी शब्दावली, नातेदारी के विभिन्न उपयोग, वंश के नियम, आदि के बारे में जानेंगे।

इस इकाई का प्राथमिक उद्देश्य विद्यार्थियों को नातेदारी, उसकी उत्पत्ति के इतिहास और विषय के बारे में एक बुनियादी समझ देना है। अलग-अलग नातेदारी दृष्टिकोणों के बारे में एक पृष्ठभूमि प्रदान करने का भी प्रयास इस इकाई में किया गया है।

2.4.1 प्रस्तावना

वास्तव में शब्द "नातेदारी" का इस्तेमाल कई अर्थों में किया जाता है। स्थिति इतनी जटिल है कि इसका अध्ययन करने के लिए इसे सरल बनाना आवश्यक है। "नातेदारी संबंध" में कई संदर्भ हैं, जिन्हें विश्लेषणात्मक रूप से अलग रखा जाना चाहिए जैसे जैविक संदर्भ, व्यवहारिक संदर्भ और भाषाई संदर्भ हैं। शब्दकोश के अनुसार नातेदारी को रक्त द्वारा या विवाह द्वारा स्थापित रिश्तों के संबंध कहा जाता है। सभी संस्कृतियां विभिन्न श्रेणियों के परिजनों में भेद करती हैं, ये श्रेणियां अपने अधिकारों और दायित्वों के संबद्ध स्वरूप के साथ बनाती हैं, जिसे सामाजिक मानवविज्ञानी नातेदारी प्रणाली कहते हैं। कुछ समाजों में प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के रक्तसंबंधी या विवाह संबंधी होते हैं तथा उनका दैनिक जीवन इन्हीं लोगों के इर्द गिर्द ही घूमता है, बाकी सभी अधिकांश समाजों में एक व्यक्ति के रक्तसंबंधी या विवाह संबंधी कुछ व्यावहारिक उद्देश्यों तक ही सीमित होते हैं। लेकिन हर समाज में रक्तसंबंधी या विवाह संबंधी के कुछ रिश्ते सांस्कृतिक रूप से पहचाने जाते हैं। जैविक रूप से न केवल मनुष्य बल्कि सभी जानवरों के पास "नातेदारी" है। लेकिन महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि अन्य जानवरों के विपरीत, मानव सामाजिक संबंधों को परिभाषित करने के लिए जानबूझकर और स्पष्ट रूप से नातेदारी की श्रेणियों का उपयोग करता है।

2.4.2. नातेदारी अध्ययन का इतिहास

नातेदारी प्रणालियों का वैज्ञानिक अध्ययन केवल एक शताब्दी पुराना है, लेकिन उस संक्षिप्त अवधि में इसने मानव समाज के अधिकांश पहलुओं की तुलना में सैद्धांतिक रूपीकरण की एक महान विविधता प्रदान की है। प्रारंभिक अध्ययनों ने अधिकांशत: नातेदारी शब्दावली प्रणालियों पर ध्यान केंद्रित किया और समाज आधारित संकीर्णता और सामूहिक विवाह के पहले के चरणों के अस्तित्व के साक्ष्य के रूप में उपयोग किया। मानवविज्ञानी लुईस हेनरी मॉर्गन नातेदारी अध्ययन के संस्थापक थे। उन्होंने उत्तरी पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका में एक मूल अमेरिकी समूह Iroquois को देखा। वह ज्यादातर समाजों को एक साथ रखने में दिलचस्पी रखते थे। वह अपनी पुस्तक में विभिन्न प्रकार के नातेदारी प्रणालियों का वर्णन करने वाले पहले व्यक्ति थे, उनकी पुस्तक का नाम 'सिस्टम ऑफ़ कंसुआंगिटी एण्ड एफिनिटी ऑफ़ द ह्यूमन फ़ैमिली' है। अंग्रेजी विद्वान रेडक्लिफ ब्राउन ने तुलनात्मक पद्धति को शामिल करके नए दृष्टिकोण से नातेदारी का अध्ययन किया। इवांस प्रिचर्ड, ने नुअर के अपने अध्ययन के माध्यम से राजनीतिक संगठन में इसके महत्व को बताया। घाना के ताईएंसी के बीच "नातेदारी की गतिशीलता " के माध्यम से **फोरटेस** ने वंश समूहों पर चर्चा की। जी.पी. मुर्डोक की "सामाजिक संरचना" और लेवी-स्ट्रॉस की "नातेदारी की प्राथमिक संरचना" नातेदारी साहित्य में अन्य उत्कृष्ट कृति हैं।

2.4.3. नातेदारी: अर्थ और परिभाषा

नातेदारी एक सिद्धांत को संदर्भित करता है जिसके द्वारा व्यक्ति या व्यक्तियों के समूहों को नातेदारी शब्दावली के माध्यम से सामाजिक समूहों, भूमिकाओं, श्रेणियों और वंशावली में व्यवस्थित किया जाता है। नातेदारी रिश्ते को जोड़ने का तरीका है। किसी भी समाज में, प्रत्येक सामान्य वयस्क व्यक्ति अलग-अलग नाभिक परिवारों से संबंधित होता है। जिस परिवार में उसने जन्म लिया और उसका पालन-पोषण हुआ, उसे वार्नर ने "जन्ममूलक परिवार" कहा तथा दूसरा परिवार जिसमें वह विवाह के माध्यम से संबंध स्थापित करता है, उसे "प्रजननमूलक परिवार" कहा। दो नाभिक परिवारों में व्यक्तिगत सदस्यता का सार्वभौमिक तथ्य नातेदारी प्रणाली को जन्म देता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह अलग-अलग रिश्तों की एक प्रणाली है जहां व्यक्ति जटिल अंत: पाशो और शाखाओं द्वारा एक साथ बंधे होते हैं।

क्लाउड लेवी स्ट्रॉस के अनुसार, "नातेदारी और उससे संबंधित धारणाएं एक ही समय जैविक और सामाजिक संबंधों को (जिनमे दो वर्गों में हम नातेदारी को सीमित करते हैं) बाहरी और भितरी रूप से प्रदर्शित करती हैं "। आपके अनुसार, सदस्यों को नातेदारी प्रणाली में नातेदारी समूह में सदस्य बनाया जाता है, जैसे कि महिला को पत्नी और बहू के रूप में देखा जा सकता है, पुरुष को पति या दामाद के रूप में देखा जाता है।

एल.एच. मॉर्गन नातेदारी को परिभाषित करते हुये कहते हैं की, "नातेदारी, विवाह के रूपों और परिवार की बनावट में परिलक्षित होती है। मॉर्गन ने उन्हें Gens (Clans) कहा।

रेडक्लिफब्राउन (1952) इस बात पर सहमत हुए कि "नातेदारी शब्द अंतर्वैयक्तिक आचरणों या शिष्टाचार के दिशासूचक की तरह हैं, जिनमें पारस्परिक अधिकार, कर्तव्य, विशेषाधिकार और दायित्व निहितार्थ है। आपने नातेदारी प्रणाली के अध्ययन को अधिकारों और दायित्वों के क्षेत्र के रूप में नामित किया और इसे सामाजिक संरचना के एक हिस्से के रूप में देखा।

मैकलेनन इस बात से सहमत थे कि नातेदारी शर्तें केवल समाधान के रूप हैं और वास्तविक रक्त संबंधों से बिल्कुल संबंधित नहीं हैं।

बीट्टी (Beattie) के अनुसार, "नातेदारी वंशावली संबंधों का समुच्चय ना होकर सामाजिक संबंधों का समुच्चय है"। उनके अनुसार सामाजिक संबंध की पहचान और व्यवस्था नातेदारी प्रणाली का आधार है और लोगों के बीच अंतर भी प्रदान करता है।

इवांस-प्रिचार्ड के दक्षिणी सूडान (1951) के नुयर के अध्ययन ने पुरुष वंश समूहों पर आधारित नातेदारी समूहों पर ध्यान केंद्रित किया। मेयर फोर्ट्स की तरह, उन्होंने मुख्य रूप से नातेदारी प्रणाली में व्यक्तियों और समूहों के बीच पारस्परिक संबंधों पर जोर दिया। अंततः सुझाव देता है कि हमें समाज को समग्र रूप से देखना चाहिए जो यह पता लगाने में मदद करता है कि यह कैसे काम करता है।

रॉबिन फॉक्स (1967) लिखते हैं, "नातेदारी का अध्ययन वह (मनुष्य) क्या करता है और क्यों करता है तथा एक की बजाए दूसरे विकल्प को अपनाने के परिणामों का अध्ययन है"। फॉक्स आगे कहते हैं,

"नातेदारी का अध्ययन इस बात का अध्ययन है कि आदमी जीवन के इन बुनियादी तथ्यों जैसे कि संभोग, गर्भधारण, पितृत्व, समाजीकरण, भाई-बहन, आदि के साथ क्या करता है"।

नातेदारी के बारे में फॉक्स द्वारा उल्लिखित चार बुनियादी सिद्धांत इस प्रकार हैं:

1. महिलाएं ही बच्चे को जन्म दे सकती हैं।

2. पुरुष महिलाओं का गर्भाधान करते हैं।

3. पुरुष आमतौर पर नियंत्रण करते हैं।

4. प्राथमिक परिजन एक दूसरे के साथ संभोग नहीं करते हैं अर्थात अनाचार वर्जित है।

फॉक्स के अनुसार, नातेदारी को, 'किन्स', अर्थात् वास्तविक या काल्पनिक आधार से संबंधित व्यक्तियों के बीच संबंध के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। वास्तविक समरक्तता को परिभाषित करने में कठिनाई उत्पन्न होती है। इसे समाज के अनुसार वास्तविक या कथित रक्त संबंधों से संबंधित व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। लेकिन, आनुवंशिक रूप से, यह ऐसा प्रतीत नहीं होता है।

ऐसे कई मामले हैं जहां इस परिभाषा को नकारा जा सकता है। उदाहरण के लिए, गोद लेने के मामले में, एक बच्चे को समरक्त माना जा सकता है। एक महिला शादी के बाद विवाह-सम्बन्ध से अपने बच्चे के जन्म लेते समरक्त संबंध में बंध जाती है। इस प्रकार, नातेदारी श्रेणियां, आर्थिक श्रेणियां की तुलना में अधिक सामाजिक हैं। सामाजिक व्यवस्था कई अलग-अलग तरीकों से होती है। इसे सामाजिक रिश्तों के पक्ष में लागू किया जा सकता है अर्थात् उनके सामाजिक व्यवहार और अपेक्षाओं, विश्वासों और मूल्यों के विशेष स्वरूप है। साथ ही, यह आर्थिक सहयोग, घरेलू सहयोग, अनुष्ठान या आर्थिक प्रकृति के अधिकार और समन्वय के आधार पर व्यक्त किया जा सकता है।

भारतीय गांवों में नातेदारी जाति, उप-जातियों, कबीलों और यहां तक कि वंशावली के पत्राचार में 'गुट' (Faction) शब्द से मिलती-जुलती है। यह उत्तराधिकार, संपत्ति का उत्तराधिकार, द्विभाजन, उनकी तकनीकी और औद्योगिक नियुक्तियों के स्तर पर दिखाता है।

इसलिए, किसी भी समाज की नातेदारी प्रणाली को समझने के लिए, हमें लोगों की भाषा, व्यवहार और मूल्यों को जानना चाहिए। मालिनोवस्की (1954) के अनुसार, नातेदारी प्रणाली को एक जटिल और विस्तृत रूप में संदर्भित किया जा सकता है; और उन्होंने इसे 'Kinship Algebra' के रूप में संदर्भित किया।

2.4.4 नातेदारी शब्दावली

I. **मर्डोक (1949)** नातेदारी शब्दावली और नातेदारी व्यवहार के बीच के अंतर्संबंध का विश्लेषण करते हुए; दो श्रेणियां प्रदान करता है

सम्बोधन की शब्दावली (रिश्तेदारों के बीच सांस्कृतिक रूप से संबंध का एक अभिन्न अंग)	संदर्भ की शब्दावली (भाषाई प्रणाली जिसमे दो प्रस्थितियों में से एक को दर्शाती है)

दोनों के बीच अंतर है क्योंकि एकल विशिष्ट शब्दों का उपयोग अलग रिश्तेदारों के लिए अलग है। उदाहरण के लिए, कुछ समाज में पिता की सभी पत्नियों को 'माँ' कहते हैं। इसके अलावा, 'अंकल' और 'आंटी' हमें उचित संबंध नहीं प्रदान करते हैं।

लुसी मेयर की शब्दावली (1984)

Kinderd: वंशावली रूप से आम दायित्वों वाले लोग किस प्रकार "ईगो" से जुड़ते हैं।

Cognates: किसी व्यक्ति द्वारा रक्त से संबंधित लोग।

Affines: विवाह के माध्यम से एक व्यक्ति से संबंधित व्यक्ति।

कॉर्पोरेट सकल: निरंतर संपत्ति रखने वाले पारिवारिक सदस्यों का समूहों जो पितृवंशीय या मातृवंशीय हो सकता है।

Lineage: कॉरपोरेट समूह वंश द्वारा सदस्य बनाया हुआ।

Lateral: यह वंशावली में नातेदारी की 'पार्श्व' रेखा को दर्शाता है।

Lineal: यह वंशावली में नातेदारी की 'लम्बवत' रेखा को दर्शाता है।

2.4.5. नातेदारी दृष्टिकोण

नातेदारी प्रणाली पर एक व्यापक दृष्टिकोण प्राप्त करने के लिए, दो प्रकार के दृष्टिकोणों की आवश्यकता होती है। सबसे पहले, किसी को नातेदारी भूमिकाओं की संरचना को चित्रित करना होगा। दूसरी बात, उसे संरचना की कार्यात्मक उपयोगिता को जानने के लिए प्रत्येक संरचना और भूमिका से जुड़े व्यवहार का पता लगाना होगा।

2.4.5.1 नातेदारी भूमिका की संरचना

नातेदारी का बंधन लोगों की एक बड़ी श्रृंखला को गले लगाता है जिसके लिए संबंधित व्यक्तियों का एक पूरा समूह एक इकाई के रूप में जुड़ा रहता है। हालांकि यह एक सामाजिक समूह नहीं है, लेकिन समूह के साथ-साथ संस्था के चरित्र को दर्शाता है। नातेदारी भूमिकाओं की संरचना से न केवल रिश्ते के प्रकार, बल्कि समाज में विशिष्ट नातेदारी की शब्दावली भी पता चलती हैं। रिश्तों के प्रकारों के अनुसार, परिजनों को मुख्य रूप से दो समूहों में विभाजित किया जाता है। वास्तविक परिजन और कृत्रिम परिजन, कृत्रिम परिजन शब्द को परिजनों और सामाजिक परिजनों पर लागू किया जाता है, यानी, जिन रिश्तेदारों को औपचारिक सामाजिक संबंधों के परिणामस्वरूप औपचारिक रूप से स्थापित और गठित किया गया है। दूसरी ओर वास्तविक परिजन रक्त संबंध या विवाह के माध्यम से बने सुव्यवस्थित संबंध हैं। उनके बीच रक्त संबंध रखने वाले परिजनों को रक्तसंबंधी कहा जाता है। लेकिन जिन परिजनों के संबंध विवाह के कारण विकसित होते हैं उन्हें विवाह संबंधी कहा जाता है। उदाहरण के लिए, एक परिवार में पति-पत्नी के बीच संबंध, विवाह संबंधी

नातेदारी के तहत आते हैं, जहां माता-पिता और बच्चे के बीच संबंध को रक्तसंबंधी नातेदारी के तहत चिह्नित किया जा सकता है। एक दत्तक बच्चे को एक जैविक रूप से जन्मी संतान के रूप में माना जाता है। इसलिए इसे रक्तसंबंधी के रूप में भी माना जाता है। नातेदारी आम तौर पर एक 'ईगो' से पता लगाया जाता है। 'ईगो' से संबंध रखने वाले सभी व्यक्तियों को नातेदारी की स्थिति के रूप में परिभाषित किया गया है। एक पिता अपने बच्चों के लिए एक प्राथमिक संरक्षक के रूप में खड़ा होता है और माँ पिता के लिए प्राथमिक संपन्न परिजन होती है। जब कोई व्यक्ति प्राथमिक परिजनों के माध्यम से 'ईगो' से संबंधित होता है, तो उसे द्वितीयक परिजन कहा जाता है। पिता के पिता, पिता की बहन, माँ की माँ, पत्नी की माँ, भाई की पत्नी, बहन के बेटे आदि, 'ईगो' के लिए सबसे बड़े परिजन हैं। माध्यमिक परिजनों को उनकी प्रकृति के आधार पर द्वितीयक संगणनीय परिजन और माध्यमिक परिजनों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इसी तरह, माध्यमिक परिजनों के प्राथमिक रिश्तेदार 'ईगो' के तृतीयक परिजन हैं। उदाहरण के लिए, पिता की बहन की पति, पत्नी के भाई का बेटा, बेटी के पति की बहन आदि, तृतीयक परिजनों के समूह से संबंधित है। तृतीयक नातेदार से अधिक दूरस्थ संबंध दूर के परिजनों के रूप में निर्दिष्ट हैं। दोनों रक्तसंबंधी और विवाह संबंधी रिश्तेदारों को समीपता के अंश को देखते हुए प्राथमिक परिजनों, माध्यमिक परिजनों, तृतीयक परिजनों और दूर के परिजनों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

2.4.6 नातेदारी संबंध दर्शाने हेतु मानवशास्त्रीय चिन्ह

नातेदारी के अध्ययन में 'ईगो' एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 'ईगो' प्रतिवादी है जिसके माध्यम से एक नातेदारी का पता लगाया जाता है। उदाहरण के लिए यह पुरुष या महिला हो सकता है यदि 'ईगो' किसी व्यक्ति (A) का बेटा है (B) तो इस मामले में सभी संबंधों को (C) के माध्यम से पता लगाया जाएगा। बेहतर समझ के लिए कृपया नीचे दिए गए चिन्हों को देखें और 'ईगो' (C) परिवार वंशावली को भी देखें

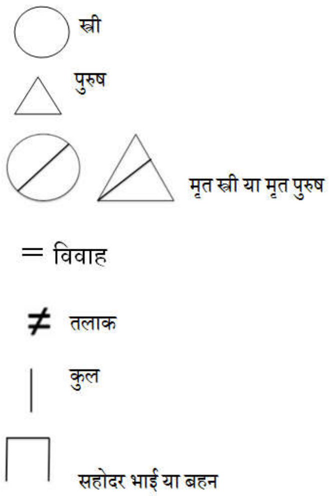
स्त्री
पुरुष
मृत स्त्री या मृत पुरुष
= विवाह
≠ तलाक
कुल
सहोदर भाई या बहन

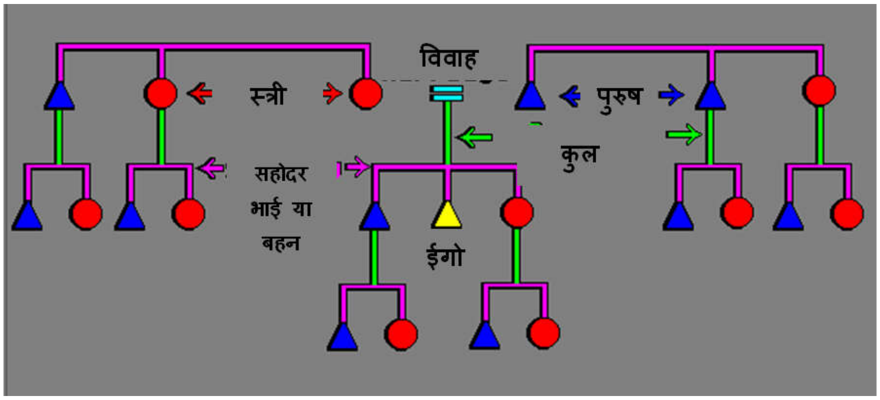
विवाह
स्त्री
पुरुष
कुल
सहोदर
भाई या
बहन
ईगो

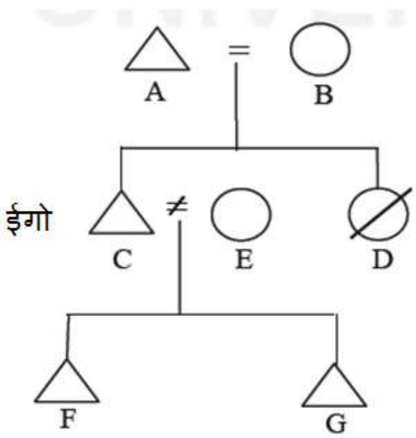
A
B
ईगो
C
E
D
F
G

जैसा कि ऊपर चित्र में बताया गया है कि ईगो C है। यह देखें कि अगर हम ईगो से शुरू करते हैं तो इस स्थिति में कैसे संबंधों का पता लगाया जाएगा। ईगो A का बेटा है और B उसकी मां है जबकि D उसकी मृत बहन है। E, ईगो की तलाकशुदा पत्नी है, और F और D उसके दो पुत्र हैं।

2.4.7 नातेदारी शब्दावली

नातेदारी शब्द सम्बोधन के शब्द हैं, जो विभिन्न प्रकार के रिश्तेदारों को नामित करने के लिए एक समाज के रिश्तेदारों के बीच उपयोग की जाती हैं। व्यक्तिगत नाम तो होते ही हैं लेकिन सभी समाज रिश्तेदारों के बीच कुछ विशिष्ट नातेदारी शब्द का उपयोग करते हैं, जो बड़े पैमाने पर उपयोग किए जाते हैं। एक मध्यवर्ती रूप व्यक्तिगत नाम और नातेदारी शब्द के बीच भी पाया जाता है। इसे टेक्नोमनी कहा जाता है। उदाहरण के लिए, एक बेटे या बेटी वाले व्यक्ति को अक्सर "रामू/सीता के पिता (बच्चे का नाम)" या रामू/सीता की माँ (बच्चे का नाम) कहा जाता है। यह पैतृक शब्द और बच्चे के नाम का संयोजन है। व्यक्तिगत नाम या विशेष नातेदारी शब्द का संदर्भ देने के बजाय। ऐसे शब्द बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे कभी-कभी सामाजिक घटनाओं को दर्शाते हैं। नातेदारी नामकरण का अध्ययन अभी भी समाज अध्ययन का एक महत्वपूर्ण तरीका है, जो दुनिया के विभिन्न हिस्सों से नातेदारी की शर्तों को पूरा करने के बाद मॉर्गन द्वारा पहली बार किया गया था। उन्होंने नातेदारी शब्द को 2 प्रमुख प्रभागों में विभाजित किया और उन्हें वर्गीकृत नातेदारी प्रणाली और वर्णनात्मक नातेदारी प्रणाली के रूप में नामित किया।

• **वर्गीकृत नातेदारी प्रणाली:** शास्त्रीय प्रणाली में सभी रिश्तेदारों को एक सख्त तर्क के बाद श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया था। सभी को एक ही पदनाम द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है जैसे पिता के पीढ़ी के सभी पुरुषों को अंकल कहना।

• **वर्णनात्मक नातेदारी प्रणाली:** वर्णनात्मक प्रणाली में, प्रत्येक परिजन के लिए एक अलग शब्द होता है, जिसमें प्रत्येक ऐसे शब्द में परिजनों के साथ ईगो के सटीक संबंध का वर्णन किया जाता है जैसे पिता के छोटे भाई को चाचा और बड़े भाई को ताऊ कहना।

हकीकत में, "शास्त्रीय" और "वर्णनात्मक" शब्द केवल नातेदारी के शब्दों को संदर्भित करते हैं, शब्दावली की पूरी प्रणाली को नहीं। जी.पी. मर्डोक ने वैश्विक आधार पर शब्दावली की छह प्रमुख प्रणालियों की पहचान की थी। वे इस प्रकार हैं:

1. **ओमाहा-** समानांतर चचेरे भाई को ’भाई’ या ’बहन’ कहा जाता है। माँ के भाई के बच्चों को ‘माँ’ या ‘अंकल’ कहा जाता है। पिता की बहन के बच्चों को ‘भतीजा’ या ‘भतीजी’ कहा जाता है।

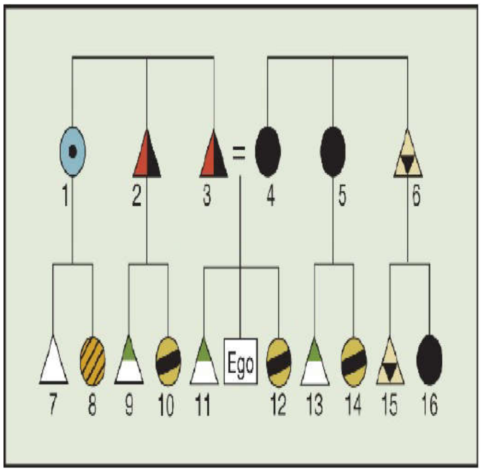

*

2. **क्रो** – पिता के भाई के बच्चे य माँ की बहन के बच्चे को ’भाई’ या ’बहन’ कहा जाता है। माँ के भाई के बच्चे को ‘बेटा’ या ’बेटी कहा जाता है। पिता की बहन के बच्चों को ‘पिता’ या ‘आंटी’ कहा जाता है।

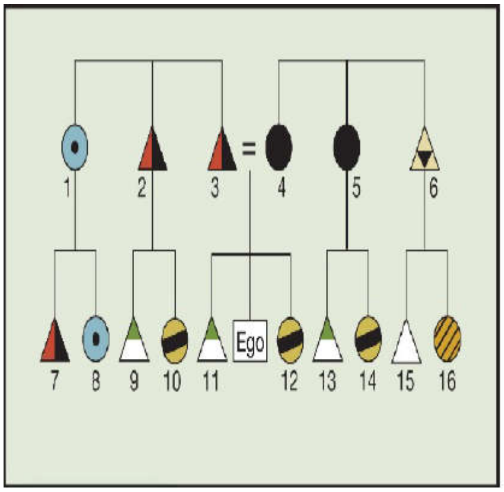

*

3. **हवाईन-** सभी चचेरे भाई ‘भाई ’या’ बहन कहलाते हैं।

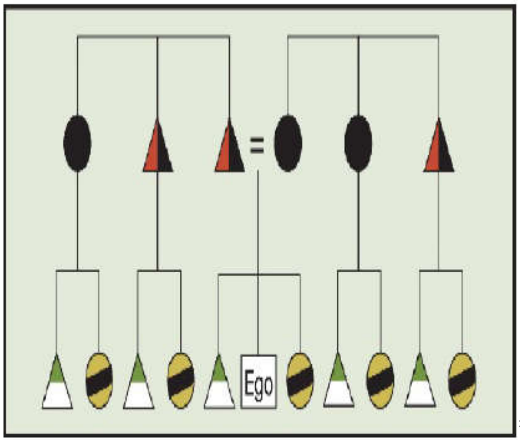

*

3. इरोक्युस- पिता के भाई के बच्चे या माँ की बहन के बच्चे को 'भाई' या 'बहन' कहा जाता है। माँ के भाई के या पिता की बहन के बच्चे को 'Cousins' कहा जाता है।

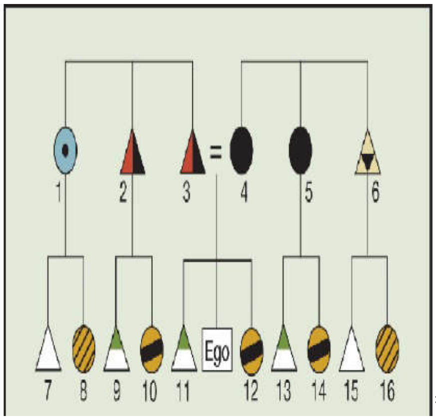

*

5. एस्किमो- सभी 'Cousins' को 'Cousins' कहा जाता है चाहे वो बुआ, चाचा, मामा या मौसी के बच्चे हों।

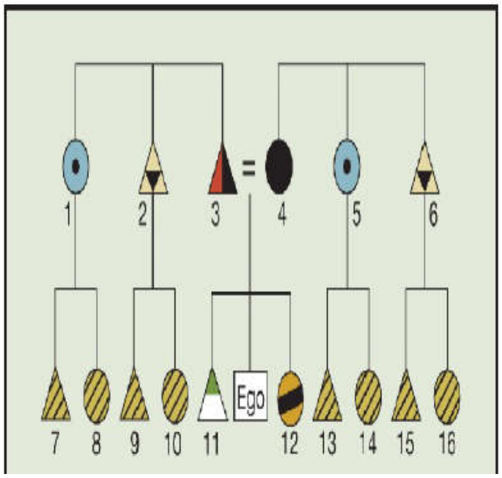

*

6. सूडानी- मातृ और पैतृक समानांतर 'Cousins' (अर्थात पिता के भाई के बच्चे या माँ की बहन के बच्चे) अलग-अलग शब्दों से बुलाए जाते हैं, इसी प्रकार Cross 'Cousins' (अर्थात माँ के भाई के या पिता की बहन के बच्चे) को अलग-अलग शब्दों से बुलाया जाता है।

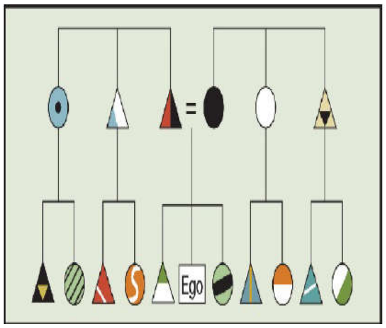

*

* इन चित्रों में सामान रंग और डिजाईन वाले व्यक्तियों के लिए समान नातेदारी शब्द का उपयोग किया जाता है। यह सभी चित्र Ember & Ember (2015) की Cultural Anthropology पुस्तक से लिए गए हैं।

मर्डोक ने नातेदारी के अपने विस्तृत विश्लेषण में नातेदारी शब्दावली को समझने के लिए एक विस्तृत योजना प्रस्तुत की है। उनके अनुसार नातेदारी की शर्तों को तकनीकी रूप से 3 अलग-अलग तरीकों से वर्गीकृत किया गया है:

1) उपयोग के चलन से; नातेदारी के शब्दों का उपयोग के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ शब्द प्रत्यक्ष संबोधन के लिए हैं और अन्य अप्रत्यक्ष संदर्भ के लिए हैं। एक "संबोधन शब्द" का उपयोग एक रिश्तेदार को पुकारने के लिए किया जाता है, जहां "संदर्भ के शब्द" का उपयोग किसी तीसरे व्यक्ति के बारे में बोलने के लिए एक रिश्तेदार को नामित करने के लिए किया जाता है।

2) भाषाई संरचना द्वारा; जब भाषाई संरचना के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है, तो नातेदारी शब्द प्राथमिक, व्युत्पन्न और वर्णनात्मक के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। एक प्राथमिक शब्द हिन्दी में "पिता" "भतीजा" जैसा एक अप्रासंगिक शब्द है, जिसे नातेदारी अर्थ वाले घटकों में विश्लेषण नहीं किया जा सकता है। इसलिए "प्रारंभिक शब्द" कहा जाता है एक व्युत्पन्न शब्द वह है जो एक विशिष्ट रिश्तेदार को निरूपित करने के लिए दो या अधिक प्राथमिक शब्दों को जोड़ता है। व्युत्पन्न शब्द दादा, पिता-जैसे, सौतेली बेटी, आदि की तरह है।

3) अनुप्रयोग की सीमा; यहां नातेदारी शब्द को दो समूहों में विभेदित किया जाता है- वाधक शब्द और शास्त्रीय शब्द। पीढ़ी, लिंग और वंशावली संबंध द्वारा परिभाषित एकल नातेदारी श्रेणी के रिश्तेदारों के लिए अनुप्रयोग किए गए शब्दों को वाधक शब्द कहते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी शब्द, भाई, बहन, बेटी, दामाद आदि, एक ही पदनाम के साथ कई व्यक्तियों को दर्शाते हैं। इसके विपरीत, शास्त्रीय शब्द वह शब्द है जो दो या दो से अधिक नातेदारी श्रेणियों के व्यक्तियों पर लागू होता है। उदाहरण के लिए, अँग्रेजी में Grandmother, माँ की माँ और पिता की माँ दोनों

के लिए है, Uncle माता-पिता में से किसी का भाई हो सकता है या पिता की बहन या माँ की बहन का पति हो सकता है।

2.4.7 नातेदारी का उपयोग

नातेदारी का अध्ययन केवल उनके वर्गीकरण या सामान्य व्यवहार के नातेदारी के आधार या रिश्तेदारों के विवरण के साथ ही सीमित नहीं है। कुछ विशेष नातेदारी उपयोग हैं, जो गैर-साक्षर समाजों के संबंध में विशेष महत्व रखते हैं।

• मातुलेय (Avanculate)

यह माँ के भाई और उसकी बहन के बच्चों के बीच पाया जाने वाला एक अनूठा उपयोग है। कुछ मातृसत्तात्मक समाजों में, मामा, पिता के रूप में कई कर्तव्यों को स्वीकार निभाता है। उसका भतीजा और भतीजी उसके अधिकार में रहते हैं। उन्हें मामा की संपत्ति भी विरासत में मिलती। मेलानेशिया के ट्रोब्रिएण्ड आइलैंडर्स, फिजियन, अफ्रीकी जनजाति और दक्षिण भारत के नायर के बीच ऐसा संबंध मौजूद है।

• पितृशवश्रेय (Amitate)

इस तरह का उपयोग कमोबेश पितृसत्तात्मक लोगों के बीच मिलते हैं। यहाँ, पिता की बहन को बहुत सम्मान और प्रमुख महत्व मिलता है। वह अपने भतीजे के लिए माँ से अधिक है और जीवन की कई घटनाओं में उस पर अपना अधिकार जताती है। वास्तव में, यह एक सामाजिक तंत्र है, जो पिता की बहनों को उपेक्षा में पड़ने से बचाता है, खासकर उन परिस्थितियों में जब वे अपने ससुराल से बाहर कर दी जाती हैं। पोलिनेशियन टोंगा, दक्षिण भारत के टोडा आदि, समुदाय इस प्रकार के नातेदारी उपयोग को प्रदर्शित करते हैं।

• सहप्रसविता (Couvade)

पति और उनकी पत्नी के बीच नातेदारी का एक और अजीब उपयोग है। भारत के टोडा और खासी समुदाय को उदाहरण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है। जब भी उसकी पत्नी गर्भ धारण करती है, तो पति को उसी प्रकार का जीवन जीना पड़ता है। उसे एक सीमित आहार खाना पड़ता है और पत्नी के साथ कई वर्जनाओं का पालन करना है। मानवविज्ञानी बच्चे पर पितृत्व को स्थापित करने के प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व के रूप में इस नातेदारी उपयोग को मानते हैं। कुछ साल पहले तक, यह विशेष उपयोग दक्षिण भारत के नायर्स, जापान के ऐनस और चीन के कुछ समुदायों के बीच लोकप्रिय था

• परिहार

अधिकांश समाजों में, परिहार का निषेध एक अनाचार निषेध के रूप में कार्य करता है। एक ससुर पारंपरिक सामाजिक आदर्श के अनुसार अपनी बहू से बचता है। इसी प्रकार का समान संबंध सास-दामाद के

बीच और पति के बड़े भाई और छोटे भाई की पत्नी के बीच रहता है। यह वास्तव में करीबी रिश्तेदारों के बीच अनाचार यौन संबंध के खिलाफ एक सुरक्षात्मक उपाय है जो हर दिन संपर्क में आमने-सामने रहते हैं।

• परिहास

यह "परिहार" के विपरीत नातेदारी के उपयोग का सिर्फ विपरीत प्रकार है। यह विशेष विशेषाधिकार प्राप्त संबंध विभिन्न प्रकार के चुटकुलों सहित एक-दूसरे के परीक्षण में लिप्त है, जिसमें अश्लील यौन चुटकुले भी शामिल हैं। आमतौर पर ऐसे रिश्ते एक आदमी और उसकी पत्नी की छोटी बहनों के बीच या एक महिला और उसके पति के छोटे भाइयों के बीच, दादा दादी और पोती/पोतों के बीच मौजूद होते हैं। मजाकिया रिश्ते आदिवासी के साथ-साथ हिंदू समाज में भी पाए जाते हैं। मानवविज्ञानी समाज में नातेदारी की शब्दों को अत्यंत प्रकार्यात्मक के साथ-साथ परिवर्तन के लिए प्रतिरोधी मानते हैं। ये शब्द न केवल रिश्तेदारों को अलग करते हैं बल्कि परिवारों के रूप, निवास के नियमों, वंश के नियमों और एक सामाजिक प्रणाली की कई अन्य महत्वपूर्ण विशेषताओं को भी इंगित करते हैं।

2.4.8 वंशानुक्रम के नियम

लगभग सभी समाजों में नातेदारी बहुत महत्वपूर्ण हैं। एक व्यक्ति हमेशा अपने रिश्तेदारों के प्रति कुछ दायित्वों का पालन करता है और वह अपने रिश्तेदारों से भी यही उम्मीद करता है। नियम, जो प्रत्येक व्यक्ति को परिजनों के एक विशेष और निश्चित समुच्चय से संबद्ध करते हैं, वंशानुक्रम के नियम कहलाते हैं। इस तरह के नियम समाज से समाज में भिन्न होते हैं। उत्तराधिकार, वंशानुक्रम के इस नियम से संबंधित है। शब्द "उत्तराधिकार" अधिकारों के प्रसारण को दर्शाता है और शब्द "विरासत" पैतृक संपत्ति पर अधिकार को दर्शाता है। आमतौर पर दोनों अधिकार हाथ से चले जाते हैं। हालाँकि, वंश के संबंध में पहचाने जाने वाले तीन नियम इस प्रकार हैं:

एकवंशीय वंशानुक्रम: वह सिद्धांत जिससे वंश को या तो मातृ या पितृ रेखा के माध्यम से खोजा जाता है।

पितृवंशीय वंशानुक्रम: इस प्रकार में, पुरुषों को एक श्रृंखला के माध्यम से पूर्वजों से वंशानुक्रम नीचे आते हैं। उदाहरण के लिए- पूर्वज के पुत्र, उसके पुत्र, उसके पुत्र के पुत्र, उसके पुत्र के पुत्र के पुत्र के माध्यम से। पुरुष स्थिति, शक्ति और संपत्ति पर हावी है। पूर्व और दक्षिण एशिया और मध्य पूर्व में पाया जाता है।

मातृवंशीय वंशानुक्रम: इस प्रकार में, महिलाओं को एक श्रृंखला के माध्यम से पूर्वजों से वंशानुक्रम नीचे आते हैं। उदाहरण के लिए- पूर्वज की बेटी के माध्यम से, बेटी की बेटी से, बेटी की बेटी तक। महिला स्थिति, शक्ति और संपत्ति पर हावी है।

द्वि-वंशानुक्रम: एक ऐसी प्रणाली जिससे सामाजिक समूहों या श्रेणियों के दो समुच्चय मौजूद हैं (विभिन्न उद्देश्यों के लिए) एक ही समाज में, एक पितृसत्तात्मक वंश पर आधारित है और दूसरा मातृसत्तात्मक वंश पर। उदाहरण के लिए- नाइजीरिया के याको के बीच।

संज्ञानात्मक वंशानुक्रम: वंशानुक्रम की एक श्रृंखला जिसमें पुरुष या महिला पूर्वज या दोनों में से किसी से भी संयोजन हो सकता है।

द्विपक्षीय वंशानुक्रम: वह सिद्धांत जिससे वंशानुक्रम पुरुष (यानी, पिता) और महिला (यानी, माँ) दोनों से होता है ।

एंबीलिनल डिसेंट: वह सिद्धांत जिससे वंशानुक्रम बिना क्रम से पुरुष या महिला के माध्यम से प्रतिध्वनित होता है।

2.4.9 मानवविज्ञान में नातेदारी अध्ययन की अद्वितीयता

नृविज्ञान में, नातेदारी सामाजिक रिश्तों का एक जाल है जो अधिकांश समाजों में अधिकांश मनुष्यों के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, हालांकि इस अनुशासन के भीतर भी इसके सटीक अर्थों पर अक्सर बहस होती है। मानवविज्ञानी रॉबिन फॉक्स का कहना है कि "नातेदारी का अध्ययन इस बात का अध्ययन है कि मनुष्य जीवन के इन बुनियादी तथ्यों जैसे- संभोग, गर्भधारण, पितृत्व, समाजीकरण, सहोदर के साथ क्या करता है। मानव समाज अद्वितीय है, मानव तर्कशील है, जानवरों की दुनिया के सामान ही मानव के पास भी वही संसाधन उपलब्ध हैं जो जानवरों के पास भी है, लेकिन (हम) सामाजिक ज़रूरतों के लिए इसको श्रेणीबद्ध कर सकते हैं। इन सामाजिक ज़रूरतों में बच्चों के समाजीकरण और बुनियादी आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक समूहों का गठन शामिल है। मानवविज्ञानी, क्योंकि इसमें राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक पहलू भी हैं नातेदारी के रिश्ते के कर्ता को समाज के कामकाज में उनकी अंतर्दृष्टि के रूप में देखा जा सकता है। वे एक मॉडल और गतिशीलता और संबंधों की व्याख्या करते हैं। किसी दिए गए समाज में यह प्रत्येक सामाजिक इकाई के कार्यों को परिभाषित करता है। इसके अलावा इसकी सामाजिकता विभिन्न सामाजिक वातावरण में इसकी संरचना का पता लगाने के लिए रुचि रखती है। एक समाज की संरचना व्यक्ति को कई सिद्धांतों के अनुसार श्रेणियों या स्थिति में बाँटती है और सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत नातेदारी है। जैसा कि नेल्सन और ग्रबनर ने किंशिप और सामाजिक संरचना की रीडिंग बुक में उल्लेख किया है कि समाज के अध्ययन में नातेदारी का महत्व नीचे दिया गया है।

- नातेदारी प्रणालियां सार्वभौमिक हैं।
- सभी मानव समाजों की संरचना में अलग-अलग अंशों के माध्यम से नातेदारी प्रणाली हमेशा महत्वपूर्ण होती है।
- अधिकांश समाजों में पारंपरिक रूप से मानवविज्ञानी, नातेदारी का अध्ययन करने वाले प्रमुख सिद्धांतों को व्यवस्थित करता है।
- नातेदारी प्रणाली अपेक्षाकृत सरल विश्लेषण करने में सहायता प्रदान करती हैं।

2.4.10 सारांश

नातेदारी प्रणालियों के वैज्ञानिक अध्ययन केवल एक सदी पुराना है, लेकिन उस संक्षिप्त अवधि में इसने विवाद और सैद्धांतिक सूत्रीकरण से मानव समाज के ज्यादातर पहलुओं की एक महान विविधता को प्रदर्शित किया है। प्रारंभिक अध्ययन के अधिकांश भाग में पारिभाषिक प्रणाली पर ध्यान केंद्रित किया गया और उसके बाद ऐतिहासिक संबंधों के लिए या समाजिक संबंधों के लिए या शादी के प्रकार के नियम को समझने के लिए उपयोग किया गया। यद्यपि यह एक सामाजिक समूह नहीं है, लेकिन एक साथ समूहों के चरित्र के साथ ही संस्था को दर्शाता है। नातेदारी न केवल भूमिकाओं की संरचना, संबंधों के प्रकार बताती है बल्कि यह समाज में विशिष्ट नातेदारी शब्दों के बारे में भी बताती है। नृविज्ञान में, नातेदारी सामाजिक रिश्तों का जाल है जो अधिकांश समाजों में अधिकांश मनुष्यों के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, हालांकि इस अनुशासन के भीतर भी इसके सटीक अर्थों पर अक्सर बहस होती है। किसी दिए गए समाज में यह प्रत्येक सामाजिक इकाई के कार्यों को परिभाषित करता है। इसके अलावा इसकी सर्वव्यापीता विभिन्न सामाजिक वातावरण में संरचना के अपने विचरण का पता लगाने के लिए रुचि रखती है। एक समाज की संरचना व्यक्ति को कई सिद्धांतों के अनुसार श्रेणियों या स्थिति में रखती है और सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत नातेदारी है।

2.4.11 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. नातेदारी के अध्ययन के इतिहास की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. नातेदारी के अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट कीजिए।
3. नातेदारी की शब्दावली एवं दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।
4. मानवविज्ञान में नातेदारी की उपयोगिता को स्पष्ट कीजिए।
5. वंशानुक्रम के नियम को स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नातेदारी को स्पष्ट कीजिए।
2. नातेदारी और वंशानुक्रम के बीच क्या संबंध है? उदाहरण के साथ स्पष्ट कीजिए।
3. मातृसत्तात्मक वंश क्या है?
4. पितृसत्तात्मक वंश का उदाहरण दीजिए।
5. मॉर्गन के वर्गीकृत और वर्णनात्मक नातेदारी शब्दावली पर चर्चा करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. हेनरी मार्गन द्वारा इराक्विस जनजाति का अध्ययन किया गया यह जनजाति किस देश में पायी जाती है-
   (क) भारत (ख) स. राज्य अमेरिका (ग) द. अफ्रीका (घ) आस्ट्रिया
2. नातेदारी प्रणाली को वर्गीकृत नातेदारी प्रणाली एवं वर्णनात्मक नातेदारी प्रणाली में वर्गीकृत किया-
   (क) ब्रिफ़ाल्ट (ख) हेनरी मेन (ग) मार्गन (घ) टायलर
3. देवर-भाभी के बीच संबंध को किस प्रकार का संबंध कहा जाता है-
   (क) परिहास (ख) परिहार (ग) परिहास एवं परिहार दोनों (घ) सहप्रसविता
4. मातुलेय व्यवस्था में बच्चा किसकी संपत्ति का उत्तराधिकारी बनाता है-
   (क) पिता (ख) बुआ (ग) बहन (घ) मामा
5. वंशावली चित्र में पुरुष के लिए किस चिन्ह का उपयोग किया जाता है-
   (क) △ (ख) ○ (ग) = (घ) ▭

उत्तर- 1. स. राज्य अमेरिका, 2. मार्गन, 3. परिहास, 4. मामा, 5. △

2.4.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Barnes, J. A. 1961. 'Physical And Social Kinship'. *Philosophy Of Science.* **28** (3): 296–299
- Encyclopaedia Britannica At Http://Www.Britannica.Com/ Accessed On 29th January,
  2018.
- Evans-Pritchard, E. E. 1951. *Kinship And Marriage Among The Nuer*. Oxford: Clarendon Press.
- Forde, Daryll. 1967. 'Double Descent Among The Yako'. In *African Systems Of Kinship And Marriage*. A. R. Radcliffe-Brown And Daryll Fordes, Eds., London: Oxford University Press.
- Fox , R. 1996. *Kinship And Marriage*. Cambridge: Cambridge University Press [Penguin Books Ltd], [1967].

- Godelier M. 1998. 'Afterword: Transformation And Lines Of Evolution'. In M. Godelier, T.R. Trautmann & F.E. Tjon Sie Fat (Eds.). *Transformations Of Kinship*. Washington & London: Smithsonian Institution, P. 386-413.
- Goody, J, Thirsk J Thompson Ep. 1976. (Ed*.) Family And Inheritance: Rural Society In Western Europe 1200-1800*. Cambridge: Cambridge University Press. Http://Www.Aboriginalculture.Com.Au/Socialorganisation.Shtml
- Kelly, R. 1977. *Etoro Social Structure: A Study In Structural Contradictions*. Ann Arbor: University Mich. Press.
- Levis- Strauss. 1969. *The Elementary Structures Of Kinship*. Great Britain: Eyre And Spottiswoode.
- Mair, Lucy. 1977. *An Introduction To Social Anthropology*. Delhi: Oxford University Press.
- Nanda, Serena And Richard L. Warms. 2010. *Cultural Anthropology*. 10th Edition. United Kingdom: Wadsworth Cengage Learning.
- Parkins, Robert And Linda Stone. (Ed.). 2004. *Kinship And Family: An Anthropological Reader*.Ma: Blackwell. Malden.
- Peletz, Michael G. 1988. *A Share Of The Harvest: Kinship, Property And Social History Among The Malays Of Rembau*. Berkley: University Of California Press.
- Peletz, Michael G.1995. 'Kinship Studies In Late Twentieth-Century Anthropology'.
  In *Annual Review In Anthropology*: 24:343-72.
- Peletz, Michael G. 1996. *Reason And Passion: Representations Of Gender In Malaya*
  Society. Berkley: University Of California Press.
- Rubins, G. 1975. *The Traffic In Women: Notes On The 'Political Economy' Of Sex*.

- Rubins, G.1976. *Worlds Of Pain: Life In The Working-Class Family*. New York: Basic Books.
- Schneider, Dm. 1968. *American Kinship: A Cultural Account*. Englewood Cliffs, Nj: Prentice Hall.
- Stone L. 1997. *Kinship And Gender: An Introduction*. Boulder: Westview Press.
- Tonkinson R. 1991. 'The Mardu Aborigines: Living The Dream In Australiaís Desert'.

  (2e.). New York: Holt, Rinehart & Winston. *Case Studies In Cultural Anthropology*, [1978].
- Weston, Kath. (Ed.). 1997. *Families We Choose: Lesbians, Gays Kinship*. New York: Columbia University Press

खंड 3 आदिम समाज - I

इकाई 1 धर्म, जादू , विज्ञान एवं टोटेम

(Religion, Magic, Science and Totem)

इकाई की रूपरेखा

3.1.0 उद्देश्य

3.1.1 प्रस्तावना (Introduction)

3.1.2 धर्म

3.1.3 धर्म की परिभाषाएँ

3.1.4 धर्म की विशेषताएं

3.1.5 धार्मिक क्रियाओं की विशेषताएं

3.1.6 धर्म के आवश्यक तत्व

3.1.7 धार्मिक कार्यकर्ता

3.1.8 धर्म की उत्पत्ति के सिद्धांत

3.1.9 धर्म के प्रकार्य

3.1.10 वैश्वीकरण के युग में धर्म

3.1.11 जादू (Magic)

3.1.12 जादू की परिभाषाएँ

3.1.13 जादू के प्रकार

3.1.14 जादू की विशेषताएं

3.1.15 जादू की क्रियाओं के तत्व

3.1.16 जादू-टोना तथा अभीचार या इंद्रजाल (Sorcery and Witchcraft)

3.1.17 विज्ञान

3.1.18 जादू एवं विज्ञान में समानताएं

3.1.19 जादू एवं विज्ञान में अंतर

3.1.20 फ्रेजर के अनुसार जादू, विज्ञान और धर्म

3.1.21 जादू एवं धर्म में समानता

3.1.22 जादू एवं धर्म में अंतर

3.1.23 जादू, विज्ञान और धर्म का प्रकार्य
3.1.24 टोटम
3.1.25 टोटम की परिभाषाएँ
3.1.26 टोटम के प्रकार
3.1.27 सारांश (Summary)
3.1.28 बोध प्रश्न
3.1.29 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप निम्नलिखित में सक्षम होंगे :

- धर्म क्या है? इसकी विशेषताएं और आवश्यक तत्व क्या हैं? धर्म की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांत और धर्म के प्रकार्य को जानने में सक्षम होंगे।
- जादू क्या है? जादू के प्रकार, विशेषताएं और क्रियाओं के तत्वों को जानने में सक्षम होंगे।
- विज्ञान क्या है? जादू एवं विज्ञान में समानताएं एवं अंतर क्या हैं? जादू एवं धर्म में समानता एवं अंतर क्या है और जादू, विज्ञान और धर्म के प्रकार्य को समझने में सक्षम होंगे।
- टोटम क्या है, इसके प्रकार कितने हैं? यह जानने एवं लिखने में विद्यार्थी सक्षम होंगे।

3.1.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानवीय आवश्यकता अनेक हैं जिनकी पूर्ति सिर्फ मानवीय प्रयत्नों द्वारा ही संभव है। यह सोच कर मानव अपने से श्रेष्ठ शक्तियों की ओर उन्मुख होता है। फलस्वरुप धर्म एवं जादू की उत्पत्ति होती है वस्तुतः मानव ने सर्वप्रथम इन शक्तियों को नियंत्रित करने का प्रयास किया जिसके परिणाम स्वरुप जादू की उत्पत्ति हुई, परंतु जब मानव इन शक्तियों को नियंत्रित करने में विफल रहा, तो इन सब के सामने नतमस्तक हो गया और उनकी पूजा करने लगा यही से धर्म की उत्पत्ति हुई होगी। इस इकाई में हम इन्ही विषयों पर चर्चा करेंगे और यह जानने का प्रयास करेंगे की धर्म, जादू और विज्ञान में क्या समानतायेँ और विभिन्नताएँ हैं।

3.1.2 धर्म

धर्म शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'धृ' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है धारण करना अर्थात सभी जीवो के प्रतिमान में दया धारण करने से है। हिंदू धर्म में इसका अर्थ कर्तव्य पालन करने से है। धर्म को समझने में पहला कदम स्पष्ट रूप से यह तय करना है कि यह क्या है, लेकिन जैसा कि अक्सर होता है, इस मूल

अवधारणा को परिभाषित करना कहीं अधिक कठिन कार्य है। शुरुआत करने के लिए हम दुर्खीम का सहारा ले सकते हैं। इस क्लासिक समाजशास्त्री के अनुसार, धर्म "***पवित्र चीजों के संबंध में मान्यताओं और प्रथाओं की एक एकीकृत प्रणाली है, जिसका अर्थ है कि चीजों को अलग करना और निषिद्ध विश्वासों और प्रथाओं को एक एकल नैतिक समुदाय में उन्हें एकजुट करना, जिसे चर्च कहते हैं, जिसका सभी का पालन करते हैं।*** ”(दुर्खीम [1915] 1965: 62)। यद्यपि इस परिभाषा को स्पष्ट रूप से यूरोपीय है और इसमें कुछ परिवर्तन की आवयशकता है, फिर भी यह धर्म की मूलभूत समाजशास्त्रीय विशेषताओं में उल्लेखनीय अंतर्दृष्टि दिखाती है। सबसे स्पष्ट परिवर्तन जो करने की आवश्यकता है वह है "चर्च" शब्द को हटाना, क्योंकि यह सामान्य रूप से केवल ईसाई धर्मों को संदर्भित करता है। हालाँकि, विशेष रूप से दुर्खीम की अपनी परिभाषा में पवित्र की अवधारणा को शामिल करने के साथ कुछ और मूलभूत समस्याएं हैं। जबकि "पवित्र चीजें" अधिकांश धर्मों में एक प्रमुख भूमिका निभाती हैं, वे निश्चित रूप से धार्मिक जीवन के लिए गैर योग्य नहीं हैं। उदाहरण के लिए, बौद्ध मत में, ध्यान, नैतिक व्यवहार, प्रज्ञा या उनकी मान्यताओं और प्रथाओं के अन्य केंद्रीय सिद्धांतों के बारे में "अलग और निषिद्ध" कुछ भी नहीं है। हालांकि, किसी भी प्रणाली को मान्य करने और धर्म को लागू करने के लिए यह उचित नहीं है। दूसरी ओर, ईसाई धर्मशास्त्री पॉल टिलिच (1967) ने कहा कि धर्म में "परम चिंता" के मुद्दे शामिल हैं जो कि अधिक व्यापक रूप से लागू होते हैं (कर्ट्ज़ 1995: 8–9)।

समाजशास्त्रीय उद्देश्यों के लिए, कम से कम, हम यह कह सकते हैं कि धर्म में तीन प्रमुख तत्व शामिल हैं: विश्वास, व्यवहार और एक सामाजिक समूह। हालाँकि धार्मिक विश्वास हमेशा व्यवस्थित रूप से संरचित नहीं होते हैं जैसा की दुर्खीम मानते थे क्योंकि विश्वास और व्यवहार को अक्सर सवालों का सामना करना पड़ता हैं। धार्मिक साधना का क्षेत्र बहुत अधिक विशाल है, क्योंकि इसमें अनुष्ठानों और समारोहों से लेकर आहार और व्यवहार संबंधी मानकों और विभिन्न आध्यात्मिक विषयों तक सब कुछ शामिल है, लेकिन यह स्पष्ट रूप से धार्मिक जीवन का एक केंद्रीय हिस्सा है। अंत में, धर्म एक सामाजिक घटना है जिसमें लोगों के समूह शामिल हैं। एकान्त दार्शनिक तब तक धार्मिक व्यक्ति नहीं बन जाता, जब तक कि वह अपने विचारों को लोगों के समूह के साथ साझा नहीं करता

3.1.3 धर्म की परिभाषाएँ

- **दुर्खीम** के अनुसार धर्म, “पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वासों और आचरण की संपूर्ण व्यवस्था है जो इन पर विश्वास करने वालों को एक नैतिक समुदाय में संयुक्त करती है”।
- **टाईलर** ने प्रिमिटिव कल्चर में धर्म की यह परिभाषा दी कि, “धर्म आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास है”।
- **मलिनोव्सकी** के अनुसार, “धर्म, क्रिया की एक विधि है और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था है। धर्म एक समाजशास्त्री घटना के साथ-साथ एक व्यक्तिगत अनुभव भी है”।

- **होवेल** - "धर्म अलौकिक शक्ति पर विश्वास पर आधारित है। जिसमें आत्मावाद और मानावाद दोनों सम्मिलित है"।

3.1.4 धर्म की विशेषताएं

3.1.5 धार्मिक क्रियाओं की विशेषताएं

3.1.6 धर्म के आवश्यक तत्व

ब्रूम और सेलजनिक ने धर्म के सात आवश्यक तत्व की चर्चा की

3.1.7 धार्मिक कार्यकर्ता

पुरोहित या धार्मिक कार्यकर्ता जो विभिन्न अनुष्ठानों को संपन्न करता है तथा जिसे अपनी उपस्थिति व प्रतिष्ठा अनुवांशिक रुप से प्राप्त होती है।

ओझा या शमन – यह तुंगुस भाषा का शब्द है जिसका आशय ऐसे व्यक्ति से है जो आत्मा से अपरोक्ष रूप से बात कर सकता है।

वॉलदेमर बोगोरस ने साइबेरिया की चुकची के अध्ययन के दौरान शमन का उल्लेख किया है या एक धार्मिक डॉक्टर होता है जो मुख्य रूप से विभिन्न बीमारियों का इलाज करता है।

3.1.8 धर्म की उत्पत्ति के सिद्धांत

आत्मावाद या जिववाद का सिद्धांत- टायलर ने अपनी पुस्तक प्रिमितिव कल्चर में आत्मावाद का सिद्धांत प्रस्तुत किया। इसे उन्होंने दो भागों में बांटा है-

आत्मा का सिद्धांत –जीववाद का संबंध मनुष्य के जीव से है जो की मृत्यु के बाद भी अपना अस्तित्व बनाए रखता है।

प्रेतों का सिद्धांत- दूसरा सिद्धांत जिसे आपने प्रेतों का सिद्धांत कहा यह वह आत्माएं है जो मनुष्य की आत्मा से पृथक दैवीय आत्माएं हैं।

टायलर का सिद्धांत कहता है कि मनुष्य की आत्मा दो प्रकार की होती है स्वतंत्र आत्मा और शरीर आत्मा। स्वतंत्र आत्मा शरीर के बाहर, अंदर आ जा सकती है परंतु शरीर आत्मा एक बार शरीर छोड़ने के बाद वापस नहीं आ सकती और प्रेत बन जाती है। यह आत्मा अमर होती है क्योंकि यदि ऐसा ना होता तो मरे हुए व्यक्ति सपने में दिखाई नहीं देते। अपनी बात की पुष्टि के लिए उन्होंने टोडा जनजाति में होने वाली दो प्रकार की अंत्येष्टि संस्कार का वर्णन किया

हरी अंत्येष्ठी – जो मृत्यु के तुरंत बाद की जाती है।

सुखी अंत्येष्टि- जो मृत्यु के कुछ समय बाद की जाती है। इसका उद्देश्य संभवतः आत्मा का कुछ समय तक लौट आने का इंतजार किया जाना है।

टेलर के अनुसार अमूर्त एवं अभौतिक प्रेत आत्माओं के प्रति भय निश्चित आदिम धर्म का मूल है। इस प्रकार पूर्वज पूजा ही पूजा और आराधना का प्रारंभिक रूप तथा समाधि या कब्र कई आरंभिक मंदिर हुआ करते थे।

जीवित सत्तावाद या मानाववाद का सिद्धांत- इस सिद्धांत की मान्यता है कि प्रत्येक वस्तु में चाहे वह जड़ हो या चेतन हो एक जीवित अलौकिक सत्ता होती है। इस सत्ता में विश्वास और इसकी पूजा आराधना से ही धर्म की उत्पत्ति हुई। इस सिद्धांत को सर्वप्रथम **मैक्स मूलर** ने प्रस्तुत किया एवं इसी से मिलती-जुलती अन्य

अवधारणा मानाववाद का उल्लेख किया। इसमें मलेनेशिया की जनजातियों में यह विश्वास किया जाता है कि किसी भी कार्य की सफलता या असफलता माना पर निर्भर है। माना एक अलौकिक शक्ति है।

भारतीय जनजातियों में इसी से मिलती-जुलती अवधारणा को **मजूमदार** ने सिंहभूमि की 'हो' जनजाति में बोंगावाद में दी। उत्तरी अमेरिका की जनजातियों में और ओरेंडा की अवधारणा मानावाद से मिलती जुलती है ।

मेरिट के अनुसार माना एक अव्यक्तिक, अशरीरी और अलौकिक शक्ति है जो अच्छे और बुरे दोनों रूपों में मनुष्य को प्रभावित करती है। मनुष्य इस शक्ति के समक्ष नतमस्तक हुआ और इसकी पूजा एवं आराधना से ही धर्म की उत्पत्ति हुई।

प्रकृतिवाद का सिद्धांत- मैक्स मूलर ने धर्म की उत्पत्ति के लिए प्रकृति पूजा को उत्तरदाई माना। आपके अनुसार मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों के सामने नतमस्तक हुआ। उसने प्रकृति की शक्ति को स्वीकार किया और यहीं से प्रकृति की पूजा शुरू हुई जो धर्म की उत्पत्ति का आधार बनी। यह निष्कर्ष भारत तथा यूरोपीय पौराणिक कथाओं पर आधारित था।

फ्रेजर के धर्म की उत्पत्ति का सिद्धांत- स्कॉटलैंड निवासी फ्रेजर, टेलर से प्रभावित थे और उन्होंने अपनी पुस्तक द गोल्डन बो में लिखा कि जादू टोना की शक्तियों से सुपरनैचुरल पावर्स को नियंत्रित करने का प्रयास किया और जब वह अपने प्रयास में असफल हुआ तो इन सब के आगे मानव ने अपने आप को समर्पित कर दिया। असफल जादू टोना ने मनुष्य को धर्म की ओर अग्रसर किया।

धर्म का सामाजिक सिद्धांत- यह सिद्धांत इमाइल दुर्खीम में अपनी पुस्तक 'द एलीमेंट्री फॉर्म्स ऑफ रिलीजियस लाइफ' 1912 में प्रस्तुत किया। आप के अनुसार धर्म सामाजिक चेतना का प्रतीक है। धर्म का वास्तविक आधार स्वयं समाज है। दुर्खीम कहते हैं "स्वर्ग का साम्राज्य एक महिमा मंडित समाज है"। दुर्खीम अपने गुरु फस्टेल डी कोलेजस की पुस्तक द एंसियंट सिटी से प्रभावित थे। जिसमें यह लिखा था कि रोमन धर्मों का जन्म सामाजिक संगठनों के विकास के साथ हुआ। दुर्खीम का अध्ययन अरुन्टा ऑस्ट्रेलिया की जनजाति पर आधारित था। दुर्खीम ने पवित्र और अपवित्र को समझाने के लिए तो टोटमवाद का सहारा लिया। दुर्खीम के अनुसार धर्म एक सामाजिक तथ्य है और उसकी उत्पत्ति में समाज का भी योगदान है। दुर्खीम ने विश्वास तथा टोटम को धर्म के आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार किया है तथा टोटम को धर्म का प्रारंभिक स्तर माना। इस प्रकार दुर्खीम ने टोटम को ही धर्म की उत्पत्ति का आधार माना तथा सामूहिक प्रतिनिधित्व का प्रतीक माना।

प्रकार्यवादी सिद्धांत- मानवशास्त्री मलिनोव्सकी एवं रेडक्लिफ ब्राउन ने धर्म की प्रकार्यवादी व्याख्या प्रस्तुत की। मलिनोव्सकी के अनुसार मनुष्य ने संस्कृति को जन्म दिया, संस्कृति का कोई तत्व बेकार नहीं है। व्यक्ति तथा समाज की किसी ना किसी आवश्यकता की पूर्ति अवश्य करता है। धर्म भी संस्कृति का एक अंग है और उसका अस्तित्व भी इसी कारण समाज में होता है। रेडक्लिफ ब्राउन के अनुसार धर्म का प्रकार मानव मस्तिष्क

को भय एवं संवेगो से मुक्ति दिलाना नहीं है। जैसा मलिनोव्सकी ने कहा बल्कि धर्म का प्रमुख प्रकार मनुष्य की समाज पर आश्रितता को प्रकट करना है तथा सामूहिक जीवन के अस्तित्व को बनाए रखना है। मलिनोव्सकी व्यक्ति के महत्व पर बल देते हैं जबकि रेडक्लिफ ब्राउन समाज के। हालाँकि समाज के लिए व्यक्ति उतना ही महत्वपूर्ण है जितना व्यक्ति के लिए समाज। संक्षेप में मलिनोव्सकी ने धर्म के प्रकार्य को व्यक्ति के स्तर पर दर्शाया जबकि रेडक्लिफ ब्राउन ने समाज के स्तर पर लेवी स्ट्रास के अनुसार धर्म की अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक तथा पौराणिक विचारों द्वारा होती है।

3.1.9 धर्म के प्रकार्य

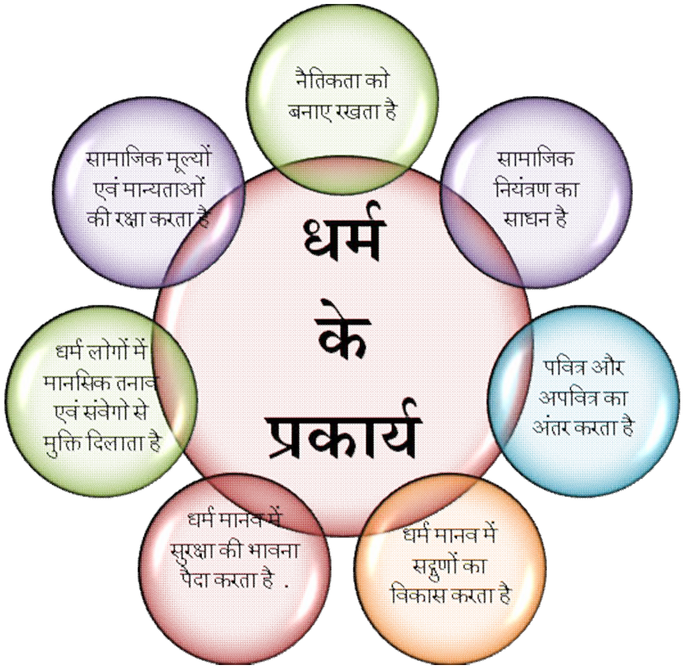

3.1.10 वैश्वीकरण के युग में धर्म

सभी सामाजिक संस्थानों की तरह, औद्योगिक क्रांति और इसके द्वारा हुए वैश्विक बदलावों के परिणामस्वरूप धर्म में व्यापक परिवर्तन आया है। धर्म के समाजशास्त्र के शुरुआती संस्थापकों में से कई ने धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया के रूप में इस धार्मिक परिवर्तन को अपेक्षाकृत सरल शब्दों में देखा, जिसमें पुराने धार्मिक विचारों और संस्थानों को नए तर्कसंगत-वैज्ञानिक द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। वर्षों से, इस धर्मनिरपेक्षता थीसिस के अधिवक्ताओं ने अपने दावों को केवल यह कहते हुए नियंत्रित किया कि समाज और सामाजिक जीवन पर धर्म के प्रभाव ने आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप गिरावट आई है (रॉबर्ट्स 2004: 305–28)। अभी हाल ही में, कई विद्वानों ने इस थीसिस को चुनौती दी है कि लोग उतने ही धार्मिक हैं जितने कि वे कभी थे और धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया में ठहराव आया है (स्टार्क और बैनब्रिज

1985)। इस तरह के दावे एक शक्तिशाली पलटवार की तरह हैं, और यह धर्म के समाजशास्त्र में सबसे ज्यादा बहस वाले मुद्दों में से एक बना हुआ है (ब्रूस 1996)।

मानवशास्त्रियों के बीच बहुत से अंतर धर्मनिरपेक्षता की परस्पर विरोधी परिभाषाओं पर टीका हुआ है। सबसे पहले, हालांकि यह प्रवृत्ति परिधि की तुलना में कोर में अधिक चिह्नित करती है, दुनिया के सभी हिस्सों में समाज अधिक धर्मनिरपेक्ष बन रहे हैं, इसका मतलब है कि पौराणिक और जादुई विचार कई सामाजिक जीवन के क्षेत्र में तर्कसंगत-वैज्ञानिक विचार द्वारा प्रतिस्थापित किया जा रहें है (लेकिन निश्चित रूप से सभी में नही)। दूसरा, यूरोपीय समाजों में संगठित धर्म के राजनीतिक और सामाजिक आधिपत्य में तीव्र गिरावट आई है क्योंकि वे आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुजर चुके हैं। यह प्रवृत्ति, हालांकि, दुनिया के अन्य हिस्सों में बहुत कम स्पष्ट है। उन समाजों में जहां एकेश्वरवाद ने कभी जड़ नहीं ली, धर्म ने शुरू से ही बहुत कमजोर राजनीतिक भूमिका निभाई। अलग-अलग धार्मिक संस्थाओं के रास्ते में धर्म ज्यादा नहीं हैं, और एशियाई समाज हमेशा से ही लोकतंत्र की तुलना में अधिनायकवाद की ओर अधिक अग्रसर रहे हैं। उदाहरण के लिए, माओ त्से-तुंग के तहत चीनी सरकार ने आधुनिकीकरण की किसी भी महत्वपूर्ण प्रक्रिया से पहले संगठित धार्मिक गतिविधियों का कठोर दमन शुरू किया था, और अब वह धीरे-धीरे अपनी पकड़ ढीली कर रहा है क्योंकि औद्योगीकरण आगे बढ़ गया है। हाल के वर्षों में, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया और उपभोक्ता पूंजीवाद के वैश्विक प्रसार के कारण होने वाले विरोधाभासों और अव्यवस्थाओं के खिलाफ प्रतिक्रिया देने वाले विभिन्न आंदोलनों के लिए धर्म भी साधन बन गया है। इस्लामी कट्टरपंथी आंदोलन, इस्लामिक संस्कृतियों के पुनर्मूल्यांकन के लिए एक राजनीतिक / धार्मिक प्रतिक्रिया है जो विश्व व्यवस्था में एक परिधीय स्थिति के साथ विदेशी वर्चस्व में निहित है और पश्चिमी उपभोक्ता मूल्यों के प्रसार कर रही है। दिलचस्प बात यह है कि इस्लामी कट्टरवाद को एक अन्य राजनीतिक / धर्म आंदोलन की सफलता से महत्वपूर्ण रूप में प्रदर्शित किया गया, जो पूर्व में इस्लाम शासित प्रदेशों पर नियंत्रण रखता था। इस्लामिक कट्टरवाद के बढ़ते उग्रवाद के बदले में भारत में कभी-कभी हिंदू कट्टरवाद के रूप में एक प्रतिवाद को उत्तेजित किया। यहां तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका, विश्व प्रणाली में अपनी विषम स्थिति के साथ, अपने स्वयं के राजनीतिक / धार्मिक आंदोलनों की वृद्धि देखी है। हालांकि, अमेरिका में धार्मिक अधिकार का उदय विदेशी वर्चस्व का परिणाम नहीं था, लेकिन पारंपरिक पारिवारिक संस्थानों और पूंजी में आए बदलाव का एक परिणाम था जो उपभोक्ता पूंजीवाद के विकास के परिणामस्वरूप हुआ।

तीसरा, हालांकि व्यक्तिगत धार्मिकता को मापना मुश्किल है, लेकिन यह मानने का कोई कारण नहीं है कि लोग किसी भी तरह की "परम चिंता" के मामलों में से कम दिलचस्पी रखते हैं, जो कि अधिकांश धर्मों की नींव हैं। बेशक, सामाजिक संकट धर्म के हितों के परिवर्तन या गहनता को उत्तेजित कर सकते हैं। मध्य पूर्व के मंगोलियाई विजय के बाद सूफीवाद का उदय एक उदाहरण है, जैसा कि द्वितीय विश्व युद्ध में अपनी विनाशकारी पराजय के बाद जापान में हुए "धर्म के घंटे" के रूप में ज्ञात नए धर्मों का तेजी से विकास था।

बहरहाल, कोई फर्क नहीं पड़ता कि हम किस सामाजिक संगठन को अपनाते हैं और हमारी ऐतिहासिक परिस्थितियाँ क्या हैं, धार्मिक आवेग को जन्म देने वाली अस्तित्वगत दुविधाएं मानवीय स्थिति का एक मूलभूत हिस्सा हैं।

3.1.11 जादू (Magic)

जादू एक जटिल क्रिया है और उसे परिभाषित करना मुश्किल है। आम तौर पर, यह अनुष्ठान गतिविधि को संदर्भित करता है, समान्यतः इसमें संस्थागत समर्थन नहीं होता है, इसका निष्पादन, शब्दों और कार्यों के माध्यम से शक्तिशाली माना जाता है और इसको करने वाला विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों को स्वचालित रूप से प्रेरित करने का इरादा रखता है। अच्छे (सफेद जादू) या बुरे (काले जादू) का उद्देश्य लोगों की इच्छाओं के अनुसार विभिन्न मानव और प्राकृतिक घटनाओं (स्वास्थ्य, यौन जीवन, प्रजनन गतिविधि, जलवायु संबंधी घटनाओं, भविष्य के ज्ञान, सामाजिक संबंधों आदि) से संबंधित है जो इसका उपयोग करते हैं (जादूगर या उनके ग्राहक) और जो लोग विश्वास करते हैं। जादू, पूर्व अनुष्ठानों के अलावा, विश्वासों की एक प्रणाली भी है, ताकि अभ्यासी, ग्राहक की इच्छा शक्ति जो विभिन्न पहलुओं पर निर्भर करती हैं अपने अनुसार परवर्तित कर सके।

जादू की अवधारणा, पश्चिमी सभ्यता में उभरी और विकसित हुई और धर्म, विज्ञान और तर्क के विरोध के लिए कार्य किया। जादू ने, आंतरिक रूप से, पौराणिक अनुष्ठानों (जैसा कि ज्यादातर हाशिए की प्रथाओं) को परिभाषित करने का कार्य किया है। इस अवधारणा को तब पश्चिम के लोगों के अलावा अन्य लोगों में एक ऐसी श्रेणी का मूल्य मानते हुए विस्तारित और लागू किया गया, जो सांस्कृतिक परिवर्तनशीलता (उच्च प्राचीन सभ्यताओं के धर्म - मिस्र, वैदिक भारत, आदिम या उपनिवेशवादी लोगों के धर्म) को परिभाषित करती है। अँग्रेजी शब्द ‘magia’, जिसमें से "magic" निकलता है, की उत्पत्ति फ़ारसी पुजारियों, magoi के नाम से हुई है, जो जोरोस्ट्रियन पुजारी (हेरोडोटस) से संबंधित थीं। इस प्रकार, यह मूल रूप से एक आधिकारिक और प्रतिष्ठित भूमिका को परिभाषित करता है। लेकिन शास्त्रीय ग्रीक और रोमन संस्कृति में, और बाद में सामान्य रूप से ईसाई और पश्चिमी संस्कृति में, इस अभिव्यक्ति के अर्थ में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ, जिसने एक नकारात्मक और विवादास्पद चरित्र प्राप्त किया। ग्रीक सभ्यता में magoi सीमांत लोगो को कहते हैं। वे चारों ओर से घिरे हुए थे और उन्हें चार्लटन माना जाता था। magos शब्द का उपयोग विदेशी, बर्बर को परिभाषित करने के लिए किया गया था। लैटिन संस्कृति में भी magus का समान अर्थ था, और magia को अविश्वास के साथ देखा गया था, एक ऐसा उपकरण, जिसने व्यक्ति, परिवार और सामाजिक जीवन के सामान्य आदेश को खतरे में डाल दिया था। जादू का मूल्यांकन, दमन और एक अपराध के रूप में शुरू किया गया था, जो कि टेबल्स एंड कोडियन के कोडेक्स के बारह तालिकाओं के कानून के साथ था। दुश्मनों पर जादू का आरोप लगाया जाता था: बुतपरस्त

बुद्धिजीवियों ने ईसाइयों पर जादू का आरोप लगाया और बाद में ईसाइयों ने उसी के पैगमबरों पर आरोप लगाया।

3.1.12 जादू की परिभाषाएँ

- **टाइलर** के अनुसार धर्म जादू और विज्ञान एक ही श्रेणी में आते हैं इनमें अंतर सिर्फ विचारों की अभिव्यक्ति का है। इसके विपरीत **फ्रेजर** ने इन तीनों को अलग-अलग स्तरों पर रखा और आपके अनुसार जादू, धर्म का आदिम स्वरूप है। फ्रेजर के अनुसार जादू मनुष्य के विश्वासों तथा व्यवहारओं का वह संग्रह है जिन पर किसी प्रकार की आलोचना व पुनः निरीक्षण नहीं हो सकता।
- **मलिनोव्सकी** की पुस्तक **मैजिक साइंस एंड रिलिजन** में "जादू विशुद्ध व्यावहारिक क्रियाओं का योग है जिसे उद्देश्यों की पूर्ति के साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। उन्होंने जादू के व्यवहारिक एवं प्रकार्यात्मक पक्ष पर बल दिया।
- **एस सी दुबे** के अनुसार जादू उस अतींद्रिय शक्ति को कहते हैं जिससे अति मानवीय जगत पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सके और उसकी क्रियाओं को अपनी इच्छा अनुसार भले बुरे, शुभ-अशुभ उपयोग में लाया जा सके।
- **टेलर और फ्रेजर** ने जादू को आभासी विज्ञान कहा है। फ्रेजर ने जादू को विज्ञान की अवैध बहन (बास्टर्ड सिस्टर) और जादू को एक अवैध विज्ञान कहा है।
- उदविकासवादी दृष्टिकोण से भिन्न, Wilhelm Schmidt जादू को मानव विकास के प्रारंभिक क्षण के रूप में नहीं, बल्कि मानवता के मूल एकेश्वरवाद के बाद के अपक्षयी क्षण के रूप में मानते हैं।
- रुडोल्फ ओटो (द आइडिया ऑफ़ द होली, 1917) ने जादू को धर्म से जुड़ा माना है, क्योंकि दोनों के साथ पवित्र संबंध का एक अस्तित्वपूर्ण अनुभव है (जिसे ओटो "सुन्न," मिस्टेरियम फासिनेंस एट ट्रॉम कहते हैं)। लेकिन जादू को "धर्म के बरोठा" के रूप में भी परिभाषित किया जाता है क्योंकि यह धार्मिक जीवन के उच्चतम रूपों का एक प्रारंभिक अंश है।

जादू के संबंध में एक उल्लेखनीय परिवर्तन मालिनोवस्की के कार्यात्मक सिद्धांत में मिलता है। उसके लिए, जादू, धर्म और विज्ञान किसी भी तरह से एक प्रगतिशील क्रम का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। वे एक ही सामाजिक वातावरण में सहअस्तित्व करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति और सामाजिक जरूरतों को पूरा करने की दिशा में अपना विशिष्ट योगदान (कार्य) प्रदान करते है। मालिनोवस्की उदविकासवाद की तार्किक त्रुटि के रूप में जादू के लिए बौद्धिक दृष्टिकोण को छोड़ देते हैं। उनके लिए, जादू, विज्ञान के दायरे से नहीं, बल्कि धर्म से संबंधित है, भले ही उनके बीच मतभेद हैं। जादू का उपयोग ठोस, विशिष्ट समस्याओं को हल करने के लिए किया जाता है। धर्म, जो बहुत अधिक जटिल है, का उपयोग सामान्य समस्याओं के जवाब देने और अर्थ देने

के लिए किया जाता है। हालांकि, दोनों उस बिंदु से परे हस्तक्षेप करते हैं, जिसमें आदमी वास्तविकता को नियंत्रित कर सकता है, और चिंता और भावनात्मक तनाव के क्षणों में उनकी उत्पत्ति होती है। मालिनोव्स्की ने लेवी ब्रुहल के विचारों का हवाला दिया, जो आधुनिक पश्चिम तर्कसंगत और वैज्ञानिक विश्वदृष्टि को आदिम लोगों की मानसिकता के विपरीत मानते हैं। लेवी ब्रुहल का मानना है आदिम समाज पहचान के सिद्धांतों और गैर-विरोधाभास के प्रति उदासीन एक जादुई दुनिया के भीतर रहते हैं। उन्हें रहस्यमय भागीदारी के एक कानून का पालन करने के रूप में देखा जाता है, जो वास्तविकता के विभिन्न नियमों (जो हमारे लिए अलग हैं) के संपर्क में रहता है और दिखाई देने वाली दुनिया और अदृश्य शक्तियों के बीच, सोने और जागने के बीच, और मृतकों के बीच निरंतर हस्तक्षेप बनाता है। दूसरी ओर, मालिनोवस्की ने ट्रोब्रिएंड द्वीप समूह के मूल निवासियों का अध्ययन करते हुए देखा कि वे अच्छी तरह से जानते थे कि तर्क के साधनों का उपयोग कैसे करना है और प्रौद्योगिकी और जादू के बीच क्या अंतर है। जब परिणाम निश्चित होते हैं तो जादू कभी हस्तक्षेप नहीं करता है, लेकिन केवल उन स्थितियों से उत्पन्न चिंता से निपटने के लिए जो पूरी तरह से अनियंत्रित हैं। जादू, विशिष्ट संदर्भों में, मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों (प्रेम, खेती, मछली पकड़ने, आदि) में परिणाम की अनिश्चितता से परेशान मनोवैज्ञानिक और सामाजिक संतुलन को फिर से स्थापित करने के लिए आवश्यक है।

दुर्खीम और मार्सेल मास एक सामाजिक घटना के रूप में जादू के चरित्र पर जोर देते हैं। जादूगर और उसका जादू सामाजिक परिवेश के भाव हैं; वे पैदा होते हैं और सामाजिक सहमति पर खड़े होते हैं, जैसा कि धर्म और पादरी करते हैं। धर्म की तरह, जादू पवित्र के सापेक्ष मान्यताओं और प्रथाओं की एक प्रणाली है (अपवित्र के विपरीत)। मास ने तर्क दिया की अपने निजी, व्यक्तिगत, गुप्त और रहस्यमय चरित्र के माध्यम से, ठोस और उपयोगितावादी (जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लिए जादू को जोड़ता है) प्रवृत्ति के माध्यम से, चिकित्सा, धातु विज्ञान, औषधी विज्ञान, वनस्पति विज्ञान और खगोल विज्ञान उत्पन्न हुए। जादू धर्म से प्रतिष्ठित होता है। धर्म में एक सार्वजनिक चरित्र है, जो अमूर्त और आध्यात्मिक की ओर जाता है, और, दुर्खीम की राय में, "चर्च" नामक एक नैतिक समुदाय बनाता है। इसके विपरीत, एक जादू में 'चर्च' जैसी संस्था मौजूद नहीं है।

रैडक्लिफ़ ब्राउन (जिन्होंने धर्म और जादू के बीच अनैतिक द्वंद्वात्मकता को छोड़ने और अनुष्ठान की श्रेणी में दोनों को शामिल किया है) और इवांस प्रिचार्ड द्वारा सामाजिक संरचना और जादू के बीच बहुत करीबी संबंध पाया। उत्तरार्द्ध सूडान के अजाण्डे जनजाति में जादू एक रहस्यमय विचार के सुसंगत प्रणाली की पहचान करता है, जो अनुभवजन्य विचार को पूरक है। जादू टोना दुर्भाग्य की व्याख्या करता है, जबकि जादू स्वयं को इससे बचाने या चुड़ैलों के हमलों से होने वाले किसी भी नुकसान का उपाय करने के लिए साधन प्रदान करता है, जो कि शानदार तकनीकों के माध्यम से खोजा जाता है।

वेबर द्वारा जादू, समाज और अर्थव्यवस्था के बीच संबंध का विश्लेषण किया गया था। धर्म की उत्पत्ति और विकास की जांच करते हुए, वह धार्मिक रूपों को अनिवार्य रूप से जादू के रूप में, जबरदस्त अनुष्ठानों और भौतिक उद्देश्यों के रूप में वर्णित करता है। बाद में, धर्म नैतिक मूल्यों पर चलता है और व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की भावना प्रदान करता है (भले ही ज्यादातर धर्मों में जादुई तत्व रहते हैं)। जादू, दुनिया के साथ मोहभंग, जो विशेष रूप से प्रोटेस्टेंटिज्म के माध्यम से होता है, पर काबू पाने के लिए धार्मिक प्रथाओं, गठन, व्यवसायों के जन्म के लिए एक अनिवार्य साधन के मनोवैज्ञानिक उच्चारण के साथ विश्वासों के युक्तिकरण और नैतिकता की ओर जाता है। आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था और प्रौद्योगिकी के विकास के लिए (जादू आर्थिक गतिविधि के तर्कसंगत संगठन के लिए एक बाधा है)।

3.1.13 जादू के प्रकार

एस. सी. दुबे के अनुसार उद्देश्य के आधार पर जादू को तीन भागों में बांटा जा सकता है –

संवर्धक जादू- अर्थात वृद्धि करने वाला, इसका उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना, वर्षा लाना, व्यापार में उत्पादन बढ़ाना आदि होता है। उदाहरण - आखेट का जादू, उर्वरता का जादू, वर्षा के लिए जादू, मछली पकड़ने का जादू, नौका चलाने का जादू,

संरक्षक जादू – (प्रोटेक्टिव मैजिक) दूसरे जादूगर द्वारा किए गए जादू से रक्षा, संपत्ति की सुरक्षा, दुर्भाग्य से रक्षा किसी को दिए गए ऋण को पुनः प्राप्त करने के लिए या रोग उपचार के लिए।

विनाशक जादू (डिस्ट्रक्टिव मैजिक) प्रतिपक्ष को हानि पहुंचाने, उसकी संपत्ति की हानि, मारने, बीमार करने आदि से संबंधित है।

मलिनोव्सकी का वर्गीकरण

मैलिनोवस्की के अनुसार जादू दो प्रकार के होते हैं-

सफेद जादू (वाइट मैजिक)- समाज द्वारा स्वीकृत है क्योंकि उसका उद्देश्य दूसरों को लाभ पहुंचाना, परोपकार करना, जनकल्याण करना होता है।

काला जादू – (ब्लैक मैजिक)- इसे समाज स्वीकृति नहीं देता। यह प्रतिपक्ष को बीमार करने, उसकी संपत्ति को नष्ट करने या उसे मारने के लिए किया जाता है। सोसर्री (मंत्र तंत्र) तथा विचक्राफ्ट (भूत प्रेतों) की सिद्धि को मैलिनोवस्की ने काले जादू के अंतर्गत रखा।

फ्रेजर ने जादू का वर्गीकरण सहानुभूतिक जादू –

- **अनुकरणआत्मक जादू** – सादृश्यमूलक, समानता के नियम पर आधारित। लाइक प्रोड्यूसर्स लाइक। इसका प्रयोग अच्छे और बुरे दोनों कार्यों में किया जाता है। जैसे एस्किमो जनजाति में यह मान्यता है कि यदि किसी बच्चे की गुड़िया बनाकर किसी निसंतान मां को दी जाए तो निश्चित रूप से

उसे बच्चा होगा। इसी प्रकार हो जनजाति में यह मान्यता है की यदि दुश्मन की काठ की मूर्ति बनाकर उसके सीने और आंख में सुई चुभोया जाए तो दुश्मन के उसी अंग में चोट लगेगी। बिहार की कुछ जनजातियों में ऐसा विश्वास है कि पत्थरों को पहाड़ से गिराने पर गढ़-गढ़ की आवाज से बारिश हो जाती है। इसी प्रकार गोलालारी लोगों में ऐसी मान्यता है कि जब प्रेमी अपनी प्रेमिका से मिलने जाए और अगर वह शमशान की मिट्टी को प्रेमिका के घर के ऊपर डाल दे तो घर के सभी लोग गहरी नींद में सो जाते हैं और वे स्वतंत्र रूप से मिल सकते हैं। खोड़ जनजाति में वर्षा के लिए नर बलि दी जाती है ऐसी मान्यता है कि जैसे जैसे रक्त टपके का वर्षा भी वैसे-वैसे होगी।

- **संक्रामक जादू** (कॉन्टेजियस मैजिक) - संपर्क के नियम पे आधारित वन्स इन कोन्टक्ट आल्वेस इन कोन्टक्ट। इसकी मान्यता है कि कोई वस्तु किसी व्यक्ति से एक बार संपर्क में रहेगी तो सदैव उस व्यक्ति से उसका संपर्क बना रहेगा और अगर वस्तु पर कोई जादू की क्रिया की जाएगी तो संबंधित व्यक्ति अवश्य प्रभावित होगा। जैसे संबंधित व्यक्ति के कपड़े या बालों और नाखूनों पर जादू करना। चेरोकी जनजाति में लड़की की नाल को धान की अनाज की कोठरी में छुपा देते हैं। उनका विश्वास है कि वह अच्छा खाना बनाएगी और लड़के की नाल को पेड़ पर टांग देते हैं। ऐसा माना जाता है वह आगे चलकर अच्छा शिकारी बनेगा।

जेम्स फ्रेजर जादू को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों मानते हैं। सकारात्मक जादू में यह विश्वास व्यक्त किया जाता है कि अमुक कार्य/परिणाम प्राप्त करना है तो अमुक क्रियाएँ करनी होंगी। नकारात्मक जादू में टैबू या निषेध आते हैं जिसमें विश्वास किया जाता है कि ऐसा मत करो नहीं तो यह घटना घट जाएगी।

फ्रेजर के विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

3.1.14 जादू की विशेषताएं

3.1.15 जादू की क्रियाओं के तत्व

एस.सी. दुबे ने तीन तत्वों की चर्चा की

मलिनोव्सकी ने चार तत्वों की चर्चा की

3.1.16 जादू-टोना तथा अभीचार या इंद्रजाल (Sorcery and Witchcraft)

इवांस प्रिचार्ड के अनुसार अभीचार वह कला है जो सीखी जाती है जबकि जादू-टोना की शक्ति किसी मनुष्य में अनुवांशिक या जन्मजात पाई जाती है अभीचार जादू का हानिकारक प्रयोग है आपके अनुसार जादू-टोना सामाजिक नियंत्रण का एक साधन भी है।

3.1.17 विज्ञान

मालिनोवस्की (1948: 34) सवाल उठाते हैं कि "क्या हम आदिम ज्ञान का संबंध विज्ञान के एक रूढ़िवादी चरण के रूप में कर सकते हैं? जैसा कि मैने पाया है कि दोनों अनुभवजन्य और तर्कसंगत हैं।" एक सीधा जवाब है कि अगर हम विज्ञान को अनुभव और तर्क के आधार पर ज्ञान की प्रणाली मानते हैं तो आदिम लोगों को विज्ञान के अल्पविकसित रूपों के अधिकारी माना जाना चाहिए। दूसरी बात, अगर हम विज्ञान को एक दृष्टिकोण के रूप में लेते हैं, तो मालिनोवस्की के अनुसार, मूल निवासी उनके दृष्टिकोण में पूरी तरह से अवैज्ञानिक नहीं हैं। उन्हें प्यास का ज्ञान नहीं पता है। वे उन विषयों को काफी उबाऊ लग सकते हैं, जो यूरोपीय लोगों के लिए बहुत रुचिकर हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि उनकी पूरी रुचि उनकी सांस्कृतिक परंपराओं द्वारा निर्धारित होती है। वे अपने परिवेश में बहुत रुचि रखते हैं- पशु जीवन, समुद्री जीवन और जंगलों से संबंधित घटनाएं। अपने निबंध में इस स्तर पर, मालिनोवस्की ने प्रकृति और आदिम ज्ञान के आधार से संबंधित प्रश्नों को अलग करने का फैसला किया। इसके बजाय वह यह पता लगाने में दिलचस्पी रखते है कि क्या आदिम लोगों के पास वास्तविकता का एक समामेलित क्षेत्र है जिसमें जादू, विज्ञान और धर्म सभी एक हैं और वे जीवन के तीन पहलुओं को सामाजिक घटना के अलग-अलग क्षेत्रों के रूप में मानते हैं। उन्होंने अब तक, यह दिखाया है कि व्यावहारिक गतिविधियों की दुनिया और उनसे संबंधित तर्कसंगत दृष्टिकोण ट्रोब्रिएंडर्स के लिए एक दुनिया बनाते हैं। इसके अलावा, यह दुनिया जादुई और धार्मिक प्रथाओं की दुनिया से अलग है।

टेलर के अनुसार प्रत्येक संस्कृति में जादू, धर्म और विज्ञान जैसे तत्व पाए जाते हैं। जैसे जैसे हम सभ्यता की ओर बढ़ते हैं जादू एवं धर्म का प्रभाव घटता जाता है तथा विज्ञान का प्रभाव बढ़ता जाता है।

3.1.18 जादू एवं विज्ञान में समानताएं

i. मलिनोव्सकी के अनुसार दोनों ही मानवीय आवश्यकताएं की पूर्ति का साधन है।
ii. दोनों में प्राकृतिक नियमों की उपस्थिति को स्वीकार किया गया है।
iii. दोनों में विशेष तकनीक का प्रयोग होता है और कार्य कारण के बीच संबंध प्रकट होता है।
iv. फ्रेजर के अनुसार दोनों साधारणत: एक ही है। अंतर कार्य-कारण का है। एक कार्य कारण कि गलत धारणा पर आधारित है और एक सही है।

v. फ्रेजर जादू को प्राकृतिक नियमों की अवैध प्रणाली और भ्रामक व्यवहार निर्देशक मानते हैं। इसलिए वह जादू को विज्ञान की अवैध बहन मानते हैं।

vi. दोनों में भविष्यवाणी करने की क्षमता होती है।

vii. विज्ञान की तरह, जादू का मानव की जरूरतों और सहज ज्ञान से संबंधित एक विशिष्ट उद्देश्य है। दोनों नियमों की एक प्रणाली द्वारा शासित होते हैं, जो निर्धारित करते हैं कि एक निश्चित कार्य को प्रभावी ढंग से कैसे किया जा सकता है।

viii. विज्ञान और जादू दोनों कुछ गतिविधियों को करने की तकनीक विकसित करते हैं। इन समानताओं के आधार पर, मालिनोवस्की ने जादू को छद्म विज्ञान कहा।

3.1.19 जादू एवं विज्ञान में अंतर

i. विज्ञान तथ्यों पर आधारित है जबकि जादू विसमय, प्रत्याशा और अनिश्चय पर आधारित है।

ii. जादू का संबंध आदिम समाज से है और धर्म का आधुनिक समाज से।

iii. मलिनोव्सकी ने धर्म और जादू को पवित्र और विज्ञान को अपवित्र माना है।

iv. विज्ञान, जैसा कि आदिवासियों के आदिम ज्ञान में परिलक्षित होता है, रोजमर्रा की जिंदगी के सामान्य अनुभव से संबंधित है। यह प्रकृति के साथ उनकी बातचीत पर, अवलोकन और कारण पर आधारित है। दूसरी ओर जादू, तनावपूर्ण भावनात्मक स्थितियों के विशेष अनुभव में स्थापित है। इन स्थितियों का अवलोकन नहीं बल्कि किसी का स्वयं का अनुभव महत्वपूर्ण है। यह मानव जीव पर भावनाओं का नाटक है।

v. विज्ञान का आधार अनुभव, प्रयास और कारण की वैधता में दृढ़ विश्वास है। लेकिन जादू इस विश्वास पर आधारित है कि कोई अभी भी बिना किसी आधार पे उम्मीद और इच्छा पूरी कर सकता है।

vi. तर्कसंगत ज्ञान का कोष सामाजिक सेटिंग और कुछ प्रकार की गतिविधियों में शामिल है, जो सामाजिक सेटिंग, और जादुई ज्ञान से संबंधित गतिविधियों से स्पष्ट रूप से अलग हैं।

इन मतभेदों के आधार पर, मालिनोवस्की का निष्कर्ष है कि विज्ञान अपवित्र क्षेत्र के अंतर्गत आता है जबकि जादू पवित्र क्षेत्र के आधे हिस्से में समाहित है।

3.1.20 फ्रेजर के अनुसार जादू, विज्ञान और धर्म

फ्रेज़र के कार्य मुख्य रूप से जादू की समस्या और विज्ञान और धर्म से इसके संबंध से संबंधित हैं। इनमें टोटेम और प्रजनन क्षमता के दोष भी शामिल हैं। फ्रेज़र अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'गोल्डन बॉ', में यह बताते है कि आत्मवाद के अलावा, आदिम धर्म की कई और मान्यताएँ हैं और आत्मवाद को आदिम संस्कृति में एक वर्चस्ववादी विश्वास के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है। फ्रेज़र के अनुसार, दिन-ब-दिन अस्तित्व

के लिए प्रकृति को नियंत्रित करने के प्रयासों ने शुरुआती लोगों को जादुई प्रथाओं का सहारा लेने के लिए प्रेरित किया। यह जादुई संस्कारों और मंत्रों की अक्षमता का पता लगाने के बाद ही है कि प्रारंभिक मनुष्य राक्षसों, पूर्वजों-आत्माओं और देवताओं की तरह उच्च अलौकिक होने की अपील करने के लिए प्रेरित हुए होंगे। फ्रेज़र धर्म और जादू के बीच एक स्पष्ट अंतर खींचते है। प्रकृति को नियंत्रित करने के लिए, श्रेष्ठ शक्तियों का प्रचार धर्म है जबकि मंत्र और संस्कार के माध्यम से प्रत्यक्ष नियंत्रण फ्रेज़र कहते हैं कि जादुई प्रथाओं का मतलब है कि आदमी को सीधे प्रकृति को नियंत्रित करने का विश्वास है। यह रवैया वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के लिए जादुई संस्कार बनाता है। इसके अलावा, फ्रेज़र का तर्क है कि धर्म, सीधे तौर पर प्रकृति को नियंत्रित करने में उनकी अक्षमता को स्वीकार करता है और इस तरह से धर्म मनुष्य को जादू से ऊपर ले जाता है। यही नहीं, वह इस बात को बनाए रखता है कि धर्म विज्ञान के साथ-साथ मौजूद है।

फ्रेज़र के ये विचार कई यूरोपीय विद्वानों जैसे जर्मनी में प्रेयूस, इंग्लैंड में मारेट, फ्रांस में ह्यूबर्ट और मास के लिए शुरुवाती आधार थे। इन विद्वानों ने फ्रेज़र की आलोचना की और बताया कि विज्ञान और जादू एक जैसे प्रतीत हो सकते हैं लेकिन वे एक दूसरे से काफी अलग हैं। उदाहरण के लिए, विज्ञान कारण पर आधारित है और टिप्पणियों और प्रयोगों के आधार पर विकसित होता है जबकि जादू परंपरा से पैदा होता है और रहस्यवाद से घिरा होता है। यह टिप्पणियों और प्रयोगों द्वारा सत्यापित नहीं किया जा सकता है। दूसरे, वैज्ञानिक ज्ञान किसी के लिए भी खुला है जो इसे सीखना चाहते हैं जबकि जादुई सूत्र गुप्त रखे जाते हैं और केवल कुछ गिने-चुने लोगों को ही पढ़ाया जाता है। तीसरा, विज्ञान का आधार प्राकृतिक शक्तियों के विचार में है, जबकि जादू एक रहस्यमय शक्ति के विचार से उत्पन्न होता है, जिसे अलग-अलग आदिवासी समाजों में अलग-अलग नाम दिया गया है। मेलानिशियन इसे 'मना' कहते हैं, कुछ ऑस्ट्रेलियाई जनजातियां इसे 'अरंगुइल्था' कहती हैं, कई अमेरिकी भारतीय समूह इसे 'वकान', 'ऑरेंडा', 'मैनिटू' के नाम से जानते हैं। तो, इस तरह के अलौकिक बल में विश्वास को पूर्व-आयामी धर्म के सार के रूप में स्थापित किया गया है और इसे विज्ञान से पूरी तरह से अलग दिखाया गया है।

जिस तरह मालिनोव्स्की ने जादू की तुलना विज्ञान से की है, वे जादू और धर्म के बीच के संबंध को भी दर्शाते हैं। उनके अनुसार दोनों के बीच समानताएं इस प्रकार हैं।

3.1.21 जादू और धर्म में समानताएँ

i. जादू और धर्म दोनों 'पवित्र' के हैं और भावनात्मक तनाव के बीच पैदा होते हैं और कार्य करते हैं।

ii. दोनों घटनाएं भावनात्मक तनाव से बचकर निकलती हैं, जो आदिम लोगों की श्रेणी के तर्कसंगत ज्ञान के आधार पर दूर नहीं किया जा सकता है।

iii. पौराणिक परंपराएँ जादू और धर्म दोनों को समाहित करती हैं। दोनो क्षेत्रों से जुड़े टैबू और प्रथाएं उन्हें 'अपवित्र' के कार्यक्षेत्र से अलग करती हैं।

iv. दोनों का संबंध अतिमानवीय शक्तियों से है।
v. दोनों में परंपरागत ज्ञान पाया जाता है।
vi. दोनों को संपन्न करने हेतु विशेषज्ञ होते हैं।
vii. जादू एवं धर्म का उद्देश्य मानसिक तनाव व उद्वेगों की शक्ति से मुक्ति दिलाना है।
viii. मलिनोव्सकी के अनुसार धर्म भावनात्मक आवश्यकताओं से उत्पन्न होते हैं।
ix. दोनों कल्पना की उपज है।

3.1.22 जादू और धर्म में विभिन्नताएँ

धर्म और जादू के अंतर को देखे तो, हम पाते हैं की विभिन्नताएँ निम्नलिखित क्षेत्रों में है।

i. जादुई कृत्य एक साध्य के लिए एक साधन है, जिसका उन्हें पालन करना चाहिए। धार्मिक कृत्य आत्म-निहित कार्य हैं, आत्म-पूर्ति में प्रदर्शन किए जाते हैं।
ii. जादू की कला में एक स्पष्ट रूप से चिह्नित और सीमित तकनीक है जिसमें जादू, संस्कार और जादूगर मुख्य तत्व हैं। धर्म के पास ऐसी कोई सरल तकनीक नहीं है। इसके कई पहलू और उद्देश्य और इसके तर्क अपने विश्वास और व्यवहार के कार्य में निहित हैं।
iii. जादुई विश्वास एक विशेष वर्तनी के आधार पर कुछ परिणामों को लाने के लिए किसी शक्ति में विश्वास है। दूसरी ओर, धर्म अलौकिक शक्तियों की एक पूरी श्रृंखला है।
iv. धर्म में पौराणिक परंपरा जटिल, रचनात्मक और विश्वास के सिद्धांतों पर केंद्रित है। जादू में, शुरुआती पौराणिक कथाएँ का आत्मश्लाघी वर्णन है।
v. जादुई कला विशेषज्ञों के लिए सीमित है। यह पीढ़ी से पीढ़ी तक एक शमन से दूसरे तक को सौंप दिया जाता है। धर्म में हर कोई दीक्षा के माध्यम से एक सक्रिय भाग लेता है, उदाहरण के लिए समुदाय के प्रत्येक सदस्य को शामिल होना होता है। धर्म में आध्यात्मिक माध्यम की एक विशेष भूमिका है। लेकिन यह एक पेशेवर भूमिका नहीं है क्योंकि इसे सीखा जा सकता है।
vi. जादू में हमारे पास सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार होते हैं। क्योंकि जादू प्रत्यक्ष परिणामों के संदर्भ में व्यावहारिक निहितार्थ हैं जो सकारात्मक और नकारात्मक जादू के बीच महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जबकि धर्म का केवल सकारात्मक प्रकार ही है।
vii. जादू में अलौकिक शक्ति को अधीन करने का प्रयास किया जाता है जबकि धर्म में अधीनता स्वीकार की जाती है।
viii. दुर्खीम ने धर्म को पवित्र और जादू को अपवित्र माना।
ix. धर्म में व्यक्ति अलौकिक शक्ति से डरता है जबकि जादू में वह अलौकिक शक्ति को वश में करने का दावा करता है।

x. धर्म समाजिक तत्व है जबकि जादू व्यक्तिगत तथ्य है।

xi. जादू वैज्ञानिक है तथा इसमें कार्य कारण है, परंतु धर्म वैज्ञानिक नहीं है इसलिए इसमें कार्य कारण भी नहीं है।

xii. बोहानन के अनुसार 'जादू विश्व के अव्येक्तिक दृष्टि से देखता है, जबकि धर्म किसी देवता के रूप में व्यक्तिगत रूप में पाया जाता है।

xiii. मलिनोव्सकी के अनुसार जादू का उद्देश्य स्पष्ट एवं निश्चित है जबकि धर्म का उद्देश्य स्पष्ट वह निश्चित नहीं है।

3.1.23 जादू, विज्ञान और धर्म का प्रकार्य

आदिम ज्ञान का कार्य आदिवासियों को उनके परिवेश से परिचित कराना और उन्हें प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने में सक्षम बनाना है। यह उन्हें दुनिया की सभी जीवित प्रजातियों से अलग करता है। धर्म का कार्य मानसिक दृष्टिकोण स्थापित करना है, उदाहरण के लिए, परंपरा का सम्मान, प्रकृति के साथ समायोजन, साहस और अस्तित्व के लिए संघर्ष में और मृत्यु की स्थिति में आत्मविश्वास बनाए रखना। जादू का कार्य आदिम लोगों को उनके जीवित रहने के दिन-प्रतिदिन के कार्य में आने वाली कठिनाइयों से व्यावहारिक तरीके से आपूर्ति करना है। यह उन्हें अपरिहार्य समस्याओं के बावजूद जीवन के साथ ले जाने की क्षमता प्रदान करता है। इस तरह, मालिनोव्स्की (1948: 9) का तर्क है, 'जादू का कार्य मनुष्य के आशावाद का अनुष्ठान करना है, जिससे डर पर आशा की जीत में उसका विश्वास बढ़े।'

3.1.24 टोटम

आदिवासियों में यह मानता है कि टोटम में अलौकिक शक्ति का निवास होता है, जो उनके सामाजिक जीवन को नियंत्रित करती है। वस्तुतः पेड़, पौधा, पशु, सजीव, निर्जीव वस्तु हो सकती है। इसके प्रति समूह के लोगों की विशेष आस्था होती है तथा जिसे पवित्र समझा जाता है और उसे किसी भी प्रकार की हानि पहुंचाने की मनाही होती है।

टोटेमवाद शब्द एक व्यापक अर्थ में मान्यताओं के सम्मुच्य को दर्शाता है जो एक एकल व्यक्ति को एक मानव समूह से जोड़ने के प्रतीक के रूप में कार्य करता है। यह प्रतीक एक जानवर, पौधे, पेड़ पहाड़, पक्षी के बीच रिश्तेदारी को दर्शाता है। इस रिश्ते का तात्पर्य अनुष्ठानों और वर्जनाओं की एक श्रृंखला से है, विशेष रूप से आधारभूत और यौन संबंध, जो उन लोगों को बांधते हैं और जो खुद को एक ही गणचिन्ह के सदस्यों के रूप में पहचानते हैं। सर्वप्रथम यह शब्द totem के रूपांतर शब्द totam के रूप में, 1791 में अंग्रेजी यात्री **जे. लॉन्ग** द्वारा पूर्वी उत्तरी अमेरिका में ओजीबवा के एलगिनक्विन भारतीयों द्वारा रिश्तेदारी और पौधों और जानवरों की पूजा की कड़ी को नामित करने के लिए इस्तेमाल किया गया था। यद्यपि इस शब्द को गण टोटेम

के रूप में संदर्भित किया जाता है, **लॉन्ग** ने इसका उपयोग व्यक्तिगत गणचिन्ह का वर्णन करने के लिए किया, अर्थात, किसी व्यक्ति और एक जानवर (शायद ही कोई पौधा) के बीच एक व्यक्तिगत संबंध के अस्तित्व में विश्वास, जिसे आत्मा का एक संरक्षक माना जाता है।

मानवविज्ञान में, उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गणचिन्ह की धारणा की स्वीकृति शुरू हुई और बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में कम हो गई। इस अवधि के दौरान विद्वानों ने विशेष रूप से गणचिन्ह के धार्मिक पहलुओं पर अपना ध्यान केंद्रित किया, और उन्होंने इसे मुख्य रूप से पूजा के सबसे पुरातन रूपों में से एक माना। इसलिए कल्पना की गई थी, गणचिन्ह के विचार ने व्यापक प्रसिद्धि हासिल की और विभिन्न विषयों द्वारा इसका विश्लेषण किया गया। मानवशास्त्रीय बहस में इसकी शुरुआत **मैक्लेनायन** से हुई, जिन्होंने जोर देकर कहा कि कैसे तीन तत्वों द्वारा टोटेमवाद को प्रदर्शित किया गया: बुतपरस्ती, बहिर्गमन और मातृसत्तात्मक वंश। इन पहलुओं के लिए समूह को कुछ अनुष्ठानिक घटनाओं को छोड़कर, पौधे या जानवर बाद में नदियों को जोड़ के टोटेम के रूप में माना जाता है।

जहां एक ओर गणचिन्ह के विषय में मानवविज्ञानी संबंधी आंकड़ों की वृद्धि ने विभिन्न लेखकों द्वारा सुझाए गए महान उदविकासवादी संश्लेषणों में उनके समावेश को बढ़ावा दिया, वहीं दूसरी ओर यह पहले से ही उनके अधिक्रमण को झुठला रहा है। ज्ञात मानवविज्ञानी आंकड़ों का पहला महत्वपूर्ण तुलनात्मक वर्णन फ्रेज़र द्वारा 'टोटेमिज़्म और एक्सोगामी' (1910) में दिया गया, जिसमें तीन अलग-अलग परिकल्पनाएं जो टोटेम की उत्पत्ति से संबंधित हैं, का सुझाव दिया गया है। पहली परिकल्पना में कहा गया है कि टोटेम का पहला रूप एक व्यक्ति है, जिसमें यह विचार शामिल है कि जानवरों और पौधों में एक बाहरी आत्मा निवास करती है। दूसरी परिकल्पना टोटेम के जादुई पहलू पर जोर देती है, विशेष रूप से इसके ऑस्ट्रेलियाई संस्करण में व्यक्त की गई है। तीसरी परिकल्पना आदिम मानवों की कामुकता और गर्भाधान के बीच एक बंधन के अस्तित्व के बारे में गलतफहमी पर जोर देती है, जिसके परिणामस्वरूप यह विचार है कि बाद वाला जानवर या वनस्पति आत्मा के कार्यों पर निर्भर हो सकता है।

फ्रेज़र के स्मारकीय कार्यों में कुलीन सोच के विपरीत, विशेष रूप से पश्चिमी आधुनिक तर्कसंगतता पर जोर देने के उद्देश्य से टोटेम से संबंधित एकत्र मानवविज्ञानी आँकड़े की व्यवस्था है। इस दृष्टिकोण का एक परिणाम मानवविज्ञानी आँकडों में मौजूद विभिन्न प्रकार के मतभेदों को छिपाना था। इस विषय ने विद्वानों को यह समझने में सक्षम किया कि कैसे टोटेमिक घटनाओं की विविधता को एक एकल टाइपोलॉजी में बढ़ाया जा सकता है। अन्य विद्वानों द्वारा किए गए शोध ने उन्हें बहुत अलग घटनाओं की पहचान करने में सक्षम बनाया, और जब समानता दुर्लभ थी, तो सार्वभौमिक परिकल्पना तैयार करना आसान नहीं था। उपमाओं को अधिक सावधानी के साथ, और ऐतिहासिक और भौगोलिक निरंतरता और असंगति के विचार के साथ

सुझाव दिया जाने लगा। नतीजतन, टोटेम की धारणा के प्रसार, इसके प्रमुख गिरावट के साथ मेल खाती है। जिस वर्ष में फ्रेज़र के स्मारकीय कार्य किया, एक अन्य लेखक, गोल्डनवेइज़र (1910) ने जोर देकर कहा कि इस तरह के अलग-अलग आँकड़ों को कुलों द्वारा सामाजिक संगठनों के रूप में शामिल करना भ्रामक था, पौधों और जानवरों के नाम से चिन्हित करना, और अंत में यह विश्वास करना एक ही स्थान के जनजाती के सदस्यों और एक पौधे या जानवर के बीच एक वास्तविक या रहस्यमय संबंध है। ये सभी घटनाएं हमेशा समान रूप से मौजूद नहीं थीं। इसके अलावा, कई मामलों में यह एक दूसरे से स्वतंत्र भी थे।

टोटेमवाद की समस्या को उदविकासवादी दृष्टिकोण ने तुलनात्मक पद्धति के आवश्यक रूप से निर्धारित नहीं किया। यह मानना पर्याप्त था कि टोटेम धर्म के सबसे पुरातन रूपों में से एक हो सकता है। इस प्रकार दुर्खीम (1912) केवल ऑस्ट्रेलियाई टोटेम में रुचि रखते थे, जो उन्होंने इसके सबसे पुरातन रूप होने का दावा किया था। दुर्खीम के अनुसार टोटेम स्वयं समाज का मुख्य प्रतीक है। इस तरह से उनके टोटेम का विश्लेषण धर्म और सामाज के बीच के अटूट संबंध का एक उदाहरण है। दुर्खीम का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण पिछले दृष्टिकोण का एक विकल्प था जिसमें संस्थानों और धार्मिक घटनाओं के निर्माण से संबंधित एक मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण मौजूद था। इस नए दृष्टिकोण द्वारा पेश की गई बातें स्पष्ट थी। सामाजिक घटनाओं को सामाज द्वारा ही समझाया गया था और न कि आदिम सोच के बारे में अधिक या कम कल्पनात्मक अनुमानों द्वारा।

दुर्खीम ने ऑस्ट्रेलिया की अरुन्टा जनजाति के अध्ययन के दौरान पवित्र तथा अपवित्र को समझने के लिए टोटम का सहारा लिया। दुर्खीम के अनुसार टोटमवाद ही समस्त धर्मों का प्रारंभिक स्तर रहा है।

दुर्खीम में टोटम की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया

- ✓ प्रत्येक जनजाति का एक टोटम होता है जिसके साथ सभी सदस्य अपना पवित्र संबंध मानते हैं।
- ✓ जनजाति के सदस्यों का विश्वास है कि संकट के समय टोटम उनकी रक्षा करेगा।
- ✓ टोटम पवित्र है उसे हानि पहुंचाना पाप है।
- ✓ टोटम के चिन्ह घर में लगाए जाते हैं तथा शरीर पर गुदवाएं जाते हैं।
- ✓ टोटम संबंधी नियमों के उल्लंघन पर सामाजिक निंदा की जाती है।
- ✓ टोटम सामूहिक प्रतिनिधित्व का प्रतीक है।
- ✓ टोटम बहिरविवाही होता है।

हालाँकि दुर्खीम की दलीलें बहुत ही तीखी थीं, लेकिन टोटेम के अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण ने मनोविश्लेषण के पिता, सिगमंड फ्रायड से एक नया मोड़ दिया। अपने काम टोटेम अंड टेबू (1912) में, फ्रायड ने टोटेमिज्म, एलिमेटरी और सेक्सुअल और ओडिपस कॉम्प्लेक्स से संबंधित दो प्रमुख

निषेधों के बीच एक समानता स्थापित करने की कोशिश की। डार्विन की परिकल्पना के पक्ष में मानवविज्ञान संबंधी आंकड़ों को कम करके आंका गया था, जो तथाकथित आदिम समाज के प्रागैतिहासिक अस्तित्व के विषय में था। फ्रायड के विश्लेषण को एक सामाजिक परिदृश्य माना जाता है, जिसमें अभी तक एक प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है। पूरे समूह को एक ही व्यक्ति, पिता, द्वारा निरंकुश तरीके से शासन किया जाता है, जो अपनी प्रवृत्ति को नियंत्रित करने में असमर्थ है। यह निरंकुश पिता एकमात्र ऐसा व्यक्ति होने का दावा करता है जिसकी समूह की महिलाओं तक पहुंच है। इस तरह की असहनीय स्थिति ने उनके खिलाफ बेटों के हिंसक विद्रोह को जन्म दिया। सबसे कम उम्र के पुरुषों ने निरंकुश पिता को मार डाला, और फिर उन्हें पछतावा होने लगा। अपराध के लिए अपराध की भावना ने बेटों को एक प्रतीकात्मक आकृति, एक कुलीन प्रजाति के साथ पिता का स्थान दिया। इसी समय, समूह की महिलाओं के साथ यौन संबंधों का निषेध, जो पहले उनके निरंकुश पिता द्वारा निर्धारित किया गया था, अनायास उनके द्वारा मनाया जाने लगा। यह टोटेम के रूप में प्रकट होने का कारण भी होगा।

हालांकि दुर्खीम द्वारा सामने रखी गई दलीलों के विरोध में, फ्रायड द्वारा रचित टोटेम की यह विशुद्ध मनोवैज्ञानिक व्याख्या कुछ हद तक समान है क्योंकि दोनों लेखक सांस्कृतिक तथ्यों के उदविकासवादी और सार्वभौमिक दृष्टिकोण को साझा करते हैं। टोटेम की धारणा में रुचि का नुकसान तभी शुरू हुआ जब विश्लेषण के उदविकासवादी परिप्रेक्ष्य को छोड़ दिया गया। जब तक इसे वैध नहीं माना जाता था, तब तक मानवतावाद में रुचि को इसके सार्वभौमिक पहलू द्वारा विश्लेषित किया गया था, जिसे मानव विकास के एक विशेष चरण को व्यक्त करने के रूप में माना जाता है। तथ्य यह है कि टोटेम के एक विशेष और अनुभवजन्य रूप में किसी भी लक्षण को शामिल नहीं किया जा सकता है जिसे टोटेम संस्था का एक अभिन्न अंग माना जाता है। किसी भी मामले में, वे आवश्यक रूप से सांस्कृतिक विकास के एक अलग चरण में मौजूद थे। इसलिए मानवविज्ञानी साक्ष्य को अपनी स्थानीय प्रासंगिकता के लिए इतना महत्वपूर्ण नहीं माना जाता था जितना कि सार्वभौमिक साक्ष्य को माना जाता है।

जबकि एल्किन अंतिम लेखकों में से एक थे, यह माना कि मानवविज्ञानी विश्लेषण अभी भी टोटेम की अधिक सामान्यीकृत व्याख्या की दिशा में विकसित किया जा सकता है। वैन गेनप (1920) यह पहचानने वाले पहले लेखकों में थे कि इसे सार्वभौमिक सांस्कृतिक नहीं माना जा सकता है। टोटेमवाद की सार्वभौमिकता की कमी को कुछ अमेरिकी मानवविज्ञानी ने फिर से स्वीकार किया था। सांस्कृतिक तथ्यों के विश्लेषण के ऐतिहासिक और सापेक्षवादी तरीकों ने संयुक्त राज्य में विशेष स्थान हासिल किया। बोआस, लोवी, और क्रोबेर जैसे लेखक मानवविज्ञानी आँकड़ों की विविधता पर जोर देने के लिए बहुत कार्य किया। मालिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राउन जैसे ब्रिटिश प्रकार्यवादी लगभग समान दिशा में चले। बाद के काम में विशेष रूप से सबसे पुरातन समाजों की प्रवृत्ति, जानवरों और पौधों को समूह की भलाई सुनिश्चित करने में सक्षम पूजा की वस्तुओं में बदलने से संबंधित महत्वपूर्ण सुझाव आए।

टोटेमवाद की धारणा के विघटन की ओर एक महत्वपूर्ण मोड़ लेवी स्ट्रॉस की प्रसिद्ध पुस्तक, Le Tote misme aujourd’hui (Totemism Today) (1962) के प्रकाशन द्वारा दर्शाया गया है, जिसमें लेखक "टोटेमिक भ्रम" की बात करता है। टोटेम को धर्म के एक आदिम रूप के अनुरूप नहीं समझा जाना चाहिए है, अपितु इसे विभिन्न प्रजातियों को वर्गीकृत करने के लिए एक व्यापक मानव प्रवृत्ति के रूप में समझा जाना चाहिए। लेवी स्ट्रॉस के अनुसार, टोटेम को एक मानव समूह और एक प्रजाति के बीच संबंध द्वारा इतना अधिक नहीं दर्शाया जाना चाहिए बल्कि इसका उपयोग विभिन्न मानव समूहों के बीच की विभिन्नता दर्शाने के लिए किया जाना चाहिए। इस प्रकार का टोटेम का विश्लेषण, प्राकृतिक दुनिया से ली गई उपमाओं का सहारा लेकर मानव समूहों के बीच के अंतर को दर्शाने में सक्षम होगा। टोटेमवाद को केवल इस आधार पर समझा जा सकता है कि मतभेदों की पूरी प्रणाली, एकल तत्वों की तुलना नहीं की जाती है। टोटेमवाद के माध्यम से, मानव समूहों के बीच संबंधों और मतभेदों को जानवरों और पौधों की प्रजातियों के बीच अंतर के साथ उपमाओं द्वारा परिकल्पित किया जा सकता है। लेवी स्ट्रॉस के अनुसार, यह टोटेमवाद का सबसे महत्वपूर्ण पहलू होगा। वह इस कथन के माध्यम से अपनी राय का समर्थन करते हैं कि टोटेम प्रजातियां सोच के लिए उपयोगी हैं और खाने के लिए नहीं।

3.1.25 टोटम की परिभाषाएँ

- **दुर्खीम** के अनुसार टोटम, धर्म की उत्पत्ति का आधार है।
- **रेडक्लीफ ब्राउन** के अनुसार – टोटम समाज में श्रम का अनुष्ठानिक विभाजन भी करता है।
- **फोरतेस** के अनुसार टोटम कुल पूर्वजों की शक्ति का प्रतीक है।
- **फ्रायड** ने टोटम और उससे संबंधित सिद्धांत की उत्पत्ति ओडियस कांप्लेक्स से मानी है।

3.1.26 टोटम के प्रकार

पिडिंगटन के अनुसार टोटम के निम्नलिखित प्रकार होते हैं

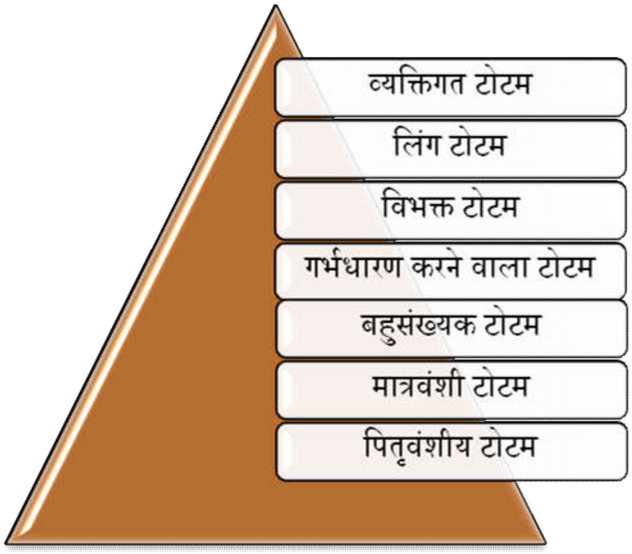

3.1.27 सारांश (Summary)

इस इकाई में आप ने पढ़ा की आदिम विज्ञान का कार्य आदिवासियों को उनके परिवेश से परिचित कराना और उन्हें प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने में सक्षम बनाना है। यह उन्हें दुनिया की सभी जीवित प्रजातियों से अलग करता है। धर्म का कार्य मानसिक दृष्टिकोण स्थापित करना है, उदाहरण के लिए, परंपरा का सम्मान, प्रकृति के साथ समायोजन, साहस और अस्तित्व के लिए संघर्ष में और मृत्यु की स्थिति में आत्मविश्वास बनाए रखना। जादू का कार्य आदिम लोगों को उनके जीवित रहने के दिन-प्रतिदिन के कार्य में आने वाली कठिनाइयों से व्यावहारिक तरीके से आपूर्ति करना है। यह उन्हें अपरिहार्य समस्याओं के बावजूद जीवन के साथ ले जाने की क्षमता प्रदान करता है। आदिवासियों में यह मान्यता है कि टोटम में अलौकिक शक्ति का निवास होता है, जो उनके सामाजिक जीवन को नियंत्रित करती है। इसके प्रति समूह के लोगों की विशेष आस्था होती है तथा जिसे पवित्र समझा जाता है और उसे किसी भी प्रकार की हानि पहुंचाने की मनाही होती है।

3.1.28 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1."धर्म आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास है"धर्म की उक्त परिभाषा किस मानवशास्त्रीय द्वारा दी गयी-

(क)मैक्स मूलर (ख) दुर्खीम (ग) टाइलर (घ) मेरिट

2.धर्म की उत्पत्ति के संबंध में आत्मावाद या जिववाद का सिद्धांत किसने दिया-

(क)फ्रेज़र (ख) टाइलर (ग) दुर्खीम (घ) मेरिट

3.बोंगावाद की अवधारणा किस मानवशास्त्रीय द्वारा दी गयी-

(क)मजूमदार (ख) फ्रेज़र (ग) मैलिनोवस्की (घ) मैक्स मूलर

4."स्वर्ग का साम्राज्य एक महिमा मंडित समाज है" किसने कहा-

(क)टाइलर (ख) मैक्स मूलर (ग) फ्रेज़र (घ) दुर्खीम

5. जादू को सफ़ेद जादू तथा काला जादू में किसने विभाजित किया-

(क) मजूमदार (ख) फ्रेज़र (ग) मैलिनोवस्की (घ) मैक्स मूलर

उत्तर- 1. (ग) टाइलर, 2. (ख) टाइलर, 3. (क) मजूमदार, 4. (घ) दुर्खीम, 5. (ग) मैलिनोवस्की

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. धर्म की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांतों और धर्म के प्रकार्य की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. जादू क्या है ? जादू के प्रकार, विशेषताएं और क्रियाओं के तत्वों को स्पष्ट कीजिए।
3. जादू को परिभाषित करते हुए जादू की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
4. जादू एवं विज्ञान की समानताओं को स्पष्ट कीजिए।
5. धर्म को परिभाषित करते हुए धर्म की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. धर्म क्या है? इसकी विशेषताएं और आवश्यक तत्व क्या हैं?
2. विज्ञान क्या है? जादू, विज्ञान और धर्म के प्रकार्य क्या हैं?
3. जादू एवं विज्ञान में समानताएं एवं अंतर क्या हैं ?
4. जादू एवं धर्म में समानता एवं अंतर क्या है?
5. टोटम क्या है इसके प्रकार कितने है?

3.1.29 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Cunningham, G. (1999). Religion and Magic: Approaches and Theories. Edinburgh: Edinburgh University Press.
2. Durkheim, Émile. (1965). The Elementary Forms of Religious Life (Translated by J. W. Swain). New York: Free Press.
3. Evans-Pritchard, E. E. (1965). Theories of Primitive Religion. Oxford: Clarendon Press.
4. Frazer, J. G. (1910). Totemism and Exogamy: A Treatise on Certain Early Forms of Superstition and Society. London: Macmillan.
5. Freud, S. (1912). Totem und Tabu. Vienna: Heller.
6. Kieckefer, R. (1989). Magic in the Middle Age. Cambridge: Cambridge University Press.
7. Levack, B. (1995). The Witch Hunt in Early Modern Europe. London: Longman.
8. Marx, Karl and Friedrich Engels. (1957). On Religion. New York: Schocken Books.
9. Malinowski, B. (1982). Magic, Science and Religion and Other Essays. London: Souvenir Press.
10. Malinowski, B. (1974). *Magic, Science and Religion and Other Essays.* London: Souvenir Pres.
11. O'Dea, Thomas F. (1966). The Sociology of Religion. Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.
12. Tambiah, S. J. (1985). Culture, Thought and Social Action. Cambridge: Harvard University Press. pp. 17-86.
13. Weber, Max. (1958). The Religion of India (Translated by H. H. Gerth and D. Martindale). Glencoe, IL: Free Press.
14. Weber, Max. (1963). The Sociology of Religion (Translated by E. Fiscshoff). Boston, MA: Beacon Press.
15. Yinger, Milton. (1970). The Scientific Study of Religion. New York: Macmillan.

इकाई 2 वंश, गोत्र एवं भ्रातृदल
(Lineage, Clan and Phratry)

इकाई की रूपरेखा

5.2.0 उद्देश्य
5.2.1 प्रस्तावना (Introduction)
5.2.2 वंश (Lineage)
5.2.3 गोत्र (Clan)
3.2.3.1 गोत्र की परिभाषाएँ
3.2.3.2 गोत्र के लक्षण
3.2.3.3 गोत्र के प्रकार
3.2.3.4 गोत्र और टोटेम
3.2.3.5 गोत्र के कार्य
3.2.4 भ्रातृदल (फेट्री)
3.2.5 अर्द्धांश (Moiety)
3.2.6 वंश समूह का संयोजन
3.2.7 सारांश (Summary)
3.2.8 बोध प्रश्न
3.2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप यह जानने में सक्षम होंगे कि :

- वंश क्या होता है और उसकी विशेषताएं क्या होती है?
- गोत्र क्या है? गोत्र के लक्षण, प्रकार और कार्य क्या हैं?
- भ्रातृदल का क्या अर्थ है?

3.2.1 प्रस्तावना (Introduction)

परिजन समूह (kin groups) वे सामाजिक इकाइयाँ हैं जिनकी सदस्यता का पता लगाया जा सकता है और जिनकी गतिविधियों को देखा जा सकता है। विभिन्न समाजों में विभिन्न प्रकार के परिजन समूह होते हैं। ये परिवार समूह हो सकते हैं जैसे नाभिक परिवार, विस्तारित परिवार जिसमें संयुक्त परिवार या वंश समूह (descent) सम्मलित हों। नाभिक परिवार एक ऐसा परिजन समूह है जिसमें एक विवाहित जोड़े और उनके अविवाहित बच्चे शामिल हैं। लेकिन परिवार के कई और प्रकार हैं उदाहरण के लिए, विस्तारित परिवार, संयुक्त परिवार। इसके अलावा, गैर-औद्योगिक समाजों के बीच वंश समूह एक महत्वपूर्ण और बुनियादी परिजन समूह है। यह एक सामाजिक समूह है जिसके सदस्य सामान्य वंशावली का दावा करते हैं।

परिवारों के विपरीत, वंश समूहों में पीढ़ियों के माध्यम से निरंतरता रहती है। भले ही इसकी सदस्यता जन्म और मृत्य, अंदर जाने और बाहर निकलने के कारण बदलती रहती है, वंश समूह बने रहते हैं। इसकी सदस्यता जन्म के आधार पर नामांकित है और जीवन भर रहती है। वंश समूह कई प्रकार के होते हैं, जैसे वंश, गोत्र और भ्रातृदल (फेट्री और अर्द्धांश)। इस इकाई में हम इन्हीं अवधारणाओं पर चर्चा केंद्रित करेंगे - वंश, गोत्र और भ्रातृदल (फेट्री और अर्द्धांश)।

3.2.2 वंश (Lineage)

एक वंश, एक ऐसा वंश समूह है जो अपने सामान्य वंश को ज्ञात पूर्वज से प्रदर्शित/ ज्ञात कर सकता है। एकल वंश मातृवंशीय या पितृवंशीय हो सकती है, यह इस बात पर निर्भर कर्ता है कि वंश माता या पिता के माध्यम से पता लगाया जा रहा। मातृवंशीय में वंश का पता माँ के माध्यम से लगाया जाता है जबकि पितृवंशीय में वंश का पता, पिता के माध्यम से लगाया जाता है। वंश को अक्सर सामान्य पूर्वज या पूर्वज के नाम से निर्दिष्ट किया जाता है।

कुछ समाजों में यह एक गोत्र खंड कि वंशावली दर्शाता है। **इवांस-प्रिचार्ड** पूर्वी अफ्रीकी नुअर जनजाति के बीच ऐसे समूहों के चार प्रकार का वर्णन करते हैं वह खण्डित वंश (segment lineage) कहते हैं। एक नुअर गोत्र, सपिण्ड (agnates) का सबसे बड़ा समूह है जो एक सामान्य पूर्वज से उनके वंश का पता लगाता है और जिनके बीच विवाह निषिद्ध है और यौन संबंध अनाचार माना जाता है। इस वंशावली संरचना के तहत, वंशावली के चार अंश हैं- अधिकतम, प्रमुख, अप्रमुख और न्यूनतम। यहाँ गोत्र A को अधिकतम वंश (lineages) B और C में प्रमुख वंश विभाजित किया गया है जो बाद में अप्रमुख वंश (lineage) D, E, F, और G में विभाजित होता है। अप्रमुख वंशावली D और E (lineage) H, I, J और K में विभाजित किया गया। आगे अप्रमुख वंश F और G न्यूनतम L, M, N और O में विभाजित हैं।

अधिकतम अंश	A							
प्रमुख अंश	B				C			
अप्रमुख अंश	D		E		F		G	
न्यूनतम अंश	H	I	J	K	L	M	N	O

खण्डित वंश (segment lineage)

भारत के मणिपुर के मैतेई में भी कुछ हद तक नुअर के समान तरीके से खण्डित वंश (segment lineage) हैं। टी. आर. सिंह इसका वर्णन करते हैं। उदाहरण के लिए, *मुटम वंश, निंगथोजा* गोत्र का वंश है। वंश के सदस्यों का मानना है कि वे *खमलंग पमसाबा* और*अंगुबा नेंग्लौ लांथाबाव चानू* से उतरे हैं। *खमलांग पंसबा* राजा *इरेंगा* (984- 1074) का बेटा था और उसकी एक पत्नी जिसका नाम *होरिमा पिदोंगानुभाबी* था। *मुटुम*, अधिकतम वंशावली में लगभग 34 प्रमुख वंश हैं, जैसे, *लालहंबुंग तबा* (लालहंबुंग में बसा हुआ), *मुटुम थानसाबा* (जिसका अर्थ है दाओ-निर्माता) आदि। ये प्रमुख वंश आगे चलकर अप्रमुख वंश में विभाजित होते हैं, प्रत्येक का नाम पर अभिविन्यास के वंश और नए निवास स्थान का असर होता है। इसका एक उदाहरण *खोंगमैन डागी खैबा मुतुम चंदखोंगटाबा* है, यानी चंद्राखोंग में बसने वाला मुतुम जो खोंगमैन तबा प्रमुख समूह से अलग हो गया है। कम से कम वंशावली में उप-विभाजन को प्रत्येक पर पहचाने जाने वाले खंड के नाम से पहचाना जाता है, जैसे कि *मुतुल नंबुल तबला बिरसिंह* का अर्थ है बिरसिंग की अगुवाई में मुटाम नांबुल तबला समूह का खंड। सबसे छोटे खंड, न्यूनतम वंश का सामाजिक संबंध *फुन्गा पांबा* (एक सामान्य चूल्हा साझा करना) के रूप में जाना जाता है, जिसके द्वारा इस संज्ञानात्मक समूह के सदस्य एक निश्चित अवधि के लिए सामाजिक अवहेलना का निरीक्षण करते हैं जब कोई व्यक्ति इस इकाई के भीतर पैदा होता है या मर जाता है। इस तरह, मैतेई के अतिरंजित वंशावली खंडित हैं।

एक बच्चे के पास वंश के सदस्य होने के कारण संपत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त करने का दावा होता है। प्रतिष्ठित पद के उत्तराधिकारी को निश्चित किया जा सकता है, यहां तक कि राजसत्ता का हकदार भी ज्ञात किया जा सकता है। एक वंश के सदस्यों में अक्सर आवासीय एकता और निश्चित क्षेत्र होते हैं। ऐसे वंशावली को स्थानीय वंश समूह के रूप में वर्णित किया जाता है। मैतेई के बीच, स्थानीय लोगों को आमतौर पर प्रमुख वंश के नाम पर रखा जाता है, उदाहरण के लिए, वंश के बाद *ओइनम* - *ओइनम*, *सोइबाम लीकाई* वंश के नाम के बाद- *सोइबम*, आदि।

3.2.3 गोत्र (Clan)

गोत्र सामाज के संगठन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह रक्त संबंधों के आधार पर वंश का एक व्यापक रूप है। एक वंश का गठन माता या पिता के वंश के सभी रिश्तेदारों और वंश में पूर्वजों और पूर्वजों के सभी वंशों को शामिल करके किया जाता है। इस तरह कई वंशावली एक गोत्र/टोटेम का गठन करते हैं। वंश कुछ प्रमुख ग्रंथों, कथाओं या परिवार के पूर्वज की कल्पना से निकलता है। प्रमुख और सम्मानित होने के नाते इस पूर्वज को इसके संस्थापक के रूप में स्वीकार किया जाता है।

परिवार के सभी वंशज के नाम एक उपनाम से शुरू किए जाते हैं। माता और पिता दोनों के वंश को मिलाकर एक गोत्र कभी नहीं बनता है। यह एकतरफा है। यह या तो मातृसत्तात्मक या पितृसत्तात्मक वंश का हो सकता है।

कई वंश, एक साथ एक गोत्र का गठन करते हैं। गोत्र के नाम विभिन्न आधारों पर आधारित हैं। यह एक संत, कुलदेवता, स्थान या स्थानापन्न नाम के आधार पर भी हो सकता है।

अलग-अलग स्थानों पर इसे अलग-अलग नाम से जानते हैं, विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका में कुछ मानवविज्ञानीयों ने मातृवंश समूहों को अलग करने के लिए `क्लान' शब्द का उपयोग करते हैं, जिसमें वंश को मातृपक्ष में गिना जाता है। वह समूह जो पिता की ओर से वंशज की प्रतिपूर्ति करता है, वह gens कहलाता है। इसी प्रकार जिसे ब्रिटिश मानवशास्त्री क्लान कहते हैं उसे अमेरिकी मानवशास्त्री sib कहते हैं । **लुई** ने sib शब्द को एक सामान्य शब्द के रूप में चुना और इसे माँ-भाई और पिता-भाई में विभेदित किया। हालांकि, शब्द 'गोत्र' को व्यापक रूप से उन व्यापक एकतरफा रिश्तेदारी समुच्चय के रूप में निरूपित करने के लिए भी उपयोग किया जाता है।

एक गोत्र परिजनों का एक समूह है, जिसके सदस्य खुद को मूल निवासी मानते हैं तथा सामान पूर्वजों के वंशज मानते हैं। यह आमतौर पर एक गैर-कॉरपोरेट वंश समूह होता है, जिसका लिंक उस पूर्वज को भी नहीं पता होता है या वह पता लगाने योग्य नहीं होता है। पितृवंशीय वंश के साथ कुलों को पितृवंशीय गोत्र वाला कहा जाता है; मातृवंशीय वंश के साथ कुलों को मातृवंशीय गोत्र वाला कहा जाता है।

गोत्र की सदस्यता स्थानीयकृत के बजाय बिखरी हुई है और यह आमतौर पर मूर्त रूप से संपत्ति नहीं रखती है। यह औपचारिक मामलों कि एक इकाई हो सकता है। गोत्र एकीकृत कार्यों को संभाल सकते हैं। जैसे वंशावली, वैवाहिक बहिर्गमन को विनियमित कर सकती है। वे अपने स्थानीय समूहों के क्षेत्र में प्रवेश का अधिकार उसी गोत्र के व्यक्तियों को देते हैं जो अन्य क्षेत्रों में रहते हैं। आमतौर पर एक साथी के सदस्यों को संरक्षण और आतिथ्य देने की उम्मीद की जाती है। हालांकि, जैसा कि दुनिया में गोत्र संगठन की एक महान विविधता है, कुछ समाजों में क्षेत्रीय रूप से गोत्र हैं। इस प्रकार के गोत्र के सदस्य एक विशेष क्षेत्र में फैल सकते

हैं और वे एक विशेष क्षेत्र तक ही सीमित रहते हैं। ओडीशा के कोरापुट के ओरल-गुढ़ा, प्रादेशिक कुलों का एक विशिष्ट उदाहरण हैं।

3.2.3.1 गोत्र की परिभाषाएँ

मजूमदार और मदान ने गोत्र को यह कहते हुए परिभाषित किया है कि, "एक गोत्र या टोटेम में अक्सर कुछ वंश और कुल का संयोजन होता है, जो अंततः एक पौराणिक पूर्वज से पता लगाया जा सकता है, जो एक मानव या मानव जैसा जानवर या पौधा भी हो सकता है"।

विलियम पी. स्कॉट लिखते हैं, गोत्र का तात्पर्य "एकवंशीय परिजन-समूह या तो मातृसत्तात्मक या पितृसत्तात्मक वंश पर आधारित है।

आर. एन. शर्मा के अनुसार, "एक गोत्र एकवंशीय परिवारों का संग्रह है, जिनके सदस्य खुद को एक वास्तविक या पौराणिक पूर्वज के सामान्य वंशज मानते हैं"।

एक गोत्र मजबूत 'हम कि भावना ' पर आधारित है। टोटेम के मुखिया का अधिकार स्वीकार किया जाता है। वह पूरी संपत्ति पर नियंत्रण रखता है और पुजारी के रूप में भी कार्य करता है। गोत्र/टोटेम एक बहिर्विवाही सामाजिक समूह है। गोत्र के बाहर शादियां की जाती हैं। सदस्य गोत्र/टोटेम के अनुशासन से बंधे होते हैं। गंभीर अनुशासनहीनता के आधार पर किसी सदस्य को बहिष्कृत किया जा सकता है। इसे सबसे कठोर सजा माना जाता है।

3.2.3.2 गोत्र के लक्षण:

गोत्र की निम्नलिखित विशेषताएं इसकी पूर्व परिभाषाओं से स्पष्ट हैं:

1. बहिर्विवाह समूह: गोत्र एक बहिर्विवाह समूह है क्योंकि एक गोत्र के सभी सदस्य खुद को एक पूर्वज के वंशज मानते हैं। नतीजतन, वे अपने गोत्र के किसी सदस्य से शादी नहीं करते हैं। विवाह केवल एक ही गोत्र से किया जाता है।

2. सामान्य पूर्वज: गोत्र का संगठन एक सामान्य पूर्वज के गर्भाधान पर आधारित है। पूर्वज वास्तविक या पौराणिक हो सकते हैं।

3. एकवंशीय: गोत्र की प्रकृति एकवंशीय है। एक गोत्र में या तो माता की ओर से सभी परिवारों का संग्रह होता है या पिता की तरफ के सभी परिवारों का।

3.2.3.3 गोत्र के प्रकार:

इसकी एकवंशीय प्रकृति के अनुसार, गोत्र दो प्रकार के हो सकते हैं:

1. मातृवंशीय गोत्र : इसमें एक महिला के सभी वंशों को एक गोत्र का सदस्य माना जाता है। वहीं महिला की बहनें और भाई भी इस गोत्र के सदस्य हैं। इस तरह एक मातृवंशीय गोत्र में महिला, उसकी संतान, उसकी बहनें और उनके बच्चे शामिल हैं। लेकिन इसमें भाइयों के बच्चे शामिल नहीं हैं।

2. पितृवंशीय गोत्र: इस गोत्र में आदमी को उसके बच्चे, उसके भाइयों और बहन और भाइयों के बच्चों को शामिल किया गया है लेकिन बहनों को नहीं।

विभिन्न आधारों के आधार पर गोत्र के अलग-अलग नाम हैं। उनमें से मुख्य आधार निम्नलिखित हैं:

1. संतों के नाम के बाद, उदाहरण के लिए, शांडिल्य, भारद्वाज, आदि।
2. कुलदेवता के नाम के बाद जैसे कुंजम, नागसोरी आदि।
3. स्थानापन्न नामों के आधार पर जैसे कि कामार, जगत आदि।
4. कुछ स्थलाकृति के आधार पर, उदाहरण के लिए महानदिया, जौनपुरिया आदि।

3.2.3.4 गोत्र और टोटेम

एक अन्य प्रकार का गोत्र संगठन वह है जो टोटेम के आधार पर आयोजित किया जाता है। Totem शब्द ओजीबवा इंडियन शब्द ototeman ओटोटेमेन से आया है, जिसका अर्थ है `मेरा एक रिश्तेदार'। गोल्डनवाइज़र ने उल्लेख किया कि टोटेम से जुड़े वंश टोटेमिक पौधे या जानवर से वंश का पता लगा सकते हैं। टोटेमिक प्रजातियों की हत्या और / या भोजन करना वर्जित किया जा सकता है, लेकिन औपचारिक अवसरों पर इसका सेवन कर सकते हैं। एक टोटेमिक प्रजाति की मृत्यु पर शोक मनाया जा सकता है। टोटेम जनजाति के नाम टोटेम के आधार पर होते हैं। टोटेमिक कबीले उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, मेलानेशिया और भारत में पाए जाते हैं। उत्तर अमेरिकी भारतीयों के बीच भालू टोटेम के सदस्यों का मानना है कि वे एक भालू और एक महिला कि संतान हैं, और भेंडिया टोटेम के सदस्यों का मानना है कि एक भेंडिया और एक महिला उनके पूर्वज थे। मध्य भारत में कमार का मानना है कि उनके पूर्वज एक बकरे और एक लड़की हैं।

स्टीफन फुक्स (1982) ने टोटेम को पूर्वजों के उद्धारकर्ता के रूप में टोटेमिक प्रजातियों के बारे में उल्लेख किया है। मध्य भारत के गोंड में एक बकरी का गोत्र होता है क्योंकि उनके पूर्वजों ने एक बार बलि के लिए एक बकरी चुराई थी; लेकिन वे चोरी करने की सजा से बच गए क्योंकि बकरी एक सुअर में बदल गई

और उसके बाद उन्होंने बकरी को अपना टोटेम मान लिया। मध्य भारत के कोरकू में पेड़ टोटेम हैं, क्योंकि उनके पूर्वज अपने दुश्मनों से खुद को बचाने के लिए विभिन्न पेड़ों के नीचे छिपते हैं। मध्य भारत के बालाही के पास सांप और उल्लू के टोटेम हैं; इन जानवरों ने अपने पूर्वजों को उस समय बचाया और संरक्षित किया जब दुर्घटना से वे असहाय शिशुओं के रूप में मैदान में पीछे रह गए थे। जब कोई टोटेम/गोत्र आकार में बहुत बड़ा हो जाता है, तो इसे खंडित किया जा सकता है और प्रत्येक खंड नए टोटेम के रूप में टोटेमिक प्रजातियों का एक हिस्सा प्राप्त कर सकता है। उदाहरण के लिए, एक बाघ कबीला वर्गों में विभाजित हो सकता है जो बाघ के सिर, पूंछ, पंजे, दांत आदि को उनके टोटेम के रूप में मानते हैं। यह एक फेट्री की अवधारणा को जन्म देता है, भाई कुलों का समूह। टोटेम को कभी-कभी कुछ उपनामों के नाम पर रखा जाता है और ऐसे कुलों को ज्यादातर ऑस्ट्रेलियाई जनजातियों में पाया जाता है। अमेरिका के क्रो-इंडियन को भी तेरह अतिउत्साही मातृवंशीय कुलों में विभाजित किया गया है। इन इकाइयों को उपनामों के बाद नामित किया गया है।

गोत्र जनजाति में टोटेम के नाम से जाना जाता है, यह एक जनजाति का एक बहिर्विवाही विभाजन है, जिसके सदस्यों को कुछ सामान्य संबंधों द्वारा एक दूसरे से संबंधित माना जाता है। यह एक सामान्य टोटेम के कब्जे या एक सामान्य क्षेत्र के निवास स्थान से वंश में विश्वास हो सकता है। इस प्रकार, संक्षेप में, गोत्र एकतरफा परिवारों का संग्रह है, जिनके सदस्य खुद को वास्तविक या पौराणिक पूर्वजों के सामान्य वंशज मानते हैं।

गोत्र और टोटेम के बीच अंतर

क्र. सं.	**गोत्र**	**टोटेम**
1.	यह जातियों में पाया जाता है	यह जनजातियों में पाया जाता है
2.	इसकी कोई निश्चित भाषा नहीं है	इसकी निश्चित भाषा है
3.	भौगोलिक सीमाओं से बंधा नहीं है	भौगोलिक सीमाओं से बंधा है
4.	इसकी पुजा की जाती है	इसका संरक्षण एवं पुजा की जाती है।
5.	गोत्र केवल ‘मानव’ ही हो सकता है, आमतौर पर कोई ऋषि	टोटेम मानव,पहाड़,पशु,पक्षी,पौधे हो सकते हैं
6.	विशेष उत्सवों में पूर्वज के रूप में इसको भोग लगाया जाता है	विशेष उत्सवों में भोजन के रूप में इसका सेव किया जाता है

3.2.3.5 गोत्र के प्रकार्य:

गोत्र के मुख्य प्रकार्य इस प्रकार हैं:

1. पारस्परिक सहायता और संरक्षण: एक गोत्र के सदस्यों के पास एक सामान्य पूर्वज से वंश में उनके विश्वास के कारण 'हम कि भावना' महसूस' करते हैं। वे न केवल एक दूसरे की सहायता करने के लिए तैयार हैं, बल्कि एक-दूसरे के लिए अपना जीवन व्यतीत करने के लिए भी तैयार हैं। जब टोटेम का एक सदस्य घायल हो जाता है तो सभी सदस्य अपना दर्द साझा करते हैं। उनमें से दो बातें प्रचलित हैं (i) "मेरे टोटेम भाई पर प्रहार करो मतलब आप मुझ पर प्रहार करो" और (ii) "टोटेम का खून मेरा खून है"।

2. सदस्यों पर नियंत्रण: असामाजिक कृत्यों में लिप्त व्यक्तियों को गोत्र/टोटेम से प्रत्यर्पित किया जाता है। इस तरह से, गोत्र/टोटेम के सदस्यों के आचरण को नियंत्रित किया जाता है। सदस्यों के लिए मृत्युदंड की तुलना में गोत्र/टोटेम से प्रत्यर्पण अधिक प्रभावी और विनाशकारी है।

3. कानूनी प्रकार्य: यह बदमाशों को दंडित करने और इस तरह से शांति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए गोत्र/टोटेम का सार्वभौमिक कानूनी कार्य है।

4. बहिर्विवाही: बहिष्कार के कानून की मदद से गोत्र/टोटेम समूह के बाहर से शादी की व्यवस्था करते हैं। यह एक तरफ एक महिला के लिए पुरुषों के बीच कबीले के भीतर संघर्ष से बचा जाता है और दूसरी तरफ अन्य कुलों के सदस्यों के साथ सौहार्द और दोस्ती बढ़ाने के लिए कार्य करता है।

5. प्रशासनिक कार्य: वंश अपने सदस्यों के लिए सभी प्रशासनिक कार्य करता है। विभिन्न गोत्र/टोटेम के प्रमुख, जनजाति के लिए एक समिति से मिलते हैं, जो गोत्र/टोटेम के सदस्यों के बीच संघर्ष में मध्यस्थता करने का काम करता है और युद्ध और शांति के समय में राजनीतिक फैसले लेता है।

6. संपत्ति: जिस गाँव में कृषि की जाती है, औए भूमि के स्वामित्व का आधार गोत्र/टोटेम है तो गोत्र/टोटेम कृषि भूमि की व्यवस्था करता है। गोत्र/टोटेम के मुखिया जमीन बांटते हैं। जब कोई व्यक्ति गोत्र/टोटेम की सदस्यता से वंचित होता है तो वह इस भूमि से भी वंचित हो जाता है। सदस्य केवल भूमि किराए पर ले सकते हैं।

उपर्युक्त कार्य के अतिरिक्त, गोत्र/टोटेम अपने सदस्यों की धार्मिक प्राथमिकताओं को भी पूरा करता है। आम तौर पर, गोत्र/टोटेम का मुखिया भी इसका पुजारी होता है। यह वह है जो सभी सदस्यों के धार्मिक

उपक्रमों का उपभोग करता है।

3.2.4 भ्रातृदल (फेट्री)

Phratry ग्रीक शब्द phrater से लिया गया है जिसका अर्थ है भाई। एक फेट्री भाई-चारे का एक परिजन समूह है जिसमें कई कुलों को एक साथ जोड़ा जाता है। इस प्रकार, फेट्री एक ऐसा एकवंशीय समूह है जो कम से कम दो कुलों से बना है और माना जाता है कि वे एक-दूसरे से संबंधित हैं। एक गोत्र के व्यक्तियों की ही तरह, एक फेट्री के सदस्य वास्तविक वंशानुगत पूर्वज से अपने सटीक जुड़ाव का सही पता लगाने में असमर्थ होते हैं, हालांकि उनका मानना है कि ऐसा पूर्वज मौजूद था।

कई पूर्व-औद्योगिक समाजों में, सामाजिक संगठन पुरुष या महिला वंश के माध्यम से रिश्तेदारी समूहों पर आधारित है, लेकिन इन रिश्तेदारी समूहों को गैर-रिश्तेदारी सिद्धांतों के अनुसार बड़े समूहों में एकत्र किया जाता है जो (कुछ मामलों में) मानवविज्ञानी लुईस एच. मॉर्गन ने इसे 'फेट्री' की संज्ञा दी। उदाहरणों में कई अमेरिकी भारतीय और ऑस्ट्रेलियाई आदिवासी जनजाति शामिल हैं। अन्य समाजों में, विस्तारित रिश्तेदारी समूहों में क्लान (आमतौर पर एक मातृवंशीय वंश समूह क्लान (clan) और जेन्स (Gens) (पितृवंशीय वंश समूह) शामिल हैं। अब किसी भी समूह या समूहों के संघटन के रूप में नामित करना आम बात है जो एक-दूसरे से कुछ रिश्ते को पहचानते हैं। अक्सर, इसलिए, या तो श्रम के एक प्रभाग या अलग अनुष्ठान कार्यों के लिए फेट्री का आयोजन किया जाता है।

लुइ ने ऐसे संयोजनों के लिए कई संभावनाओं का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि कई गोत्रों ने अपनी पिछली पृथकता के सभी जीवितों को खोए बिना एक साथ गठबंधन किया होगा या एक गोत्र इतना बड़ा हो

गया कि वह एकता के पूर्व बंधनो को पूरी तरह से अलग किए बिना कम समूहों में विभाजित हो गया होगा। दोनों प्रकार, विखंडन और संयोजन के उदाहरण छोटानागपुर क्षेत्र की कुछ जनजातियों विशेष रूप से उरांव, हो और मुंडा जनजातियों में मिलते हैं।

हैविलैंड ने उत्तरपूर्वी एरिज़ोना के गांवों या प्यूब्लोस (pueblos) में रहने वाले होपी इंडियन, जो कृषक हैं, के बारे में वर्णन किया है। उनके समाज को कई नामांकित वंशों में विभाजित किया गया है, जो मातृवंशीय वंश पर आधारित है। दो या दो से अधिक कुलों का एक साथ बड़ा, वृहद गोत्र इकाइयाँ या एक साथ काम करना होता है, जिसमें **होपी** समाज के नौ सदस्य होते हैं। इनमें से प्रत्येक के भीतर, सदस्य गोत्रों को एक दूसरे का समर्थन करने और सख्त बहिष्कार का पालन करने की आशा रहती है। जैसा कि सभी फेट्री के सदस्य दिए गए pueblo में रहते हैं, विवाह कि प्रवृत्ति अपने ही घर समुदाय में देखने को मिलती है। सदस्यता का यह विस्तार, व्यक्तियों को उनके अलावा अन्य गांवों में प्रवेश के अधिकार प्रदान करता है।

3.2.5 अर्द्धांश (Moiety)

जब एक पूरे समाज को एकवंशीय वंश के आधार पर दो परिजन समूहों में विभाजित किया जाता है, तो प्रत्येक समूह को **अर्द्धांश** कहा जाता है (यह एक फ्रांसीसी शब्द है जिसका अर्थ होता है `आधा ')। प्रत्येक **अर्द्धांश** में सदस्यों का मानना है कि उन्हें एक सामान्य पूर्वज से जोड़ा जाना चाहिए, भले ही वे यह निर्दिष्ट नहीं कर सकते कि कैसे। लेकिन चेतनता और कुलों के साथ समाज की तुलना में **अर्द्धांश** सिस्टम वाले समाजों की आबादी अपेक्षाकृत कम है।

अर्द्धांश (किसी भी सिद्धांत पर आधारित दो समूहों में समाजों का विभाजन, जैसे कि एक दोहरी संस्था है) एक विशेष प्रकार के फेट्री है। हालांकि, ये सभी शब्द संदर्भ के अधीन हैं, और बहुत ही अलग तरीके से समझदारी से उपयोग किए गए हैं। इसलिए रिश्तेदारी समूहों के विद्यार्थियों को (कभी-कभी खराब चुनी गई) शब्दावली के उपयोग में बहुत अधिक बदलाव के साथ रहना पड़ता है और विशेष परिस्थितियों में विशिष्ट परिभाषाओं और उपयोग को सत्यापित करने के लिए दृढ़ता की सलाह दी जाती है।

डब्लू.एच.आर. रिवर्स ने भारत के केरल में नीलगिरि पहाड़ियों की ***टोडा*** के बीच मौजूद एक **अर्द्धांश** प्रणाली के बारे में बताया था। उनके पास दो समूहों का एक दोहरे संगठन है- टेइविओलिओल और टार्टरॉल (*teivaliol* and *tartharol)*। प्रत्येक दो हिस्सों को फिर से कई कुलों में विभाजित किया गया है। **अर्द्धांश** बहिर्विवाही होती है।

भारत के उत्तरपूर्वी राज्य मणिपुर में कुछ जनजातियों में, सामाजिक संगठन की **अर्द्धांश** प्रणालियाँ हैं। इस राज्य के चंदेल जिले में छह गाँवों में निवास करने वाले *मोनसांग* इस प्रकार के परिजन समूह के हैं। उनकी मौखिक परंपरा के अनुसार, इस लोगों के दो समूह एक गुफा से इस दुनिया में निकले। ये दो समूह इन लोगों के

जीवन को बनाते हैं।***रिंयेंटी*** *(rinhenti)* के रूप में जाना जाने वाले **अर्द्धांश** की छः कुंडियाँ होती है। *रोन्हेन्ती, वान्गलर, टेसॉन्गी, होंगामती, शोंगशीर और खटूर (rohenti, wanglar, tesongti, hongamti, shongshir* and *khatur.)*। रिन्हे इन कुलों के पूर्वज हैं। अन्य **अर्द्धांश** को सिमपुटी(*simputi)* के नाम से जाना जाता है और इसके चार कुल हैं- नगारती, ठुमथली, किरीति और चिरीति (*ngarati, thumhliti, kiiriiti* and *chiiriiti*)। थम्पुंग्पा इस **अर्द्धांश** समूह के पूर्वज थे। आदर्श रूप से **अर्द्धांश** बहिर्विवाही है।

अर्द्धांश तंत्र एकवंशीय का एक अधिक असामान्य रूप है और इसमें जोड़े में वंश समूहों को विभाजित किया जाता है जो पूरक पदों और कार्यों को ग्रहण करते हैं। एक जोड़ी का प्रत्येक मोईटी (या आधा) लगभग हमेशा बहिष्कृत होगा और अपने पति और पत्नियों को विशेष रूप से दूसरे मोईटी समूह से ले जाएगा। इसको यानोमामो जनजाति के उदाहरण से समझा जा सकता है।

यानोमामो में *दानी* कुल को *विडा* और *वेजा* में बांट दिया जाता है जो पूरे दानी समाज के माध्यम से चलते हैं। Wida पुरुषों को अपने मोईटी की महिलाओं से शादी करने से मना किया जाता है और वेजा से पत्नियों को लेना चाहिए। यानोमामो में एक मोईटी सिस्टम भी है। उनके मामले में, भाग लेने वाली इकाइयाँ छोटे स्थानीयकृत पितृवंशीय हैं जो छोटे गाँवों में मेल खाते हुए सदस्यों के साथ बसते हैं। आमतौर पर शादियों का आयोजन बस्ती के भीतर स्थित विपरीत मोईटी के सदस्यों के साथ किया जाता है।

यानोमामो मोईटी में अंतरविवाह को नीचे दिए चित्र के माधयम से समझा जा सकता है-

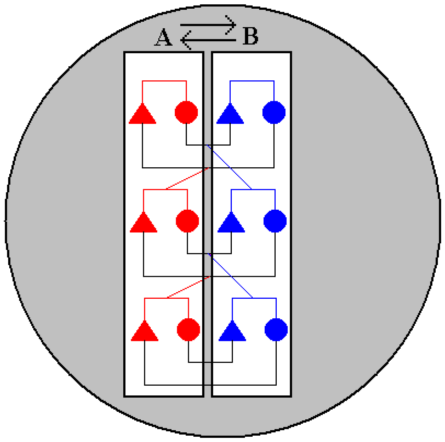

नोट: विवाह को एक क्षैतिज रेखा द्वारा पति और पत्नी को नीचे से जोड़ने का संकेत दिया गया है। रंगीन विकर्ण रेखाएं वंश का प्रतिनिधित्व करती हैं।

3.2.6 वंश समूह का संयोजन

यद्यपि विभिन्न प्रकार के एकरूप वंश समूह हैं, फिर भी वंश समूहों के विभिन्न संयोजन हैं। उदाहरण के लिए, कुछ समाजों में केवल वंशावली होती है, कुछ में वंश और गोत्र होते हैं, और दूसरों के पास वंश और भ्रातृदल होते हैं लेकिन कोई वंश नहीं होता है। अभी भी कुछ अन्य समाजों में गोत्र और **अर्द्धांश** हो सकती है, लेकिन न तो फेट्री और न ही वंश हो सकता है।

3.2.7 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा की वंश आधारित परिजन समूह विभिन्न प्रकार के होते हैं। सबसे बड़ा **अर्द्धांश** हो सकता है जो कि फेट्री में विभाजित हो सकता है और फिर, गोत्रों में। इनमें से सबसे छोटा वंश हो सकता है। अन्य संयोजन भी हो सकते हैं। भले ही समाजों में एक से अधिक प्रकार के वंश आधारित परिजन समूह हैं, लेकिन सदस्यता के बारे में कोई अस्पष्टता नहीं है, इसलिए, छोटे समूह केवल बड़ी इकाइयों के सबसेट हैं। लोग बड़ी इकाइयों का पता लगा के सामाजिक संरचना को ज्ञात कर सकते हैं।

3.2.8 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. पूर्वी अफ्रीकी की नुअर जनजाति का अध्ययन किसने किया-
   (क) इवांस-प्रिचार्ड (ख) फ्रेज़र (ग) मार्शल मास (घ) दुर्खीम
2. गोत्र का तात्पर्य "एकवंशीय परिजन-समूह या तो मातृसत्तात्मक या पितृसत्तात्मक वंश पर आधारित है। यह परिभाषा किसने दी-
   (क) मजूमदार और मदान (ख) विलियम पी. स्कॉट (ग) आर. एन. शर्मा (घ) मार्शल मास
3. जब एक पूरे समाज को एकवंशीय वंश के आधार पर दो परिजन समूहों में विभाजित किया जाता है उसे कहते है-
   (क) मातृवंशीय गोत्र (ख) पितृवंशीय गोत्र (ग) भ्रातृदल (फेट्री) (घ) अर्द्धांश (Moiety)

उत्तर – 1. (क) इवांस-प्रिचार्ड, 2. (ख) विलियम पी. स्कॉट, 3. (घ) अर्द्धांश (Moiety)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. गोत्र क्या है? गोत्र के लक्षण, प्रकार और कार्य क्या हैं?
2. वंश को परिभाषित करते हुए वंश की विस्तृत व्याख्या लिखिए।
3. गोत्र को परिभाषित करते हुए गोत्र की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
4. भ्रातृदल एवं अर्द्धांश की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
5. वंश समूह के संयोजन की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वंश किसे कहते हैं?
2. वंश की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
3. गोत्र को परिभाषित कीजिए।
4. गोत्र और टोटेम में क्या अंतर है?
5. भ्रातृदल का क्या अर्थ है?

3.2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Barnes, J. A. (1961). 'Physical And Social Kinship'. *Philosophy Of Science.* **28** (3): 296–299
- Encyclopaedia Britannica At Http://Www.Britannica.Com/ Accessed On 29th January,
  2018.
- Evans-Pritchard, E. E. (1951). *Kinship And Marriage Among The Nuer*. Oxford: Clarendon Press.
- Forde, Daryll. (1967). 'Double Descent Among The Yako'. In *African Systems Of Kinship And Marriage*. A. R. Radcliffe-Brown And Daryll Fordes, Eds., London: Oxford University Press.
- Fox, R. (1996). *Kinship And Marriage*. Cambridge: Cambridge University Press [Penguin Books Ltd], [1967].

- Godelier, M. (1998). 'Afterword: Transformation And Lines Of Evolution'. In M. Godelier, T.R. Trautmann & F.E. Tjon Sie Fat (Eds.). *Transformations Of Kinship*. Washington & London: Smithsonian Institution, P. 386-413.
- Goody, J, Thirsk J Thompson, Ep. (1976). (Ed*.) Family And Inheritance: Rural Society In Western Europe 1200-1800*. Cambridge: Cambridge University Press. Http://Www.Aboriginalculture.Com.Au/Socialorganisation.Shtml
- Kelly, R. (1977). *Etoro Social Structure: A Study In Structural Contradictions*. Ann Arbor: University Mich. Press.
- Levis- Strauss. (1969).*The Elementary Structures Of Kinship*. Great Britain: Eyre And Spottiswoode.
- Mair, Lucy. (1977). *An Introduction To Social Anthropology*. Delhi: Oxford University Press.
- Nanda, Serena & Richard, L. Warms. (2010). *Cultural Anthropology*. 10th Edition. United Kingdom: Wadsworth Cengage Learning.
- Parkins, Robert & Linda, Stone. (Ed.). (2004). *Kinship And Family: An Anthropological Reader*.Ma: Blackwell. Malden.
- Peletz, Michael G. (1988). *A Share Of The Harvest: Kinship, Property And Social History Among The Malays Of Rembau*. Berkley: University Of California Press.
- Peletz, Michael G. (1995). 'Kinship Studies In Late Twentieth-Century Anthropology'. In *Annual Review In Anthropology*: 24:343-72.
- Peletz, Michael G. (1996). *Reason And Passion: Representations Of Gender In Malaya*
  Society. Berkley: University Of California Press.
- Rubins, G. (1975). *The Traffic In Women: Notes On The 'Political Economy' Of Sex*.
- Rubins, G. (1976). *Worlds Of Pain: Life In The Working-Class Family*. New York: Basic Books.

- Schneider, Dm. (1968). *American Kinship: A Cultural Account*. Englewood Cliffs, Nj: Prentice Hall.
- Stone L. (1997). *Kinship And Gender: An Introduction*. Boulder: Westview Press.
- Tonkinson, R. (1991). ‘The Mardu Aborigines: Living The Dream In Australiaís Desert’.(2e.). New York: Holt, Rinehart & Winston. *Case Studies In Cultural Anthropology*, [1978].
- Weston, Kath. (Ed.). (1997). *Families We Choose: Lesbians, Gays Kinship*. New York: Columbia University Press.

इकाई 3 युवागृह : संरचना एवं प्रकार्य

(Youth dormitory : Structure and Function)

इकाई की रूपरेखा

3.3.0 उद्देश्य

3.3.1 प्रस्तावना (Introduction)

3.3.2 युवागृह

3.3.3 जनजाति युवागृह की उत्पत्ति

3.3.4 विभिन्न जनजातियों के युवागृह

3.3.5 युवागृह का महत्व

3.3.6 युवागृह के लक्षण

3.3.7 रंग-बंग

3.3.8 घोटुल

3.3.9 युवागृह का वर्तमान परिदृश्य

3.3.10 सारांश (Summary)

3.3.11 बोध प्रश्न

3.3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.30 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप यह जानने में सक्षम होंगे कि :

- युवागृह किसे कहते हैं?
- युवागृह की उत्पत्ति, महत्व और लक्षण क्या हैं?
- युवागृह का वर्तमान परिदृश्य क्या है?

3.3.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत की जनजातियाँ केवल जनसंख्या मात्र नहीं हैं, बल्कि वे सांस्कृतिक विकास का भी प्रतिनिधित्व करती हैं, जिनके द्वारा हम जनजातीय सांस्कृतिक जीवन की रूपरेखा और वैश्वीकरण के युग में इसके महत्व को समझ सकते हैं। सामाजिक संगठन में सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था युवागृह है। ये संगठन लगभग हर जनजाति में पाए जाते हैं और उनका सामाजिक जीवन इसी पर केंद्रित है।

भारत के कई जनजाति समूहों में जनजाति युवागृह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह इकाई में युवागृह को केंद्र में रख कर जनजाति युवाओं के जीवन का विश्लेषण है। इन युवागृह से जनजाति युवाओं के

व्यक्तित्व का विकास होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि युवागृह बचपन से वयस्कता तक, आदिवासियों के संक्रमणकालीन चरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक व्यक्ति के मन में अगर युवागृह की एक प्रोफ़ाइल हो तो वह एक जनजाति के सांस्कृतिक जीवन की पूरी तस्वीर खींच सकता है। यह संस्कृति, शिक्षा और रीति-रिवाज का मिलन है जो सामुदायिक स्तर पर एकरूपता उत्पन्न करता है। युवागृह सामाजिक रूप से मुक्त यौन शिक्षा के लिए स्वीकृत स्थान हैं न कि मुक्त सेक्स का। युवागृह का वास्तविक महत्व इस तथ्य में निहित है कि वे ऐसे केंद्र हैं जहां एक जनजाति के बुजुर्ग जनजाति परंपरा और अनुष्ठान, युवा सदस्यों को सिखाते हैं, ताकि वे जनजाति रीति-रिवाजों और सम्मेलनों के उत्तराधिकारी बन सकें और समुदाय के लिए स्वीकार्य हो सकें।

3.3.2 युवागृह

युवागृह विभिन्न जनजातियों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है, उदाहरण के लिए, असम के नागाओं के बीच, उन्हें **'मोरुंग'** कहा जाता है, जबकि महिला युवागृह को अंगोमी नागाओं के बीच **'यो'** कहा जाता है, और पुरुष युवागृह को **'किन्नुकी'** कहा जाता है। उत्तर प्रदेश में, इसे **' रंगबंग'** के रूप में जाना जाता है, जबकि मध्य भारत के मुंडा और हो जनजातियों के बीच, इसे **'गिटियोरा'** कहा जाता है। उरांव इसे **'धूमुरिया'** कहते हैं, भुइयां इसे **'धनगरबास'** कहते हैं और गोंड इसे **घोतुल** कहते हैं।

आधुनिक युग में लड़कों और लड़कियों के बीच प्यार और दोस्ती के लिए संघर्ष और असहिष्णु माहौल के बावजूद, जनजाति युवागृह का आज तक महत्व है। अंग्रेजी भाषा में इसे dormitory कहते हैं। अंग्रेजी शब्द डॉर्मिटरी लैटिन शब्द डोरिटोरियम से बना है, जो एक सांप्रदायिक या सामूहिक शयन कक्ष (स्लीपिंग क्वार्टर) है। यह अर्थ 'सामूहिक शयन कक्ष' जनजाति के लिए अनुपयुक्त है, क्योंकि इसका उपयोग जनजाति बच्चों को स्कूल जीवन के लिए तैयार करने के लिए नहीं होता है। फिर भी, इस शब्द 'डॉर्मिटरी' का उपयोग तब तक किया जा सकता है जब तक हमें पर्याप्त विकल्प नहीं मिलता, हिन्दी भाषा में इसे युवागृह कहतें हैं।

एक जनजाति युवा पारंपरिक मानदंडों, कम तकनीकी स्तर और शहरी प्रभाव के साथ बंधे हुए समाज से आता है। जनजातीय क्षेत्र अक्सर अलग-थलग पड़ जाते हैं और संचार के उचित साधनों का अभाव होता है, जो फिर से उन्हें अपनी संस्कृति का पालन करने और इसके विशिष्ट लक्षणों को बनाए रखने में मदद करता है। प्रत्येक जनजाति का अपना संगीत और नृत्य, गीत और लोक कथाएं, उत्पत्ति के मिथक और प्रवास की कहानी है और यह जनजाति से संबंधित सांस्कृतिक भावना पैदा करता है। प्रत्येक समूह प्राकृतिक सीमाओं द्वारा अक्सर फैला हुआ क्षेत्र होता है, जहां आंतरिक लड़ाई झगड़े होते हैं। इन सभी का एक केंद्रीय जनजातीय नियम होता है जिसको जनजाति का हर सदस्य पालन करता है। यह नियम पूरे समूह के स्तर पर संचालित होता है, उसे चुनौती नहीं दी जा सकती है, क्योंकि यह एक कोड को परिभाषित करने, जुर्माना लगाने और

किसी भी नए सदस्य को शामिल करने का अधिकार रखता है। इस तरह के केंद्रीय जनजाति प्राधिकरण मुंडा की **"पारह"** परिषद के रूप में लोकतांत्रिक भी हो सकते हैं।

जनजाति भारत में युवागृह में प्रवेश के लिए योग्यता, आयु है। एक निश्चित उम्र की प्राप्ति पर, एक युवागृह में प्रवेश आकस्मिक हो सकता है, या इसके लिए कुछ *राइट-डी-पैसज* के साथ होना पड़ सकता है। विवाहित लोग आमतौर पर युवागृह की सदस्यता से वंचित हैं। युवागृह, जो या तो द्विलिंगी हैं या एकलिंगी, जनजाति बस्ती के बाहर स्थित हैं। ये युवा संगठन युवागृह नामक बड़ी इमारतों में केंद्रित हैं। वे पुआल और घास की इमारतें हैं। लड़कों और लड़कियों के लिए अलग-अलग घर होते हैं। जनजाति के सभी युवा युवागृह में अपनी रात गुजारते हैं। लड़के और लड़कियां अलग-अलग सोते हैं। जिन गांवों में लड़कियों के लिए युवागृह नहीं है, वे किसी बूढ़ी औरत के घर में सोते हैं। मुंडा जनजाति में इस तरह का रिवाज है। बस्तर में 15 और 16 वर्ष की आयु के लड़के और लड़कियाँ युवागृह में सोते हैं। **उरांव** युवाओं को गाँव के बाहर स्थित **धूमकुरिया** में अपनी रात गुजारनी पड़ती है। **हो** जनजाति में अविवाहित लड़के और लड़कियां अलग-अलग युवागृह में रहते हैं। असम के लोटा नगाओं में लड़कों को अपनी मां की गंभीर बीमारी के मामले में केवल **मॉरंग** से छुट्टी मिल सकती है। असम के मियामी आदिवासियों के बीच लड़के और लड़कियां दोनों एक ही युवागृह में सोते हैं। लड़कियां भू तल पर सोती हैं, तो लड़के पहली मंजिल पर सोते हैं। बस्तर की मुरिया जनजाति में भी ऐसा ही रिवाज है। उनके युवागृह गांव के बाहर स्थित हैं। अविवाहित लड़के और लड़कियां रात में यहां इकट्ठा होते हैं, गाते हैं और नाचते हैं और अन्य सामाजिक गतिविधियों में भाग लेते हैं और अंत में रात गुजारते हैं।

3.3.3 जनजाति युवागृह की उत्पत्ति

जनजाति युवागृह की उत्पत्ति के बारे में विद्वान एकमत नहीं हैं। एक दृष्टिकोण के अनुसार, वे प्राचीन सांप्रदायिक घरों के समान हैं जब पूरा गांव एक ही छत के नीचे रहा करता था और व्यक्तिगत घर नहीं थे। एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार युवागृह का उद्देश्य लड़कों और लड़कियों को अपने माता-पिता के यौन संबंधों से अनजान रखना है। मजुमदार के अनुसार, युवागृह का उद्देश्य गाँव के युवकों को एक जगह पर इकट्ठा करना है ताकि जंगली जानवरों के हमले से गाँव को बचाया जा सके और गाँव की औरतें अन्य जनजातियों के पुरुषों के हमले से बच सकें। इसके अलावा, युवागृह की उत्पत्ति घरों की चाह, सामुदायिक जीवन के आनंद और जनजाति संस्कृति के विकास के कारण हो सकती है। जिन कारणों से युवागृह का उद्गम हुआ हो, यह निर्विवाद है कि यह जनजाति में जनजाति संस्कृति का केंद्र है। इसमें जनजाति के लड़कों और लड़कियों को परंपराओं, मानदंडों, आदर्शों, धार्मिक विश्वासों, आजीविका कमाने के तरीके और अनुशासन का पाठ पढ़ाया जाता है।

एस.सी. रॉय (1918) के अनुसार, जनजातीय युवागृह निम्नलिखित तीन कार्य करता है:

1. खाद्य चीजों को इकट्ठा करने और आर्थिक संगठन को मजबूत करने में मदद करना।

2. सामाजिक और अन्य कर्तव्यों में लड़कों और लड़कियों को शिक्षित करना और उन्हें सेक्स के मामलों में शिक्षा प्रदान करना।

3. सगोत्र विवाह (एंडोगैमी) के सिद्धांत का पालन करना और महिलाओं की गतिविधि को सीमित और नियंत्रित रखना।

3.3.4 विभिन्न जनजातियों के युवागृह

असम में अलग-अलग जनजातियों के युवागृह को अलग-अलग नामों से जाना जाता है उदाहरण के लिए **कोन्याक नागा** लड़के के युवागृह को **'बान'** और लड़की के युवागृह को **'यो'** कहते हैं: मेमी लड़के के युवागृह **इकोहिची** और लड़की के युवागृह को **इलोची** कहते हैं। **एओ** जनजाति अपने युवागृह को **आरुह** कहते हैं: **अंगामी नागा** इसे **किचुकी** कहते हैं; उत्तरांचल में उप हिमालयी क्षेत्र के **भोटला** इसे **रंग-बंग**, मुंडा और हो जनजाति इसे **गीटीओरा** कहते हैं; **उरांव** इसे **जोंकरपा** या **धूमकुरिया** कहते हैं; **भुईया** इसे **धनगर बासा** कहता है; और **गोंड** इसे **घोटुल** कहते हैं। दक्षिण भारत में, युवागृह के प्रमाण मुथुवन, मन्नान और पनियन में बताए गए हैं। कुनिकर में एक स्नातक हॉल भी है जो कुंवारे और आगंतुक या मेहमानों को समायोजित करने के उद्देश्य से काम करता है जहां इसे कोटिल के रूप में जाना जाता है।

युवागृह को विशेष रूप से एक इमारत में रखा गया है, जो एक दरवाजे के साथ, सरल और खुला हुआ हो सकता है, **उरांव** की कम छत वाले धूमुकुरिया या नागा के मोरंग की तरह विस्तृत नक्काशीदार लकड़ी के दरवाजे भी हो सकते हैं। यह अक्सर जंगल के बीच में, गांव के बाहर बनाया जाता है, लेकिन नागाओं में यह मक्के के खेत के (कॉर्न फील्ड्स) या पास होता है। हालांकि इन मकानों को विशिष्ट और विशेष रूप देने के लिए सभी प्रयास किए जाते हैं। टोटेम प्रतीक अक्सर दीवार के बाहरी किनारों पर चित्रित किए जाते हैं और खुले आंगन अक्सर उनसे जुड़े होते हैं। एक व्यक्ति युवागृह में एक सदस्य के रूप में या उसकी शादी के बाद एक अधिकारी के रूप में रहता है। एक युवागृह जीवन के कई रीति-रिवाजों के पालन के साथ जुड़ा हुआ है। इनमें से कुछ में पारंपरिक प्राचीनता है तो दूसरी ओर इसमें संस्था के कामकाज के अनुभव के पाठ्यक्रम के साथ जोड़ा गया है। युवागृह जो पुरातन हैं और जो कार्यात्मक रूप से नए हैं, वे कई मायनों में समान हैं। हालांकि इसमें समानता, गहरे सामाजिक-आर्थिक और शिक्षाप्रद उद्देश्य अंतर्निहित हैं।

प्राकृतिक और जैविक शिक्षा के अलावा, सांस्कृतिक शिक्षा दुनिया भर के सभी समाजों की एक सामान्य विशेषता है। प्रारंभिक वर्षों में एक व्यक्ति को जैविक से सांस्कृतिक बनाना एक समाज का कार्य है। संस्कृति उस व्यक्ति के व्यक्तित्व और चरित्र को तय करती है जो एक समाज और राष्ट्र के लिए भी योगदान देता है। जनजाति युवागृह अपवाद नहीं हैं। ये गृह सीखने के केंद्र के रूप में कार्य करते हैं। सीखना किसी व्यक्ति के व्यवहार को संशोधित करता है, अगर किसी व्यक्ति के व्यवहार की समाज द्वारा प्रशंसा की जाती है, तो यह प्रेरणा बनता है, तनाव और चिंता को कम करता है, लेकिन यदि व्यवहार की प्रशंसा नहीं की जाती है, तो

समाज को किसी व्यक्ति के कार्य से कुछ अप्रिय परिणाम मिलता है [गिलिन (1948), मर्डोक (1945), हॉलोवेल (1955), जॉन डॉलार्ड (1950)]। इसलिए जनजाति युवागृह सीखाने के साथ-साथ व्यक्तिगत व्यवहार को बनाए रखने और नियमित करने के लिए काम करते हैं। इसीलिए युवागृह को जनजाति संस्कृति के शिक्षण केंद्र के रूप में लिया जाना चाहिए।

युवा शाम को युवागृह में इकट्ठा होते हैं। युवागृह के अंदर आग जलायी जाती है, सदस्य वहां गाते हैं, नृत्य करते हैं, खेलते हैं और लोककथाओं और लोकगीतों को एक दूसरे को बताते हैं और बाद में रात को सोते हैं। इस प्रक्रिया में, सदस्यों के दो खंड स्पष्ट रूप से समझ में आते हैं-वरिष्ठ और कनिष्ठ। यह वे वरिष्ठ नागरिक हैं जो जनजाति प्रेम और परंपरा में पारंगत हैं, वे कनिष्ठ को अपने द्वारा अनुभव किया हुआ ज्ञान सिखाते हैं, जो कनिष्ठ, एक दिन वरिष्ठों की भूमिका ग्रहण करते हैं। मनोरंजक गतिविधि के अलावा, जो इन युवागृह की सामान्य गतिविधि है। उनके अधिकारियों (वरिष्ठों) के नेतृत्व में सदस्य अक्सर विभिन्न समूहिक प्रयासों में सहायता करते हैं।

3.3.5 युवागृह का महत्व

रॉय (1918) युवा जनजाति के बीच जनजाति पहचान के विकास में युवागृह के महत्व को बताते हुए **उरांव** युवागृह के तीन उद्देश्य का वर्णन किया है। सबसे पहले, यह खाद्य खोज के उद्देश्य के लिए एक प्रभावी आर्थिक संगठन के रूप में कार्य करता है। दूसरे, युवा पुरुषों को उनके सामाजिक और अन्य कर्तव्यों के प्रशिक्षण के लिए एक उपयोगी संगोष्ठी के रूप में और तीसरे, युवा-पुरुषों की शिकार और खरीददार शक्ति के बारे में निर्मित किए गए जादुई-धार्मिक समारोहों के प्रदर्शन के लिए एक जगह के रूप में। एल्विन (1944) ने घोटुल को सामाजिक और धार्मिक जीवन के केंद्र के रूप में एक अत्यधिक विकसित संस्थान के रूप में समझाया। सामाजिक-राजनीतिक जीवन के दूसरे पहलू के साथ-साथ लड़कों और लड़कियों के लिए युवागृह की यह महत्वपूर्ण संस्था चल रही है और उनके बीच औपचारिक शिक्षा की शुरुआत के साथ-साथ समाजों के आस-पास के समाजों से जुड़ाव के कारण बहुत बदलाव आया है। इसलिए यह पाया गया है कि युवागृह विलुप्त हो रहे हैं।

एल्विन (1947) अपने महत्व के अनुसार दो प्रकार के युवागृह को श्रेणीबद्ध करते हैं।

(अ) एक प्रकार का युवागृह पुरुष युवाओं को सामुदायिक सुरक्षा के लिए अर्ध सैनिक के रूप में तैयार करता है। इस प्रकार की युवागृह में वे लड़ाई, शिकार, जादू आदि करते हैं।

(ब) दूसरा प्रकार का युवागृह, या तो सेक्स का है, जिसमें संगीत और मनोरंजन सम्मलित हैं और या तो कई सामाजिक और आर्थिक गतिविधियां जैसे शिकार, कृषि खेल के द्वारा सीखते हैं।

मजुमदार (1958) ने खानाबदोश और शिकार आधारित जनजाति के बीच युवागृह के महत्व का वर्णन किया। जहां यह महिलाओं और बच्चों के आक्रमणकारियों के संरक्षण के लिए होता है क्योंकि युवागृह

में युवा अपने संगीत कार्यक्रमों के साथ देर रात तक जागते हैं। कृषि कार्य के दौरान यौन संबंध के निषेध के कारण, युवागृह विवाहित महिलाओं के रहने के स्थान के रूप में जाना जाता है। यह फसल की बुवाई के दौरान जानवरों और दुश्मनों से फसलों की सुरक्षा से संबंधित है। युवागृह को अन्य तरीकों से अपनी पत्नी के साथ यौन संबंध के रूप में भी समझाया जाता है जब तक कि नवजात शिशु की नाभि ट्यूब (प्लेसेंटा का एक हिस्सा) शुष्क न हो जाए और मासिक धर्म चक्र के दौरान भी, एक महिला अपने पति के साथ चक्र के दौरान यौन संबंध नहीं बना सकती है। एक जोड़े के बीच यौन संबंध जब तक कि नए जन्मे बच्चे को स्तनपान न करा दिया जाए। अंत में छोटे घरों के कारण, एक दंपति के लिए अपने बच्चों के सामने यौन संबंध बनाना असुविधाजनक होता है। यह एक सेक्स विनियमन घटना के रूप में युवागृह का प्रतीक है।

कोन्याक नागा के बीच, दीक्षा समारोह होते हैं, जिसके माध्यम से लड़कों को सफल शिकार की शिकारी गतिविधियों के लिए जादुई क्षमता के साथ सुशोभित किया जाता है। यह सच है कि लोगों के जीवन का भावनात्मक पहलू जब कभी कमजोर पड़ता था तो ऐसे संस्थानों में उनकी भागीदारी के माध्यम से संतुष्ट हो जाता था और इस तरह जीवन को एक एकीकृत तरीके से सौहार्दपूर्ण ढंग से आगे बढ़ता है।

3.3.6 युवागृह के लक्षण

युवागृह की महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. जबकि कुछ स्थानों पर लड़कों और लड़कियों के लिए अलग-अलग युवागृह हैं, अन्य जनजातियों में वे एक आम युवागृह में रहते हैं। यह मुरिया जनजाति में प्रथा है। दूसरी ओर, असम के कोनायक नागाओं में, लड़के **मोरंग** में रहते हैं और लड़कियां **यो** में सोती हैं।

2. आम तौर पर युवागृह जंगल में गांव के बाहर स्थित होते हैं, लेकिन वे खेतों के पास भी हो सकते हैं जैसे नागाओं के युवागृह। ओरांव जनजाति में युवागृह गाँव के मध्य में स्थित है।

3. युवागृह जीवन की कुछ परंपराओं और रीति-रिवाजों पर आधारित है, जिसका सभी सदस्यों द्वारा अनिवार्य रूप से पालन किया जाता है।

4. युवागृह की सदस्यता की आयु जनजाति से जनजाति में भिन्न होती है। एक सामान्य नियम के रूप में यह अधिकांश जनजातियों में चार या पांच साल है।

5. जब तक लड़के और लड़कियाँ की शादी नहीं होती तब तक उनकी सदस्यता रहती है। विवाह के बाद सदस्यता स्वत: भंग हो जाती है।

6. यदि कोई लड़की विधवा हो जाती है तो वह फिर से युवागृह में उसके सदस्य के रूप में प्रवेश कर सकती है।

7. शाम को युवागृह के सदस्य अपने घरों पर भोजन करने के बाद इकट्ठा होते हैं। आग जलने के बाद वे जिस युवागृह में इकट्ठा होते हैं, उसके चारों ओर बैठते हैं, कहानियां सुनाते हैं, गाते हैं, नृत्य करते हैं और अंत में सोते हैं।

8. युवागृह के सदस्यों को वरिष्ठ और कनिष्ठ के अनुसार दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। युवागृह का प्रमुख वरिष्ठ समूह से चुना जाता है। युवागृह के सभी सदस्यों की देखभाल करना और उनके बीच अनुशासन बनाए रखना उनका काम है। कनिष्ठ, वरिष्ठों की आज्ञा का पालन करते हैं और उनसे विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्राप्त करते हैं।

9. युवागृह के प्रत्येक सदस्य का यह कर्तव्य है कि वह युवागृह के बारे में सब कुछ गुप्त रखे।

10. युवागृह के सदस्य एक साथ कई कार्य करते हैं, जैसे, विवाह के अवसर पर घर का निर्माण या फसल काटने में गाँव के लोगों की मदद करना आदि।

जनजाति युवाओं के सामाजिक जीवन में युवागृह की भूमिका को समझने के लिए अब निम्नलिखित पैराग्राफ में दो उदाहरण दिये गए हैं।

3.3.7 रंग-बंग

भोटिया जनजाति उत्तरांचल राज्य के उप-हिमालयी क्षेत्र में रहती है और रंग-बंग उनके युवागृह का पारंपरिक नाम है जो भोटिया के हर उप-समूहों (तोखा, मरचा, जोहरी, जाद, शौका आदि) में पाया जाता है। यहाँ उत्तरकाशी जिले के बागोरी, मुखबा और धराली गाँवों के रंग-बंग को विश्लेषण के लिए उपयोग किया गया है।

रंग-बंग एक मोबाइल प्रकार का युवागृह है, जो किसी भी खाली कमरे या घरों में बनाया जाता है। इस संबंध में रंग-बंग युवाओं का एक प्रकार का उत्सव है जिसमें अविवाहित लड़के और लड़कियां एक स्थान पर इकट्ठा होते हैं और उस स्थान पर इन लड़कों और लड़कियों के सामूहिक रूप रंग-बंग का गठन करते हैं। दस से बारह वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद, या तो हर युवा रंग-बंग का सदस्य बन जाता है, अगर कोई सदस्यता से इनकार करता है, तो उस पर कुछ जुर्माना लगाया जाता है। रंग-बंग दो या तीन गांवों के बीच समन्वय स्थापित करने का एक तरीका है क्योंकि किसी भी गाँव के किसी भी लिंग के युवा रंग-बैंग के सदस्य हो सकते हैं। वे पूरी रात रंग-बंग में रहते हैं।

सामाजिक स्तर पर एक गाँव से दूसरे गाँव में सांस्कृतिक मूल्यों के आदान-प्रदान के लिए रंग-बंग का आयोजन किया जाता है, लेकिन उसी गाँव के युवा, बुजुर्गों से अपनी संस्कृति सीखते हैं। इसलिए यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक और एक गाँव से दूसरे गाँव तक संस्कृति के परिवर्तन का स्थान है। सामाजिक रूप से रंग-बंग का संबंध पारिवारिक नैतिकता से है। छोटे घर के कारण, माता-पिता अपने यौन संबंध के दौरान अपने बच्चों की उपस्थिति से बचते हैं। रंग-बंग अपने माता-पिता के साथ-साथ अपने जीवन साथी को चुनने के

लिए युवा व्यक्तियों के लिए यौन संभोग का अवसर प्रदान करता है। यदि महिला के मामले में जीवन साथी दूसरे गाँव का है, तो लड़का अगले दिन उस गाँव में जाता है और उस लड़की का अपहरण कर लेता है। उसके बाद उस लड़की से शादी की सहमति ली जाती है। इस प्रतीकात्मक सहमति अनुष्ठान के पूरा होने के बाद, दूल्हे के गाँव में प्रस्तावित दुल्हन के कुछ दोस्तों को आमंत्रित किया जाता है। इन दोस्तों को **शाशा** के नाम से जाना जाता है। शादी के दौरान ***च्यक्ति*** (एक तरह की शराब) और मांस को उत्सव के प्रतीक के रूप में दिया जाता है। वे फिर से रंग-बंग मनाते हैं। सभी लड़कियां अपने रात के साथी के साथ सोती हैं, अगर कोई भी लड़की किसी अन्य लड़के के लिए फिर से चुनी जाती है, तो पूरी पिछली प्रक्रिया दोहराई जाती है। तो रंग-बंग दोस्त चयन में एक श्रृंखला प्रक्रिया है।

विवाहित महिला को भी रंग-बंग में अनुमति दी जाती है जब तक कि वह अपने पति के साथ यौन संबंध से खुद को दूर नहीं रखती। लेकिन जैसे ही वह अपने पति के साथ इस तरह के संबंधों में व्यस्त हो जाती है, उसे रंग-बंग से बाहर कर दिया जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि किसी भी पितृत्व विवाद से बचने के लिए, यदि वह किसी अन्य रंग-बंग के पुरुष द्वारा गर्भवती है, तो वह अपने पति से उस मुद्दे को स्वीकार करने का अनुरोध करती है और सामान्य तौर पर वह कुछ प्रतीकात्मक अनुष्ठानों के बाद स्वीकार करती है। कम या ज्यादा रंग-बंग युवा लोगों के लिए साथी चयन के लिए एक सामाजिक रूप से वैध मंच प्रदान करता है।

युवागृह का राजनीतिक कार्य दो या दो से अधिक गांवों के सदस्यों के बीच समन्वय स्थापित करना है। दो गांवों के सदस्यों के बीच वैवाहिक संबंध उन्हें और करीब लाते हैं। इस तरह, युवागृह रिश्तेदारी के विस्तार से सुचारू पारिवारिक गठन, आसान साथी का चयन और तालमेल की स्थापना के लिए एक वातावरण प्रदान करती है।

3.3.8 घोटुल

घोटुल जनजाति युवाओं के युवागृह का एक और अच्छा उदाहरण है। यह बिहार राज्य के बस्तर जिले के मुरिया और गोंड जनजाति में पाया जाता है। इस युवागृह में केवल अविवाहित लड़के और लड़कियों को रहने की अनुमति होती है। विधवा और विधुर को घोटुल में अनुमति दी जाती है, लेकिन विवाहित जोड़े इसमें सख्त वर्जित है।

6 से 7 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद हर लड़के और लड़की को घोटुल का सदस्य बन जाना चाहिए। घोटुल का सदस्य बनने के बाद उन्हें हर घोटुल के कार्यक्रम में सख्ती से भाग लेना होता है। यदि कोई भी माता-पिता अपने बेटे या बेटी को युवागृह में भेजने से इनकार करते हैं, तो ग्राम परिषद उन्हें दंडित करती है। घोटुल के सदस्य को वरिष्ठ और कनिष्ठ के रूप में दो समूहों में उम्र के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। पुरुष सदस्यों को दो समूहों में वरिष्ठ और कनिष्ठ के रूप में जाना जाता है। पुरुष सदस्यों को चेलिक (Chelic) और महिला सदस्य को मोटियारी (Motiyari) के रूप में जाना जाता है। घोटुल के प्रमुख को **सालाऊ** कहा

जाता है और उनके अधीनस्थों को दीवान, तहसीलदार, सूबेदार, कोटवार (सभी पुरुष सदस्य) आदि और चेल्लिन के नाम से जाना जाता है। तहसीलदार (महिलाएं) आदि सलाउ अपने प्रेमी के रूप में किसी भी मोतियारी को चुन सकते हैं। इस चयन के बाद कोई भी चेलिक उस मोटियारी के साथ यौन संबंध नहीं बना सकता है। शादी के बाद सलाउ अपने उत्तराधिकारी का चुनाव करता है। हर कोई सालाऊ के आदेश का पालन करता है। घोटुल के सदस्यों को किसी भी बाहरी व्यक्ति के अंदर होने के बारे में बताने की अनुमति नहीं है।

हर शाम चेलीक और मोटियारी घोटुल में इकट्ठा होते हैं। मोतियारि, सलाउ को सलाम करके उनका सम्मान करते हैं। वे अपनी सेवाएं चेलीक को देते हैं जो उनके नियमित काम में आती हैं। उस समय वे यौन संबंधों के लिए स्वतंत्र हैं लेकिन संबंध विवाह की छवि को प्रतिबिंबित नहीं करते हैं। यदि कोई मोटियारी गर्भवती हो जाती है, तो संबंधित चेलिक उसके साथ विवाह करता है। इसलिए यौन संबंध विवाह से दूर नहीं हैं। इसलिए घोटुल में यौन संबंधों को टाला नहीं जाता है लेकिन गर्भावस्था को टाला जाता है।

दो प्रकार के घोटुल मौजूद हैं: -

i) जोड़ीदार (युग्मन) घोटुल - जब एक-एक चेलीक और मोतियारी का जुड़ाव तय होता है।

ii) मुंडी बडाल्ना (विनिमय) घोटुल- चेलिक या मोतियारी अपने रात के साथी बदलते हैं।

यदि एक चेलिक तीन दिन तक एक विशिष्ट मोटीयारी के साथ रहता है, तो उस जोड़े को जोडीदार माना जाता है और इस तरह के घोटुल को ‘उल जोडीदार घोटुल’ कहा जाता है और शादी के लिए जोड़े को मजबूर किया जाता है। तीन दिनों की इस अवधि को आम तौर पर प्रत्येक चेलिक के लिए एक मोतियारी की उपलब्धता बनाए रखने के लिए बचा जाता है।

अगर चेलिक और मोटीयारी की संख्या समान नहीं है, तो मोटीयारी अपने साथी का चयन करते हैं। मान लीजिए कि एक घोटुल में तीस चेलिक और दस मोतियारि एक समय में मौजूद हैं, दस मोतियारि केवल दस चेलिकों का चयन करती हैं और चुनिंदा चेलिक के बालों में अपने कंघों को छोड़ देती हैं। यह एक विशिष्ट रात के लिए चेलिक के चयन का प्रतीक है। अगली रात में अगले दस चेलिक के लिए फिर से वही प्रक्रिया अपनाई जाती है। इस प्रक्रिया से वे घोटुल के अंदर एक यौन संघर्ष कम करते हैं।

पारिवारिक स्तर पर सामाजिक रूप से घोटुल महत्वपूर्ण है। एक दंपति अपने बच्चों के सामने यौन संबंध स्थापित करने में संकोच करता है। इसलिए घोटुल उनके लिए यौन जीवन का अवसर देता है। यह अविवाहित लड़कों और लड़कियों को एक-दूसरे के बीच यौन संबंध स्थापित करने के लिए एक मंच भी देता है। सामान्य तौर पर, सेक्स संबंध जरूरी नहीं कि विवाह के लिए ही हों। केवल गर्भावस्था के मामले में, संबंधित चेलिक और मोटियारी विवाह के लिए बाध्य हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि एक चेलिक और मोतियारी एक-दूसरे से शादी करना चाहते हैं तो वे जानबूझकर एक-दूसरे के साथ तीन दिनों तक रहते हैं और शादी करते हैं। यहाँ यह साथी चयन का मामला है।

असली भाई और बहन एक ही घोटुल में रहते हैं लेकिन वे रिश्तेदारी प्रभाव (परिहार) के कारण सोने वाले साथी होने से बचते हैं। घोटुल का आर्थिक कार्य भी है। मुरिया और गोंड कृषि जनजातियाँ हैं। वे शिकार और मछली पकड़ने का भी अभ्यास करते हैं। घोटुल में, युवा लोग एक-दूसरे से आर्थिक गतिविधियों जैसे कृषि, मछली पकड़ने, शिकार आदि भी सीखते हैं।

घोटुल का राजनीतिक कार्य सत्ता और अधिकार का पाठ पढ़ाना है। सलाउ की शक्ति और अधिकार का उपयोग युवा लोगों पर किया जाता है। इसे कोई चुनौती नहीं दे सकता। यदि कोई भी परिवार अपने बच्चों को घोटुल सलाउ भेजने से मना करता है, तो उस मामले को ग्राम परिषद को भेज दिया जाता है, जहां उस परिवार पर कुछ जुर्माना लगाया जाता है। सालाउ घोटुल के सदस्यों को समुदाय के लिए अपनी सेवाओं में योगदान करने का आदेश देता है। इसलिए, सालाऊ की भूमिका केवल घोटुल तक ही सीमित नहीं है, वह गांव के मामलों की देखरेख भी करता है और तदनुसार कार्य करता है।

3.3.9 युवागृह का वर्तमान परिदृश्य

वर्तमान में दुर्भाग्यवश युवागृह की संस्था धीरे-धीरे जनजातियों में कमजोर हो रही है। इसके दो महत्वपूर्ण कारण इस प्रकार हैं:

1. शहर से संपर्क- शहरी लोगों के संपर्क के कारण जनजाति धीरे-धीरे अपने सामाजिक आदर्शों और संस्थानों को भूल रहे हैं और शहरी संस्कृति का पालन कर रहे हैं। जैसा कि शिक्षा अब स्कूलों द्वारा प्रदान की जा रही है, बच्चे शिक्षा प्राप्त करने के लिए युवागृह नहीं जाते हैं।

2. ईसाई मिशनरियों का प्रभाव- आदिवासियों के बीच ईसाई धर्म का प्रसार और उनके बीच ईसाई मिशनरियों की उपस्थिति ने उनके युवा सांस्कृतिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। युवा संगठन की संस्था धीरे-धीरे कमजोर हो रही है, जिससे जनजातियों में सामाजिक अव्यवस्था पैदा हो रही है।

वास्तव में, जैसा कि एल्विन ने सही कहा है, एक जनजाति समूह के सामाजिक संगठन की स्थिति का अनुमान सही रूप से उसकी युवागृह की स्थिति से लगाया जा सकता है, जो अपनी संस्कृति के रखरखाव और विकास का केंद्र है। समकालीन जनजाति युवा तीन धार्मिक प्रभाव में हैं- पारंपरिक जनजाति धर्म, हिंदू धर्म और ईसाई धर्म। अरुणाचल प्रदेश की पहाड़ी का गैलोंग, मध्य प्रदेश का मारिया और बिहार का सौरिया पहाड़िया पहली श्रेणी में आता है। बिहार का संथाल और ओराओं, असम की कच-हरी और कोच और उत्तर प्रदेश और उत्तरांचल राज्य का थारू दूसरी श्रेणी में आता है और मिज़ो और नागा समूह ज्यादातर तीसरी श्रेणी में आते हैं।

हम व्यापक सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक गतिविधियों में, शैक्षिक स्थिति में, उनकी विश्वदृष्टि में और भागीदारी में एक अलग तस्वीर पाते हैं। बड़े पैमाने पर शिक्षा या वयस्क शिक्षा के कार्यक्रमों को लागू करने के लिए स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना की गई है और इस प्रकार स्कूल और कॉलेज स्तर पर शिक्षा

को आसानी से सुलभ बनाया गया है। आज हम दूरदराज के जनजातीय क्षेत्रों में स्कूल और कॉलेज पाते हैं। इसके साथ ही, सरकार की एक नीति है कि सुदूर जनजातीय क्षेत्र को व्यवहार्य राजनीतिक संस्थाओं के रूप में बनाया जाए और सरकार द्वारा उनके विकास के लिए विभिन्न विकास कार्यक्रमों को शुरू किया जाए। नगालैंड और मणिपुर जैसे जनजातीय राज्यों में भी यह व्यवस्था लागू की गई है। जनजाति के क्षेत्रीय विकास के लिए विभिन्न विकास प्राधिकरणों का गठन किया गया है। वे अपने स्वयं के मामलों के प्रबंधन में शामिल रहेते हैं। युवाओं को औपचारिक शिक्षा प्राप्त करना है और प्रशासनिक सेवाओं और योग्यता शक्ति के लिए अर्हता प्राप्त करना है।

उनके पूर्वजों का अलग-थलग इलाक़े में निर्बाध सामुदायिक जीवन के सुख, जो उन्मुख जीवन जीने के लिए सरल था उन्हें कोई अपील नहीं करता था। आज भारत के जनजाति युवाओं को लगता है कि वे न केवल अन्य जनजाति समूहों बल्कि भारतीय संदर्भ में भी प्रतिष्ठा और सत्ता हासिल करेंगे। वे सांसद, विधायक, आई.ए.एस, आई.पी.एस और राज्य नागरिक सेवाओं के लिए कामना करते हैं। हम न केवल अन्य जनजाति समूहों के बीच, बल्कि भारतीय संदर्भ में भी आदिवासियों की प्रतिष्ठा और शक्ति की स्थिति पर काफी बदलाव देखते हैं।

विश्वविद्यालय / कॉलेज, शिक्षित युवा पारंपरिक मानदंडों और व्यवहार के खिलाफ खड़े होते हैं। मुंडा और ओरांव क्रमशः पेरा और धूमुरकिया के खिलाफ हैं। वे इसे वर्तमान दुनिया के लिए अनुपयुक्त मानते थे। संभल के युवाओं को खुले क्षेत्र में लड़के और लड़कियों द्वारा समूह नृत्य पसंद नहीं है और वे इसे एक जर्जर रिवाज के रूप में वर्णित करते हैं। कट्टरपंथी विचारों के बावजूद जनजाति युवाओं द्वारा नापसंद किए जाने वाले कुछ सामाजिक प्रथाओं को अभी भी जारी रखा गया है और वे उनके लिए बहुत प्रतिकूल नहीं हैं। यह उनके द्वारा बुजुर्गों और जेरोन्टोक्रेसी(एक राजनैतिक व्यवस्था जिसमें बुजुर्गों का शासन रहता है) को दिखाए गए सम्मान के कारण है।

जनजाति युवाओं वर्तमान में जनजाति क्षितिज को बड़ा करना और अपने समूह के प्रतिष्ठित निर्वाह की सुविधा प्रदान कराना चाहतें हैं। यह जनजाति की पारंपरिक गरिमा और गौरव को बनाए रखने या एक निश्चीत ऊंचाई पर ले जाना चाहते हैं। ऐसा करने में युवाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। पूर्वी भारत का झारखंड (बिहार के विभाजन के द्वारा बनाया गया एक नया राज्य) आंदोलन, मिज़ोरम का मिज़ो नेशनल मूवमेंट आदि, शिक्षित जनजाति युवाओं का सक्रिय समर्थन और सहयोग से ही हुआ है। मुख्य उद्देश्य अपने स्वयं के क्षेत्र में अधिक स्वायत्तता रहा है। जनजाति युवाओं जैसे बिरसा सेवादल, पहाड़िया उत्थान दल आदि के युवा संगठन अपने कुछ पुराने धार्मिक और सांस्कृतिक विश्वास के खिलाफ लड़ते हैं। भूमि अलगाव, भ्रष्टाचार के खिलाफ सामाजिक युद्ध छेड़कर अपने स्वयं के विकास के लिए भी काम करते हैं और गैर-आदिवासियों और सरकारी अधिकारियों द्वारा शोषण के खिलाफ भी आवाज़ उठाते हैं। यहां तक कि कुछ सामाजिक विकृतियों को जनजाति युवाओं द्वारा हतोत्साहित किया जाता है। अरुणाचल प्रदेश के गैलॉन्ग के

बीच, सुंदर लड़कियों को सबसे अधिक मूल्यवान माना जाता है और अत्यधिक वधू मूल्य प्राप्त होता है। उनकी शादी की रस्मों में उपहारों की एक श्रृंखला शामिल है। इन उपहारों में पीने योग्य शराब, बर्तन, मोतियों, मिट्ठू, नाल इत्यादि का समावेश होता है, जिससे एक बेटे की शादी एक आदमी को एक कंगाली में बदल देती है। इन अनुष्ठानों का आज के युवाओं द्वारा जोरदार विरोध किया जाता है और वे न्यूनतम खर्च के साथ एक साधारण समारोह का पक्ष लेते हैं। भोटिया युवाओं में भी यही स्थिति है, जो अपने युवागृह (रंग-बंग) का विरोध कर रहे हैं। वे इसे एक शैक्षिक केंद्र के रूप में स्थापित करना चाहते हैं। जौनसार बावर (उत्तरांचल की एक जनजाति) में, युवा बहुपति विवाह के खिलाफ हैं। टोडा (तमिलनाडू की एक जनजाति) के बीच, जनजाति युवाओं के प्रयासों के कारण बहुपति विवाह पूरी तरह से गायब हो गया है।

एक आवश्यक बात जो आज जनजाति युवाओं के रवैये में देखी जाती है, वह यह है कि वे हमेशा क्षेत्रीय समूहों के पूरे पैनोरमा को परिप्रेक्ष्य में रखते हैं और आस-पास के समूहों के साथ सामाजिक संचार को बनाए रखने की कोशिश करते हैं, वे कभी भी पड़ोसी समूहों के किसी भी स्वामित्व को स्वीकार नहीं करते हैं और एक व्यावहारिक दृष्टिकोण के साथ अपनी संस्कृति के पुनरोद्धार की नीति का पालन करते हैं। इस प्रकार एक ओर, यह एकीकरण, संबद्धता, घनीकरण, लगाव और दूसरी ओर विखंडन, विघटन और विभाजन की नीति अपनाते हैं।

आज जनजाति युवा संक्रमणकालीन दौर से गुजर रहा है। युवागृह भी शिक्षा, प्रस्तावना आदि से प्रभावित होते हैं। जनजाति युवाओं को जंगल या दूरदराज के इलाकों के विशिष्ट पारंपरिक लोगों के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। इसलिए आज जनजाति युवा अपनी पारंपरिक पहचान खोए बिना शहरी होमो-सेपियंस के साथ खुद को आत्मसात करने का सुनहरा रास्ता बना रहे हैं।

सच्चिदानंद (1965) यह स्पष्ट किया है कि जनजातियों में युवागृह की संस्थाएं क्षय और विघटन की प्रक्रिया में हैं। जनजाति लोगों को उनकी मूल घरेलू भूमि से प्रवास के कारण मुंडा जनजाति के गिटीओरा युवागृह कहीं भी अस्तित्व में नहीं है। उन्होंने अन्य समूहों के साथ कई गठन किये और कई गांवों की स्थापना की। इन परिस्थितियों ने इन सभी पारंपरिक संस्थानों को सीधे रोक दिया, जो एक बार गांव के युवाओं को समायोजित करने और लोगों और समाज की भलाई के लिए कर्तव्यों का पालन करने के लिए पनपे थे।

युवागृह परिस्थितियों के शिकार क्यों हुये? इसका कारण अभियोजन, शिक्षा का विस्तार और ईसाई धर्म के प्रभाव है। अब जनजाति युवा बाहरी दुनिया से परिचित हो रहे हैं, जो विभिन्न सेवाओं में उनकी भागीदारी से स्पष्ट है। शहरी क्षेत्रों में सेक्स वर्जना को देखने के बाद और वेश्यावृत्ति के बारे में जानने के बाद (जहां एक महिला एक से अधिक पुरुषों के साथ यौन संबंध रखने के लिए स्वतंत्र है)। शहरी लोगों के बीच यौन संबंधों के साथ युवागृह में उनकी प्रथाओं की तुलना करने लगे। वे शहरी लोगों को युवागृह की रस्म बताने में शर्म महसूस करते हैं। यहां तक कि आधुनिकता के नाम पर फिर भी अपने युवागृह के अनुष्ठानों से खुद को दूर रखने की कोशिश करें।

भोटिया के रंग-बंग अभी भी मौजूद हैं, लेकिन भोटिया लोग चीन युद्ध 1962 के बाद तिब्बत के साथ व्यापार पर प्रतिबंध के कारण एक व्यवस्थित जीवन जी रहे हैं। उनके पुरुष अपने परिवारों के साथ रह रहे हैं। परिवार नियोजन कार्यक्रम के विस्तार और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की स्थापना के कारण वे यौन जीवन की कुछ वैज्ञानिक अवधारणा से परिचित हुए हैं। पंचायत राज और नागरिक अदालत प्रणाली की शुरूआत के कारण उनके अधिकारों के संरक्षण के बारे में एक जागृति बढ़ी है।

बस्तर जिले की मुरिया जनजाति अब भी घोटुल परंपरा में लगी हुई है। गरीबी के कारण वे शहरी-संस्कृति से लगभग अछूते नहीं हैं। वे बाहरी लोगों को घोटुल के बारे में बताने में भी संकोच करते हैं और वे इसे जारी रखने के लिए कहते हैं। घोटुल केवल स्वतंत्र सेक्स का स्थान नहीं है, बल्कि पारंपरिक ज्ञान के प्रसारण का स्थान भी है जो उनके सांस्कृतिक जीवन की रक्षा और प्रतिबिंबित करता है।

सरकार इन युवागृह का उपयोग संचार या सूचना केंद्रों के रूप में कर रही है। यह रंग-बंग और घोटुल या किसी अन्य युवागृह की मदद से शिक्षा के विस्तार, परिवार नियोजन, स्वास्थ्य संबंधी मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। आज रंग-बंग और घोटुल ने अपना मूल अर्थ खो दिया है और एक नए चेहरे पर ले लिया है।

3.3.10 सारांश (Summary)

इस इकाई में आपने पढ़ा की युवागृह से जनजाति युवाओं के व्यक्तित्व का विकास होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि युवागृह बचपन से वयस्कता तक, आदिवासियों के संक्रमणकालीन चरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक व्यक्ति के मन में अगर युवागृह की एक प्रोफ़ाइल हो तो वह एक जनजाति के सांस्कृतिक जीवन की पूरी तस्वीर खींच सकता है। यह संस्कृति, शिक्षा और रीति-रिवाज का मिलन है जो सामुदायिक स्तर पर एकरूपता उत्पन्न करता है। युवागृह सामाजिक रूप से मुक्त यौन शिक्षा के लिए स्वीकृत स्थान हैं न कि मुक्त सेक्स का। युवागृह का वास्तविक महत्व इस तथ्य में निहित है कि वे ऐसे केंद्र हैं जहां एक जनजाति के बुजुर्ग जनजाति परंपरा और अनुष्ठान, युवा सदस्यों को सिखाते हैं, ताकि वे जनजाति रीति-रिवाजों और सम्मेलनों के उत्तराधिकारी बन सकें और समुदाय के लिए स्वीकार्य हो सकें। वर्तमान में जनजातियों में युवागृह की संस्थाएं क्षय और विघटन की प्रक्रिया में हैं।

युवागृह केवल स्वतंत्र सेक्स का स्थान नहीं है, बल्कि पारंपरिक ज्ञान के प्रसारण का स्थान भी है जो उनके सांस्कृतिक जीवन की रक्षा और प्रतिबिंबित करता है। सरकार इन युवागृह का उपयोग संचार या सूचना केंद्रों के रूप में कर रही है। यह रंग-बंग और घोटुल या किसी अन्य युवागृह की मदद से शिक्षा के विस्तार, परिवार नियोजन, स्वास्थ्य संबंधी मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। आज रंग-बंग और घोटुल ने अपना मूल अर्थ खो दिया है और एक नए चेहरे पर ले लिया है।

3.3.11 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. गोंड जनजाति में युवागृह को किस नाम से जाना जाता है-
   (ख)मोरुंग (ख) घोतुल (ग) रंगबंग (घ) घुमूरिया
2. मुंडा और हो जनजाति में युवागृह को किस नाम से जाना जाता है-
   (क)गिटीओरा (ख) घोतुल (ग) रंगबंग (घ) घुमूरिया
3. रंगबंग नामक युवागृह किस जनजाति में पायी जाती है-
   (क)मारिया (ख) गोंड (ग) भोटिया (घ) कोन्यांक नागा
4. किस जनजाति में लड़के के युवागृह को 'बान' तथा लड़कियों के युवागृह को 'यो' कहते है-
   (क) मारिया (ख) गोंड (ग) भोटिया (घ) कोन्यांक नागा
5. भील जनजाति मुख्यरूप से किस राज्य में पायी जाती है-
   (क) उत्तर प्रदेश (ख) मध्य प्रदेश (ग) बिहार (घ) पश्चिम बंगाल

   उत्तर- 1. (ख) घोतुल, 2. (क) गिटीओरा, 3. (ग) भोटिया, 4. (घ) कोन्यांक नागा, 5. (ख) मध्य प्रदेश

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. युवागृह की उत्पत्ति, महत्व और लक्षण पर निबंध लिखिए?
2. जनजातीय युवागृह की उत्पत्ति के सिद्धांतों की विस्तृत व्याख्या लिखिए।
3. युवागृह को परिभाषित करते हुए युवागृह के महत्त्व की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
4. रंग-बंग एवं घोटुल को परिभाषित करते हुए दोनों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
5. युवागृह का वर्तमान परिदृश्य क्या है ? सविस्तार समझाइए ।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. युवागृह पर संक्षिप्त टिप्पड़ी लिखिए।
2. युवागृह की उत्पत्ति को संक्षेप में लिखिए।
3. युवागृह के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
4. युवागृह के लक्षणों को स्पष्ट कीजिए।
5. रंग-बंग को स्पष्ट कीजिए।

3.312 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Atal, Yogesh. (1965). Adwasi Bharat. Delhi : Rajkamal Prakashan. PP. 46-59
2. Dollard, John. (1950). Six Cultures-Studies of Child Rearing (Beatrice B. Whiting (ed)). New York: Wiley
3. Elwin, V. (1947). Muria & Their Ghotul.
4. Elwin, V. (1968). The Kingdom of Young.
5. Gillin, John. (1948). The Ways Of Men : An Introduction To Anthropology. New York: Appleton
6. Hallowell, A.I. (1945). Socio-psychological aspects of Acculturation pp (177-200) in R. Lington 9ed.) The Science of Man in the World Crisis. New York: Columbia University
7. Hasnain, Nadeem. (1946). Tribal India. Delhi : Jawahar Publisher, p. 79-84.
8. Lannoy, R. (1971). The speaking tree. New Delhi : Oxford University Press.
9. Lovie, R.H. (1949). Social organization. chapters 1 & IX.
10. Lovie, R.H. (1949). Primiline Society. Chapter 10 & 11.
11. Majumdar & Madan. (1984). Introduction of Social Anthropology. Delhi: National Publishing House. P. 111-122.
12. Majumdar. (1950). Bhartiya Jan Sanskriti. Lucknow: Apala Prakashan.
13. Mishra, V.D. (1982). '*Youth & Dissent in Indian Society*', Lucknow: The Eastern Anthropologist, EFCS.
14. Murdock, George. (1945). *" The Common Denominators of Cultural Materials"*(pp 123-142), in Ralph Linton (ed) The Sexual of Man in the World Crisis, New York.
15. Narayan, Sachindra. (1986). Tribal youth : Problem and Prospect. PP. 41-48, Indian Anthropologist Vol. 16 No.-1, New Delhi.
16. Pant, S.C. & Sundaram, J. (1998). *"The muria tribe and the Ghotul"* in I.N. Kulshrestha (ed.) Education of women from the socially Backward communities New Delhi. Vikas Publishers.

17. Reifield, H. Ahmad, Imtiaz & Margrit, Pernau. (2003). The Diverse life worlds of Indian child hood P-101 Family & Gender Sage Publication London.

18. Roy, S.C. (1914). The Mundas & Their Country Ranchi.

19. Roy, S.C. (1918). The Oraons : Ranchi

20. Sachidanand. (1965). Profiles of Tribal Culture in Bihar. Culcutta : Punthi Pustak.

21. Vidyarathi, L.P. (1975). Indian Tribe. Lucknow: R.P.D. Prakashan.

इकाई 4 आदिम अर्थव्यवस्था
(Primitive Economy)

इकाई की रूपरेखा

3.4.0 उद्देश्य

3.4.1 प्रस्तावना (Introduction)

3.4.2 आर्थिक व्यवस्था

3.4.3 सरल समाजों की आर्थिक प्रणाली

3.4.4 आदिम अर्थव्यवस्था की परिभाषाएं

3.4.5 जनजातीय अर्थव्यवस्था

3.4.6 भारतीय जनजातीय अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक विशेषताएं

3.4.7 आदिम अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण

- **3.4.7.1.** शिकार एवं संकलन स्तर की अर्थव्यवस्था
- **3.4.7.2.** पशुपालन स्तर की अर्थव्यवस्था
- **3.4.7.3.** कृषि स्तर की अर्थव्यवस्था- पहाड़ की खेती तथा 'स्लेश एंड बर्न' अर्थव्यवस्था
- **3.4.7.4.** औद्योगिक स्तर की अर्थव्यवस्था
- **3.4.7.5** शिल्पकार

3.4.8 सरल समाज की अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

3.4.9 विभिन्न कार्यों में लगी भारतीय जनजाति

3.4.10 विनिमय प्रणाली

- **3.4.10.1** वस्तु विनिमय (बार्टर)
- **3.4.10.2** अनुष्ठानिक या उत्सवी विनिमय
- **3.4.10.3** साधारण विनिमय या अन्योनियता

3.4.11 सरल तथा जटिल अर्थव्यवस्था में तुलनात्मक अंतर

3.4.12 सारांश (Summary)

3.4.12 बोध प्रश्न

3.4.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.4.0 के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप यह जानने में सक्षम होंगे कि :

- सरल समाजों की आर्थिक प्रणाली कि क्या विशेषताएं होती है ?
- आदिम अर्थव्यवस्था कि विशेषताएँ और लक्षण क्या हैं?
- विनिमय प्रणाली का क्या अर्थ है ?

3.4.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव अपनी आधारभुत आवश्यकताओं कि पूर्ति हेतु विविध गतिविधियां करता है। इस प्रकार उत्पादन, उपभोग, व्यय तथा वितरण की व्यवस्था प्रारंभ होती हैं जो अंततः मनुष्य के आर्थिक जीवन को संचालित करती हैं। संक्षेप में इसी को आर्थिक व्यवस्था कहते हैं। आदिम अर्थव्यवस्था में आर्थिक गतिविधियां समतावादी फ्रेम-वर्क के भीतर होती है। उत्पादन प्रणाली सरल तो होती है लेकिन वस्तुओं और सेवाओं का आदान-प्रदान एक जटिल रूप लेता है। विनिमय के रूप पारस्परिक और पुनर्वितरण प्रकार के होते हैं। यह इकाई आदिम अर्थव्यवस्था कि विशेषताएं और आधुनिक अर्थव्यवस्था से विभिन्नता का विश्लेषण करती है।

3.4.2 आर्थिक व्यवस्था (Primitive Economy)

मनुष्य की तीन आधारभूत एवं प्राथमिक आवश्यकताएं होती है भोजन, वस्त्र एवं मकान जिनको कार्ल मार्क्स ने 'जीवन के आवश्यक भौतिक मूल्य कहा'। इन्हीं को जुटाने के प्रयास में मनुष्य विभिन्न समूहों से समझौता करता है और इस प्रकार उत्पादन, उपभोग, व्यय तथा वितरण की व्यवस्था प्रारंभ होती हैं जो अंततः मनुष्य के आर्थिक जीवन को संचालित करती हैं। संक्षेप में इसी को आर्थिक व्यवस्था कहते हैं।

जनजातियों से संबंधित आर्थिक संगठन का अध्ययन सर्वप्रथम ट्रोब्रीयांड दीप वासियों का ब्रिटिश मानवशास्त्री मैलिनोवस्की (1922) में किया गया था। इसके पश्चात रेमंड फर्थ ने न्यूजीलैंड की माओरी जनजाति तथा पॉलिनेशियाई द्वीप समूह में स्थित जनजातियों के आर्थिक संगठनों का प्रकार्यात्मक विश्लेषण किया। भारतीय जनजातियों के आर्थिक संगठन संबंधी अध्ययन सर्वप्रथम दो अर्थशास्त्रियों डी.एस. नाग एवं आर.पी. सक्सेना ने किया। डी.एस. नाग ने मध्य प्रदेश की बैगा जनजाति तथा आर. पी. सक्सेना ने मध्य प्रदेश की अन्य जनजातियों का एवं एल.पी. विद्यार्थी ने मलेर जनजाति बिहार के आर्थिक संगठन का अध्ययन किया जिन्हें आदिम अर्थव्यवस्था नाम से जाना गया।

3.4.3 सरल समाजों की आर्थिक प्रणाली

हर्बर्ट स्पेंसर ने सरल समाज को एक ऐसी प्रणाली के रूप में परिभाषित किया है, जो एक सरल कार्य करने के लिए पूरी तरह से असंबद्ध हो और जिसके कुछ भाग सार्वजनिक अंत के लिए सहयोग करते हैं। साधारण समाजों में श्रम विभाजन कम होता है। व्यावसायिक भेदभाव मुख्य रूप से जन्म, लिंग और आयु तक सीमित होता है। इन समाजों का कोई विशेष आर्थिक संगठन नहीं है। उत्पादक कौशल सरल हैं और उत्पादकता कम होती है। इसलिए ये समाज बड़े जनसंख्या आकार को बनाए नहीं रख सकते हैं। अधिकांश वयस्क सदस्य भोजन जुटाने की गतिविधियों में लगे हुए हैं। बहुत कम या कोई अधिशेष नहीं होता है, इसलिए सामाजिक असमानताएं महत्वपूर्ण नहीं हैं और आर्थिक गतिविधियां समतावादी फ्रेम-वर्क के भीतर होती है। उत्पादन प्रणाली सरल है लेकिन वस्तुओं और सेवाओं का आदान-प्रदान एक जटिल रूप है। विनिमय के रूप पारस्परिक और पुनर्वितरण प्रकार के हैं। प्रचुर मात्रा में भोजन और अन्य संसाधनों वाले क्षेत्रों में रहने वाले कुछ सरल समाज विशिष्ट उपभोग मंक लिप्त हैं। सदस्यों के पास उच्च स्तर की उपलब्धि कि प्रेरणा का अभाव है क्योंकि आर्थिक अधिशेष के संचय का कोई तीव्र पूर्वाग्रह नहीं है। अधिकांशतः आर्थिक गतिविधियाँ भंडारण या संचय के बजाय देने पर जोर देती हैं। उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व अस्तित्वहीन है। घरेलू अर्थव्यवस्था और सामुदायिक अर्थव्यवस्था के बीच कोई स्पष्ट अलगाव नहीं है क्योंकि वे अलग-अलग अंश में परस्पर व्याप्त हैं। जादू-धार्मिक विचारों से युक्त पवित्र व्यवस्था में आर्थिक व्यवस्था हावी है। नवाचार दुर्लभ है और परिवर्तन धीमा है। प्रथागत प्रथाओं और मानदंड माल और सेवाओं के उत्पादन और विनिमय को विनियमित करते हैं।

3.4.4 आदिम अर्थव्यवस्था की परिभाषाएं (Definition of Primitive Economy)

रेमंड फर्थ के अनुसार "अर्थव्यवस्था मानवीय क्रियाकलापों का वह निश्चित क्षेत्र है, जिसका संबंध साधनों के परीसीमित उपयोग और संगठन से है। इस प्रकार मनुष्य विवेक द्वारा आवश्यकताओं से तारतम्य स्थापित करता है"।

मजुमदार और मदान के अनुसार "जीवन के दिन प्रतिदिन की अधिकाधिक आवश्यकताओं को कम से कम परिश्रम में पूरा करने हेतु मानव संबंधो तथा प्रयत्नों को नियमित एवं संगठित करना ही अर्थव्यवस्थाहै"।

3.4.5 जनजातीय अर्थव्यवस्था (Tribal Economy)

अर्थव्यवस्था किसी भी सामाजिक प्रणाली की प्रमुख उप-प्रणाली में से एक है। भारतीय आदिवासी के अध्ययन अभ्यास के लिए आर्थिक प्रणाली की संरचना और गतिशीलता की समझ आवश्यक है क्योंकि आदिवासी कल्याण के लिए अधिकांश चुनौतियां उसी में से आती हैं। आदिवासी समाज और गैर-आदिवासी समाज की आर्थिक संरचनाओं के बीच महत्वपूर्ण अंतर है, आदिवासी अर्थव्यवस्थाएं विभिन्न स्तरों पर होती

हैं, जिसमें भोजन एकत्र करने से लेकर कृषि श्रमिक प्रकार शामिल हैं।

अर्थव्यवस्था का सीधा सा मतलब है अर्थशास्त्र की संस्था। अर्थव्यवस्था को एक संस्थागत व्यवस्था के रूप में समझा जा सकता है जो व्यक्तिगत और सामुदायिक जीवन के लिए अस्तित्व के भौतिक साधनों के अधिग्रहण, उत्पादन और वितरण की सुविधा प्रदान करती है। अर्थशास्त्र प्रणाली या इसकी संरचना दोहराव और अपेक्षाकृत स्थायी है। डाल्टन (1969) के अनुसार "एक अर्थव्यवस्था संस्थागत गतिविधियों का एक समूह है, जो सामग्री और माल और विशेषज्ञ सेवाओं के अधिग्रहण, उत्पादन और वितरण के लिए प्राकृतिक संसाधनों, मानव श्रम और प्रौद्योगिकी को जोड़ती है"।

डाल्टन (1971) तीन परस्पर संबंधित विशेषताएं हैं जो आदिवासी अर्थव्यवस्था की विशेषता हैं। वे इसप्रकारहैं:

1. यह एक संरचनात्मक व्यवस्था है और भौतिक वस्तुओं और सेवाओं के अधिग्रहण और उत्पादन नियमित हैं।

2. माल और सेवाओं के अधिग्रहण और उत्पादन की प्रक्रिया में, मानव श्रम का विभाजन, प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग और प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग (उपकरण और ज्ञान) शामिल हैं।

3. वितरण प्रक्रिया में, सतही उपकरणों और प्रथाओं जैसे बाजार स्थान, कुछ प्रकार के लेनदेन को मापने के लिए उपकरण शामिल हैं।

इस प्रकार अर्थव्यवस्था को एक संस्थागत और मानक संरचना के रूप में समझा जा सकता है जो लोगों के समूह के बीच आर्थिक संबंधों को नियंत्रित करती है। यह समूह एक आदिवासी गाँव से लेकर एक आधुनिक राष्ट्र यहाँ तक कि पूरी दुनिया में हो सकता है। इस प्रणाली द्वारा शासित प्रमुख आर्थिक प्रक्रियाएं, मानव अस्तित्व और जीविका के लिए आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं का अधिग्रहण, उत्पादन और वितरण हैं।

3.4.6 भारतीय जनजातीय अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक विशेषताएं (Structural Characteristics of Economy of Indian Tribal)

एल.पी. विद्यार्थी और **बी.के. राय (1976)** ने नौ संरचनात्मक विशेषताओं को इंगित किया है जो भारत में जनजातीय अर्थव्यवस्थाओं की विशेषता है। वे इस प्रकार हैं-

1. वन आधारित अर्थव्यवस्था

कुछ जनजातियों की अर्थव्यवस्था वन पारिस्थितिकी के चारों ओर घूमती है। न केवल उनकी अर्थव्यवस्था, बल्कि संस्कृति और सामाजिक संगठन भी जंगलों से जुड़े हुए हैं। वन में रहने वाले सभी आदिवासीयों के लिए वन आजीविका का एक प्रमुख प्राकृतिक संसाधन आधार का निर्माण करता है। यह लोग अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए जंगलों पर निर्भर होते हैं। बाहरी दुनिया से बहुत तकनीकी सहायता के बिना ये आदिवासी सरल संसाधनों की मदद से वन संसाधनों का दोहन करते हैं।

2. उत्पादन का घरेलू तरीका

परिवार, भारत की आदिवासी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साथ-साथ खपत की मूल इकाई का निर्माण करता है। जनजातीय समुदाय की सरल अर्थव्यवस्था में परिवार के सभी सदस्य मिलकर उत्पादन की इकाई बनाते हैं और उत्पादन और उपभोग की आर्थिक प्रक्रिया में सीधे संलग्न होते हैं। श्रम के आवंटन के निर्णय लेने की प्रक्रिया, और उपज पारिवारिक दोषों से नियंत्रित होती है। घरेलू उत्पादन मुख्य रूप से बाजार के लिए उनकी खपत की जरूरतों को पूरा करता है। आदिवासी अर्थव्यवस्था को निर्वाह अर्थव्यवस्था कहना

उचित है। आदिवासी परिवार में श्रम का विभाजन आयु और लिंग पर आधारित है। श्रम का लिंग विभाजन आदिम विश्वास पर आधारित है कि महिलाएं शारीरिक रूप से कमजोर होती हैं। लड़कों और लड़कियों को उनकी उम्र के अनुकूल अलग-अलग काम आवंटित किए जाते हैं।

3. सरल प्रौद्योगिकी

एक अर्थव्यवस्था का विकास उसकी तकनीकी प्रगति के स्तर पर निर्भर करता है। प्रौद्योगिकी में उत्पादक उद्देश्य के लिए प्राकृतिक और साथ ही मानव संसाधनों के उपयोग में औजारों और उपकरणों का उपयोग शामिल है। आदिवासी अर्थव्यवस्था की उत्पादक और वितरण प्रक्रिया में उपयोग किए जाने वाले उपकरण आम तौर पर कच्चे, सरल और स्वदेशी रूप से बाहर की सहायता के बिना विकसित होते हैं। दैहिक श्रम और उच्च स्तर की अपव्यय और कठिनाई, जो उत्पादन के उनके निर्वाह स्तर के लिए उपयुक्त है। कृषि का हल, लकड़ी के एक टुकड़े से बना है और गहरी जुताई नहीं कर सकता है।

4. आर्थिक व्यवहार में लाभ की अनुपस्थिति

लाभ का अधिकता, आर्थिक लेनदेन का मुख्य लक्ष्य है जो आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं को संचालित करता है। लेकिन लाभ का उद्देश्य भारत की आदिवासी अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक व्यवहार में लगभग अनुपस्थित है। दो प्रमुख संस्थागत कारक अर्थव्यवस्था की सांप्रदायिक प्रकृति और विनिमय के माध्यम के रूप में धन का अभाव इसके लिए जिम्मेदार हैं। साथी पड़ोसी के लिए स्वतंत्र श्रम के पारस्परिक दायित्व और विस्तार के परिणामस्वरूप कोई महत्वपूर्ण अधिशेष नहीं है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि वस्तुओं और सेवाओं का आदान-प्रदान वस्तु विनिमय प्रणाली से होता है। विनिमय का माध्यम के रूप में पैसा आदिवासी अर्थव्यवस्थाओं में लगभग अनुपस्थित है। इसलिए माल और सेवाओं के मूल्य को मापने और विनिमय प्रक्रिया में उत्पन्न लाभ के लिए धन के रूप में संग्रहीत करने की कोई गुंजाइश नहीं है।

5. समुदाय: आर्थिक सहयोग की एक इकाई

समुदाय जनजातिय समाजों में एक सहकारी इकाई के रूप में काम करता है और सामूहिक रूप से आर्थिक गतिविधियों को दूर किया जाता है। आदिम अर्थव्यवस्था अन्य सामुदायिक संबंधों में अंतर्निहित है। डाल्टन (1991) ने माना कि निम्न स्तर की प्रौद्योगिकी, अर्थव्यवस्था के छोटे आकार और बाहरी दुनिया से इसके सापेक्ष अलगाव जैसे कारक कई सामाजिक रिश्तों को साझा करने वाले पारस्परिक निर्भरता में योगदान करते हैं। आर्थिक बातचीत में, प्रत्येक आदिवासी ग्राम समुदाय को सहकारी इकाई माना जाता है। ग्रामीणों के करीबी आर्थिक संबंध हैं। उनमें से ज्यादातर सामान्य आर्थिक गतिविधियों में लगे हुए हैं जैसे कि मवेशियों को चराना और कृषि क्षेत्रों को संयुक्त रूप से साथ में। उनके युवा संयुक्त रूप से मवेशियों को चराने और एक साथ अपने गांव की रक्षा करते हैं। वयस्क पुरुष और महिला संयुक्त रूप से पारस्परिक आधार पर एक दूसरे के क्षेत्र में धान की रोपाई और कटाई करते हैं।

6. उपहार और औपचारिक विनिमय

सामाजिक अंतरंगों को आतिथ्य देने वाले पारस्परिक उपहार आदिवासी अर्थव्यवस्थाओं में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आदिवासी समाजों में वितरण की प्रक्रिया गैर-आर्थिक संबंधपरक संजाल का हिस्सा है और उपहार और औपचारिक विनिमय का रूप लेती है। प्रत्येक समूह, चाहे एक परिवार, रिश्तेदारों, समुदायों, ग्रामीणों या कुल के रूप में जनजाति, पारस्परिकता के उपयुक्त मानदंड दर्शाती है। आर्थिक मानवविज्ञानी डाल्टन (1971) का मानना है कि लेन-देन का जनजातीय तरीका पारस्परिकता यानी भौतिक उपहार और प्रत्युत्तर उपहार है, जो रिश्तेदारी के सामाजिक दायित्वों से प्रेरित है। सर्विस (1966) के अनुसार आपसी दायित्व तीन मानक, डिग्री या स्तर पर भिन्न होते हैं। पारस्परिक सामान्य, संतुलित पारस्परिकता के स्तरों में दी गई सहायता लेना, वापस देना और साझा करना, आतिथ्य उपहार लेना, पारस्परिक सहायता एवं उदारता शामिल है। संतुलित पारस्परिकता प्रत्यक्ष विनिमय है और प्राप्त सामान, समान मूल्य का होना चाहिए। वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान की वस्तु विनिमय प्रणाली इस पारस्परिकता का सबसे अच्छा उदाहरण है। नकारात्मक पारस्परिकता कुछ नहीं के लिए कुछ पाने की कोशिश है।

7. आवधिक बाजार

बाजार एक प्रमुख आर्थिक संस्थान है जो सभी लोगों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के वितरण की सुविधा प्रदान करता है, साथ ही मानवशास्त्रियों ने जनजातियों में स्थायी बाजार की अनुपस्थिति का अवलोकन किया। ग्रामीण क्षेत्रों में, आवधिक बाजार और वस्तु विनिमय की प्रणाली आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ये आवधिक बाजार साप्ताहिक, पाक्षिक, द्वैध रूप से और ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक थे। ये आवधिक बाजार, जिन्हें स्थानीय रूप से बाजार, हाट के रूप में जाना जाता है, आमतौर पर 5-10 KM के दायरे में आदिवासी ग्रामीणों की सेवा करते हैं। और समय के नियमित अंतराल पर एक विशिष्ट स्थान पर कार्य करते हैं। इन बाजारों में, विभिन्न जनजातियों और जाति समूहों के लोग एक साथ आते हैं और अपने व्यापार लेनदेन का संचालन करते हैं। इसमें देशी (स्थानीय रूप से उत्पादित) सामान जैसे खाद्यान्न, स्थानीय हाथ से बुने हुए कपड़े, टोकरियाँ आदि का विनिमय वस्तु विनिमय में किया जाता है, जबकि धन का उपयोग गैर-देशी (जनजातीय क्षेत्र के बाहर उत्पादित) सामानों में किया जाता है। नमक, मिल के कपड़े, रेडीमेड कपड़े, सौंदर्य प्रसाधन, साबुन आदि के रूप में। समय-समय पर बाजार आदिवासी सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। वे राष्ट्रीय और वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ जनजातीय अर्थव्यवस्था की बातचीत के अलावा जाति और जनजाति के लोगों के बीच सांस्कृतिक संपर्क को सुविधाजनक बना रहे हैं। साप्ताहिक बाजार व्यापक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के साथ आदिवासी अर्थव्यवस्था को एकीकृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह आदिवासी अर्थव्यवस्था के नवाचार,

विमुद्रीकरण को बढ़ावा देता है। बाजार ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक जीवन का केंद्र है। यह क्षेत्र में व्यावसायिक रूप से विविध समुदायों के संसाधनों और भौतिक वस्तुओं के पुनर्वितरण के केंद्र के रूप में कार्य करता है।

8. परस्पर निर्भरता

जनजाति के बीच आर्थिक संबंधों को अक्सर अन्योन्याश्रितता के रूप में माना जाता है, जबकि प्रतिस्पर्धा की भावना आदिवासी आर्थिक जीवन में लगभग अनुपस्थित है। जनजातियों, या जनजातीय लोगों और गैर-जनजातीय लोगों के बीच संबंध कार्यात्मक रूप से अन्योन्याश्रित हैं। विद्यार्थी और राय (1976) ने पाया कि आर्थिक कार्यात्मक अन्योन्याश्रय जजमानी प्रणाली के समान है, जो देश के अधिकांश क्षेत्रों में हिंदू जाति समूहों के बीच पाई जाती है। जजमानी प्रणाली के तहत, प्रत्येक जाति समूह, एक गांव के भीतर, अन्य जाति के लोगों को कुछ मानकीकृत सेवाएं देने की अपेक्षा की जाती है। परिवार के मुखिया को एक व्यक्ति जो जजमान के रूप में जाना जाता है, जबकि जजमान के कमिन के रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति। जनजातियों के बीच आर्थिक अंतरनिर्भरता देश के विभिन्न जनजातीय क्षेत्रों में विभिन्न तरीकों से देखी गई है।

3.4.7 आदिम अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण

डॉ. श्यामा चरण दुबे का वर्गीकरण भोजन प्राप्त करना तथा उत्पादन के आधार पर आपने आदिम अर्थव्यवस्था को मुख्य रूप से तीन भागों में बांटा-

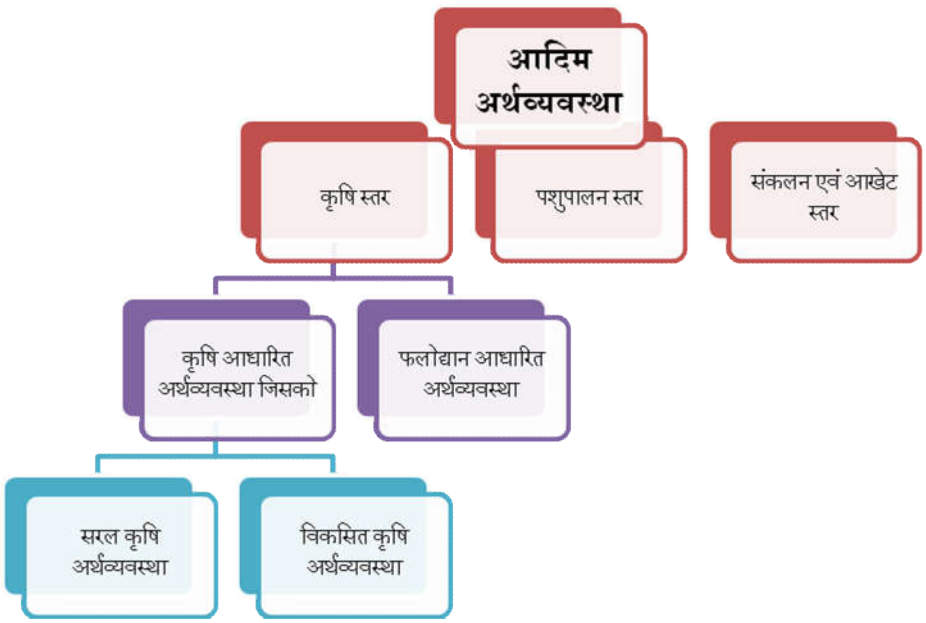

फोरडे तथा हर्सकोविट्स का वर्गीकरण

जैकब तथा स्टर्न का वर्गीकरण diagram

ग्रास का वर्गीकरण

हिल्डर ब्रांड का वर्गीकरण

लिस्ट तथा एडम स्मिथ का वर्गीकरण

भारतीय समाज में निर्वाह और आजीविका के स्रोत विविध हैं। खानाबदोश शिकारी और भोजन-एकत्रित करने वालों की शुद्ध और सरल परजीवी आदत से शुरू ज्यादातर बसे हुए कृषकों और औद्योगिक श्रमिकों के समूह के निर्वाह के स्रोतों के लिए प्रकृति पर निर्भर हैं। विभिन्न वर्गीकरणो के आधार पर अर्थव्यवस्था को निम्न चार भागों में बांटा जा सकता है।

3.4.7.1 शिकार एवं संकलन स्तर की अर्थव्यवस्था – बील्स एवं हाईजर ने इस प्रकार की अर्थव्यवस्था वाले समूह की चार विशेषताएं बतलायीं -

- यह लोग घुमक्कड जीवन व्यतीत करते हैं
- यह लोग अधिकांशतः रक्त संबंधी परिवारों के सदस्य होते हैं
- जनसंख्या घनत्व बहुत कम होता है
- जंगलों में निवास करने के कारण वर्तमान संस्कृतियों का प्रभाव नहीं होता

अंडमानी, ओन्गे, जारवा, कादर, खारिया, लोढा आदि खानाबदोश आदिम जनजातियाँ इस श्रेणी में शामिल हैं, अब तक उनकी अर्थव्यवस्था निर्वाह स्तर की है। वे आमतौर पर ग्रामीण-शहरी जीवन से दूर रहते हैं और एक साधारण प्रकार का सामाजिक संगठन रखते हैं। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था वाली जनजातियां भारत में कादर, चेंचू, खारिया, कोरवा है। अंडमान द्वीपसमूह की जनजातियां जारवा, ओंगे, ग्रेट अंडमानी, निकोबारी। श्रीलंका की वेद्दा, ऑस्ट्रेलिया की अरुणटा और अफ्रीका की बुशमैन, पिग्मी है।

3.4.7.2 पशुपालन स्तर की अर्थव्यवस्था- अर्थव्यवस्था के इस स्तर में मानव में स्थिरता आई इसमें मानव ने पशुओं को मारने की अपेक्षा उन्हें पालना अधिक उपयोगी समझा। सी.डी. फोर्ड ने पशुओं के चार उपयोग बताएं-

- मांस खाने के लिए
- बोझा ढोने और गाड़ी खींचने के लिए
- चमड़े के उपयोग
- सवारी के लिए

अल्मोड़ा के भोटिया और दक्षिण भारत की नीलगिरी पहाड़ियों की टोडा पशुपालन अर्थव्यवस्था में रहते हैं। वे कृषि, शिकार, मछली पकड़ने आदि का अभ्यास करते हैं। वे आधुनिक दुनिया से बहुत दूर रहते हैं और थोड़ा विकसित लेकिन गैर-जटिल सामाजिक संरचना में रहते हैं। वे दोनों, बहुविवाह प्रणाली का अभ्यास करते हैं। वे भैंस और गायों का पालन करते हैं, दिन-प्रतिदिन उपयोग की वस्तुओं की खरीद के लिए दूध-उत्पादों का आदान-प्रदान किया जा रहा है। पशुपालन करने वाली प्रमुख भारतीय जनजातियां है तमिलनाडु के टोडा (भैंस पालन)हिमाचल की गद्दी (भेड़ पालक) उत्तरांचल के भोटिया ऋतु प्रवास करते हैं एस्किमो रेंडियर और कुत्ते पालते हैं।

3.4.7.3 कृषि स्तर की अर्थव्यवस्था- इस अवस्था के पहले स्तर में फल-फूल देने वाले पौधे उगाए गए होंगे ऐसा संभवत इथोपिया में हुआ होगा। अनाज की खेती सर्वप्रथम मिश्र से शुरू हुई होगी। उन्नत समाजों के काश्तकारों की तरह, भारत में कुछ आदिवासी स्थायी रूप से बसे हुए कृषि का सहारा ले रहे हैं। ओराओं, मुंडा, गोंड, भूमिज, हो, संताल, वर्तमान में कुशल कृषक हैं। वे रोपाई विधि से गीली खेती करते हैं। कृत्रिम सिंचाई और खाद के अनुप्रयोग उनके लिए अज्ञात नहीं हैं। इन कृषकों के ज्ञान में फसलों का परित्याग होता है। वे अपने स्वामित्व वाले क्षेत्रों में और साथ ही दूसरों के क्षेत्रों में शेयर-क्रॉपर के रूप में काम करते हैं। आदिवासी आबादी के प्रमुख थोक कृषि मजदूर के रूप में काम करते हैं। नौकरियों की तलाश में, ये भूमिहीन कृषि मजदूर पड़ोसी राज्यों में मौसमी प्रवास में भाग लेते हैं। इन बसे हुए किसान आदिवासियों के सामाजिक

और धार्मिक संगठन बहुत विकसित और अत्यधिक जटिल हैं। बड़ों की पारंपरिक परिषद (पंचायत) को सामाजिक मानदंडों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है। भारत में मुख्य कृषि करने वाली जनजातियां हैं गोंड, भील, मुंडा, संथाल, बैगा, खासी, जयंतीया आदि।

3.4.7.4 पहाड़ की खेती तथा 'स्लेश एंड बर्न' अर्थव्यवस्था: गोंड, नागा, खारिया, जुआंग, रियांग, खासी, गारो, "स्लेश एंड बर्न" विधि द्वारा आदिम खेती करते हैं। इसे विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। असम की जनजातियां इसे झूम, गोंड को पोडू आदि कहती हैं। इस उद्देश्य के लिए एक पहाड़ी वनस्थली का चयन किया जाता है, जो लगातार तीन खेती के मौसम के बाद छोड़ दी जा सकती है क्योंकि इस मिट्टी से प्रजनन क्षमता कम हो जाती है। पौधे, झाड़ियाँ और उगने वाले पेड़ काट दिए जाते हैं और एक या एक महीने के लिए सूखने के लिए छोड़ दिए जाते हैं। फिर, उनमें आग लगा दी जाती है। राख, मिट्टी में खाद के रूप में काम करती है। मानसून की शुरुआत में, मिट्टी को एक साधारण खुदाई छड़ी या कुदाल से ढीला किया जाता है। विभिन्न प्रकार की खरीफ फसलों के बीज जैसे बाजरा, ज्वार, कुर्थी, दालें, आलू, तंबाकू और गन्ना इस प्रकार की खेती में उगाए जाते हैं। यह आंशिक रूप से उनका समर्थन कर सकता था लेकिन पूरी तरह से नहीं। उनमे निर्वाह के सहायक स्रोत के रूप में कुछ अन्य व्यवसाय भी होते हैं।

3.4.7.5 औद्योगिक स्तर की अर्थव्यवस्था- आदिम समाज में टोकरी बनाना, रस्सी बनाना, चटाई बनाना, लोहे के औजार एवं बर्तन आदि बनाए जाते हैं। आदिवासियों का एक बड़ा हिस्सा आर्थिक कठिनाई के कारण भूमिहीन श्रमिक वर्ग बन गया है, जो वर्तमान में उनका सामना कर रहे हैं। वे विभिन्न व्यवसायों में अपने दैहिक श्रम को बेचकर अपनी आजीविका कमाते हैं।

3.4.7.6 शिल्पकार: कुछ आदिवासी अभी भी निर्वाह के स्रोत के रूप में अपने पारंपरिक शिल्प को बरकरार रख रहे हैं। नागा और खासी रंगीन हाथ-करघा उत्पादों के विशेषज्ञ हैं और लोहार पारंपरिक काले लोहे के उपकरण के लिए हैं। अपने पारंपरिक विशेष शिल्प में मामूली लाभ के साथ, ये आदिवासी वर्तमान में अन्य प्रकार की नौकरियों का सहारा ले रहे हैं। उनकी अर्थव्यवस्था का मिश्रित पैटर्न उनकी सामाजिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

3.4.8 सरल समाज की अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

3.4.9 विभिन्न कार्यों में लगी भारतीय जनजाति

3.4.10 विनिमय प्रणाली

3.4.10.1 वस्तु विनिमय (बार्टर) - यह प्रत्यक्ष विनिमय है। इस के तीन रूप हो सकते हैं-

वस्तु विनिमय के दो प्रकार होते हैं

1. मुद्रा वस्तु विनिमय
2. मूक वस्तु विनिमय

मूक वस्तु विनिमय- जनजातियों में यह एक अनोखी प्रथा पाई जाती है। हर्षकोबिट्स ने इसे मौन व्यापार कहा। इस प्रकार के व्यापार में दोनों पक्षों में भेंट हुए बिना ही वस्तुओं का विनिमय होता है। यह प्रथा श्रीलंका की वेद्दा जनजाति तथा उत्तरांचल के राजी जनजाति में पाई जाती है। यह लोग एक ही स्थान पर रात के अंधकार में अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं रख देते हैं तथा जिन वस्तुओं की उन्हें आवश्यकता होती है उनका संकेत छोड़ देते हैं। कुछ समय पश्चात दूसरा पक्ष आकर अपने जरूरत की चीजें ले जाता है और संकेत के अनुसार अपनी वस्तु में छोड़ जाता है। इसी प्रकार के व्यापार मलाया के सेमंग तथा सकाई जनजाति के बीच होता है। यह लोग आपस में शत्रु होते हुए भी दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं का व्यापार करते हैं। अपनी शत्रुता को व्यापार से अलग रखते हैं। अफ्रीका के उत्तरी पश्चिमी तट पर निवास करने वाली जनजातियां कार्थिगिनियन व्यापारियों के साथ मूक व्यापार करती है। यह लोग तट पर आदिवासियों की आवश्यकता अनुसार दैनिक जीवन से संबंधित वस्तु में रख देते हैं और आग जला देते हैं इसका धुआं देखकर आदिवासी लोग आते हैं। बदले में सोना रखकर अपनी आवश्यकता की वस्तु ले लेते हैं। इस प्रकार के अन्य उदाहरण आसाम के नागा कलात्मक वस्तुओं का व्यापार। राजस्थान के भीलों के कृषि उत्पाद से करते हैं। टोडा दूध का और कोटा बांस की वस्तुओं का व्यापार करते हैं। जापान की ऐनु अपने लकड़ी के उत्पादों जैसे थालियां, चम्मच तथा धातु के बर्तन वाले चाकू आदि का व्यापार अपने पड़ोसी जनजाति नारोन से चमड़े के वस्त्र और थैले आदि के बदले करते हैं। इस प्रकार साइबेरिया की चूची जनजाति, अलास्का की अलास्कान जनजाति, कांगो की पिग्मी जनजाति तथा बंटू जनजाति अफ्रीका आदि में वस्तु विनिमय देखने को मिलता है।

3.4.10.2 अनुष्ठानिक या उत्सवी विनिमय- दुर्खीम के अनुगामी मार्शल मास ने अपनी पुस्तक ‘द गिफ्ट’ में सरल समाजों में उपहार के महत्व को बतलाने के लिए कुला तथा पोटलॉच नामक विनिमय संस्थाओं का सर्वप्रथम उल्लेख किया।

कुला प्रथा- इस प्रथा का विस्तार से वर्णन ब्रिटिश मानवशास्त्री मैलिनोवस्की ने किया है। यह प्रथा ट्रोब्रीयांड, न्यूगिनी, एम्फ्लेट द्वीप लौन्फ्ले द्वीप तथा डोबू में पाई जाती है।

यह प्रथा न सिर्फ आर्थिक है, बल्कि राजनीतिक, संस्कारिक, जादुई, धार्मिक तथा मनोरंजन आदि का संकुल है। मैलिनोवस्की के अनुसार इस में दो पक्षों के बीच आभूषणों का विनिमय होता है। यह आभूषण दो प्रकार के होते हैं लाल शंख का हार जिसे **सोलावा** कहते हैं और सफेद शंख का बाजूबंद जिसे मवाली कहते हैं।

इनमें का एक निश्चित क्रम होता है **सोलावा** सदैव घड़ी की सुई की दिशा में तथा **म्वाली** ठीक इसके विपरीत, घड़ी की सुई की विपरीत दिशा के क्रम में होता है।

कुला व्यापार की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं

- कुला वस्तुओं का आर्थिक महत्व उतना नहीं जितना की धार्मिक, सांस्कृतिक महत्व होता है।
- इन वस्तुओं को रखने से सदस्यों की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है।
- यह एक स्थाई संबंध है जिन लोगों में एक बार कुला संबंध स्थापित हो जाता है फिर वह सदैव बना रहता है।
- कुला साझेदार आपस में भिन्न होते हैं और समय आने पर शत्रुओं से एक-दूसरे की रक्षा करते हैं।
- कुला यात्रा या अभियान में केवल पुरुष ही जाते हैं स्त्रियां नहीं।
- भांजा अपने मामा के कूला समूह का स्वत: सदस्य होता है।
- इसमें सौलावा तथा मवाली के विनिमय के साथ-साथ अनावश्यक वस्तुओं का विनिमय होता है।

कुला से मिलती-जुलती अन्य प्रथाएं-

वासी- इसका उल्लेख मैलिनोवस्की ने किया है यह ट्रोब्रीयांड दीप समूह के भीतरी भाग में बसे गांव तथा तटीय गांव में होता है। ये गांव में रहने वाले मछलियां पकड़ते हैं और भीतरी गांव में रहने वाले कृषि पदार्थ याम उपजाते हैं। आपस में आदान प्रदान होता है इसे सगाली कहते हैं। वासी संबंधी स्थाई एवं परंपरागत होते।

गिमवाली - घर गृहस्थी की छोटी-मोटी वस्तुओं का विनिमय होता है। एक व्यक्ति अपने कूला साझेदार से गीमवाली संबंध नहीं रख सकता है। जबकि इसमें बड़ी एवं महत्वपूर्ण वस्तुओं के विनिमय को लागा कहते हैं। जैसे भूमि का हस्तांतरण लागा एक संस्कारी खरीद है।

पोकाला और येवला- यह भी उपहार का एक तरीका है। जब कोई व्यक्ति अपने मुखिया को वस्तु भेंट करता है तब उसे पोकाला कहते हैं। बदले में मुखिया द्वारा दी गई भेंट को यह येवला कहते हैं।

उरिगुबे- ट्रोब्रीयांड दीप वासियों में वर्ष में एक बार भाई अपनी विवाहित बहन के पति को लगभग 3 चौथाई फसल भेंट करता है उसे उरिगुबे कहते हैं।

गिमाये तथा उमाये – साल्जबरी ने अपनी पुस्तक 'फ्रॉम स्टोन टू स्टील' में न्यूगिनी की पहाड़ियों की सियान जनजाति में अलग प्रकार के विनिमय प्रथा का उल्लेख किया। इसमें जब समूहों के बीच शंख, आभूषण, सुंदर पंखो वाले पक्षियों का विनिमय होता है तो उसे गिमाये कहते हैं। जब कम कीमत की दैनिक वस्तुओं का आदान प्रदान होता है तो उसे उमाये कहते हैं।

पोटलैच - यह प्रथा अमेरिका के उत्तर पश्चिमी तट अलास्का और ब्रिटिश कोलंबिया में रहने वाली 4 जनजातियों शिमशियन, क्वाकिउटल, हैदा तथा लिंगित में विशेष रूप से पाई जाती है। यह एक प्रकार का खर्चीला भोज होता है। इसमें लोगों को खूब खिलाया पिलाया जाता है। भेट दी जाती है और वस्तुएं नष्ट की जाती है। जो जितना अधिक समृद्धशाली होता है, उतनी अधिक वस्तुओं और संपत्तियों को नष्ट करता है और प्रतिष्ठित होने का दावा करता है। इस भोज को संपत्ति नष्ट करने का प्रदर्शन कह सकते हैं। यह खर्चीला भोज इतना अधिक परंपरागत होता है इसे रोकने के लिए अमेरिकी सरकार के कई प्रयास विफल हो चुके हैं। हालांकि कई समाजशास्त्रियों ने इसके प्रकार्यात्मक पक्ष को पुनरवितरण के रूप में देखा।

शिमशियन जनजाति में दाह संस्कार पोटलैच जो मुखिया का उत्तराधिकारी उसकी मृत्यु के बाद उसके पद को ग्रहण करने के लिए देता है।

क्वाकिउटल जनजाति में एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए प्रतिष्ठा प्रतिस्पर्धात्मक पोटलैच का प्रचलन है।

हैदा जनजाति में गृह प्रवेश पोटलैच जो कि नए घर के बनवाने पर दिया जाता है।

इसी प्रकार लिंगित जनजाति भी आक्रमक अथवा प्रतिस्पर्धात्मक पोटलैच का प्रचलन है।

3.4.10.3 साधारण विनिमय या अन्योनियता- वस्तुओं के आदान-प्रदान का यह तरीका तमिलनाडु की नीलगिरी की पहाड़ियों के टोडा, कोटा, बड़ागा और कुरुम्भा जनजातियों में देखने को मिलते हैं। टोडा पशुपालक है दूध एवं दूध पदार्थ उत्पादन उनका प्रमुख पेशा है। बड़ागा की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है जबकि कोटा मिट्टी के बर्तन और चाकू बनाते हैं तथा उत्सवों पर वाद यंत्र बजाना भी इनका पेशा है। कुरुम्भा जनजाति जंगली पदार्थों, कंदमूल फल तथा शहद एकत्रित करती है। यह लोग जादू टोना आदि का भी अच्छा ज्ञान रखते हैं। इनमें से प्रत्येक जनजाति अपने द्वारा बनाई गई वस्तु के बदले दूसरी जनजाति द्वारा बनाई गई

वस्तुओं का आदान प्रदान करते हैं और एक दूसरे के साथ सेवाभाव से विनिमय करते हैं इन जनजातियों के अन्योनियता या पारस्परिकता को इस चित्र के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है। कोटा मिट्टी के बरतन तथा चाकू बनाने ऊपर वाद यंत्र बजाना थोड़ा पशुपालक दूध तथा दूध पदार्थों का उत्पादन कृषि करना अनाज उत्पादन जंगली कंदमूल शहद जादू-टोना तथा अभिसार का ज्ञान।

3.4.11 सरल तथा जटिल अर्थव्यवस्था में तुलनात्मक अंतर

सरल अर्थव्यवस्था	जटिल अर्थव्यवस्था
• उत्पादन का स्रोत प्राकृतिक	• उत्पादन का स्रोत उद्योग
• मुद्रा रहित अर्थव्यवस्था	• मुद्रा अर्थव्यवस्था
• मांग एवं पूर्ति के नियम का अभाव	• मांग एवं पूर्ति के नियम की प्रधानता
• उत्पादन उपभोग के लिए	• उत्पादन उपभोक्ता तथा लाभ के लिए
• जीवन निर्वाह की अर्थव्यवस्था	• अधिषेश अर्थव्यवस्था
• वस्तु विनिमय	• मुद्रा विनिमय
• साप्ताहिक हाट बाजार	• नियमित बाजारों का संस्थापक रूप
• परिवर्तनशीलता या नवाचार का अभाव	• परिवर्तनशीलता अधिक
• आदिम प्रौध्योगिकी	• आधुनिक प्रौद्योगिकी
• सरल श्रम विभाजन	• जटिल श्रम विभाजन
• विशेषईकरण का अभाव	• अत्याधिक विशेषईकरण
• प्रतियोगिता का अभाव	• प्रतियोगिता आवश्यक

3.4.12 सारांश (Summary)

इस इकाई में आप ने यह पढ़ा कि प्रचुर मात्रा में भोजन और अन्य संसाधनों वाले क्षेत्रों में रहने वाले आदिम समाज विशिष्ट उपभोग में लिप्त हैं। सदस्यों के पास उच्च स्तर की उपलब्धि कि प्रेरणा का अभाव है क्योंकि आर्थिक अधिशेष के संचय का कोई पूर्वाग्रह नहीं है। अधिकांशतः आर्थिक गतिविधियाँ भंडारण या संचय के बजाय साझा करने पर जोर देती हैं। उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व अस्तित्वहीन है। घरेलू अर्थव्यवस्था और सामुदायिक अर्थव्यवस्था के बीच कोई स्पष्ट अलगाव नहीं है क्योंकि वे अलग-अलग अंश में परस्पर व्याप्त हैं। जादू-धार्मिक विचारों से युक्त पवित्र व्यवस्था में आर्थिक व्यवस्था हावी है। नवाचार दुर्लभ है और परिवर्तन धीमा है। प्रथागत प्रथाओं और मानदंड माल और सेवाओं के उत्पादन और विनिमय को विनियमित करते हैं।

इस प्रकार अर्थव्यवस्था को एक संस्थागत और मानक संरचना के रूप में समझा जा सकता है जो लोगों के समूह के बीच आर्थिक संबंधों को नियंत्रित करती है। यह समूह एक आदिवासी गाँव से लेकर एक आधुनिक राष्ट्र यहाँ तक कि पूरी दुनिया में हो सकता है। इस प्रणाली द्वारा शासित प्रमुख आर्थिक प्रक्रियाएं

मानव अस्तित्व और जीविका के लिए आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं का अधिग्रहण, उत्पादन और वितरण हैं।

3.4.13 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. ट्रोब्रीयांड दीप वासी जनजातियों का अध्ययन किस मानवशास्त्रीय द्वारा किया गया-

(क) फ्रेज़र (ख) टाइलर (ग) मैलिनोवस्की (घ) एस. सी. दुबे

2. निम्न में से कौन सी जनजाति औद्योगिक श्रमिक है-

(क) कादर (ख) चेचू (ग) बिरहोर (घ) गोंड

3. ट्रोब्रीयांड दीप वासियों में वर्ष में एक बार भाई अपनी विवाहित बहन के पति को लगभग 3 चौथाई फसल भेंट करता है उसे क्या कहते हैं-

(क) उरिगुबे (ख) पोटलैच (ग) वासी (घ) गिमवाली

4. टोड़ा जनजाति का प्रमुख व्यवसाय क्या है-
   (क) पशुपालन (ख) औद्योगिक श्रमिक (ग) खाद्य संग्राहक (घ) दस्तकारी
5. अरुन्टा जनजाति का अध्ययन किस विद्वान द्वारा किया गया-
   (क) फ्रेज़र (ख) टाइलर (ग) मैलिनोवस्की (घ) दुर्खीम

उत्तर- 1. (ग) मैलिनोवस्की, 2. (घ) गोंड, 3. (क) उरिगुबे, 4. (क) पशुपालन, 5. (घ) दुर्खीम

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. जनजातियों की अर्थव्यवस्था की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. विभिन्न कार्यों में संलग्न भारतीय जनजातियों पर प्रकाश डालिए।
3. जनजाजतियों की विनिमय प्रणाली की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
4. औद्योगिक अर्थव्यवस्था को स्पष्ट कीजिए।
5. वस्तु विनिमय एवं साधारण विनिमय को सविस्तार समझाइए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आदिम अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
2. जनजातीय अर्थव्यवस्था के वर्गीकरण का वर्णन कीजिए।
3. सरल तथा जटिल अर्थव्यवस्था में तुलनात्मक अंतर लिखिए।
4. शिकारी एवं संकलन स्तर की अर्थव्यवस्था की व्याख्या कीजिए।
5. जनजातीय अर्थव्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

3.4.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Rath, Govindra Chandra. (2006). "*Tribal Development in India, New Delhi*". Sage Publication, Pg. 67-87.

2. Pfeffer, George. & Behra, Deepak kumar. (Eds.) (1994). "*Contemporary Society: Tribal studies*", New Delhi: Concept Publishing Company, Pg.71-89.

3. Pfeffer, George. & Behra, Deepak kumar. (Eds.) (1994). "*Contemporary Society:Tribal studies*", New Delhi: Concept Publishing Company,118-129.

4. Vidyarthi, L.P. and Ray, Binay Kumar. (1976). "*The Tribal culture of India*". New Delhi: Concept Publishing Company, Pg.114-121.

5. Vidyarthi, L.P. and Ray, Binay Kumar. (1976). "*The Tribal culture of India*". New Delhi: Concept Publishing Company, Pg. 189-194.

खण्ड (4) आदिम समाज

इकाई : 1 जनजाति : अर्थ, वर्गीकरण, वितरण एवं परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

5.1.0 उद्देश्य

5.1.1 प्रस्तावना

5.1.2 जनजाति की अवधारणा

5.1.3 जनजाति की विशेषताएँ

5.1.4 जनजातियों का वर्गीकरण

5.1.5 जनजातियों का भौगोलिक वितरण

5.1.6 जनजातीय जीवन में परिवर्तन

5.1.7 सारांश

5.1.8 बोध प्रश्न

5.1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.1.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियो,

एम. ए. समाजशास्त्र पाठ्यक्रम (प्रथम सत्र) के मानव विज्ञान में आपका स्वागत है। चौथे खण्ड में **आदिम समाज** के अंतर्गत जनजाति की अवधारणा को रखा गया है, जिसमे जनजाति का अर्थ, भारत में जनजातियों की स्थिति, उनमें विवाह के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है एवं भारत की कुछ जनजातियों का प्रस्तावना, जनजातियों की प्रमुख समस्याओं तथा उनके विकास हेतु योजनाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे-

- जनजाति की अवधारणा को स्पष्ट कर पाएंगे।
- जनजातियों का प्रजातीय वर्गीकरण समझ पाएंगे।
- जनजातीय भाषाई वर्गीकरण को रेखांकित कर पाएंगे।
- जनजातियों के भौगोलिक वितरण से परिचित होंगे।
- जनजातीय जीवन में हो रहे परिवर्तन का विश्लेषण कर सकेंगे।

4.1.1 प्रस्तावना

प्रागैतिहासिक काल से समाज का विकास प्रारंभ हुआ, जो कि सरलता से जटिलता की ओर बढ़ा, उसमें विविधता भी बढ़ती गई। अपने विकास के प्रथम सोपान से वर्तमान तक उसमें बहुत अधिक परिवर्तन भी हुआ है, जिसके परिणाम स्वरूप जटिलता एवं विविधता में भी वृद्धि हुई है, इन विशेषताओं से युक्त समाज को हम आधुनिक समाज के रूप में जानते हैं। वे समाज जो अपेक्षाकृत **सरल** और **समरूप (Homogeneous)** हैं, आदिम समाज कहलाते हैं। जनजाति समाज भी सरल प्रकृति का समाज है। विश्व के अधिकांश देशों में जनजातीय जनसंख्या निवास करती है, अलग-अलग देशों में अलग-अलग जनजातीय समुदाय पाए जाते हैं। इन समुदायों को **नृजातीय समूह (Ethnic Group), आदिवासी (Aboriginals)** एवं **जनजाति (Tribe)** के नामों से संबोधित किया जाता है। हमारे देश में इन्हें **जनजाति (Tribe)** नाम से संबोधित किया जाता है।

हमारे देश में जनजातियों को भी विकास की दृष्टि से विशेष आवश्यकता वाले समुदायों **(Weaker section)** में शामिल किया गया है। भारतीय संविधान की **5वीं अनुसूची** में इन समुदायों को सूचीबद्ध किया गया है, इस प्रकार संविधान की अनुसूची में सूचीबद्ध जनजातीय समुदायों को 'अनुसूचित जनजाति' (Scheduled Tribe) नाम से जाना जाता है। इन समुदायों की कुल संख्या 645 है। हमारे देश के कुछ प्रदेशों (जैसे दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, चण्डीगढ़ एवं पॉण्डिचेरी) को छोड़कर अन्य सभी प्रदेशों एवं केंद्र शासित प्रदेशों में जनजातियां निवास करती हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार हमारे देश की जनसंख्या का 8.2 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या है।

मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, गुजरात, छत्तीसगढ़, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल एवं कर्नाटक में सबसे अधिक जनजातीय समुदाय हैं। इन राज्यों में हमारे देश की कुल जनजातीय जनसंख्या का 83.2 प्रतिशत निवासरत है। इसी प्रकार उत्तर-पूर्व के राज्यों में वहां की जनसंख्या का अधिकतम हिस्सा, जनजातीय जनसंख्या है। इस प्रकार जब हम विश्व के बड़े प्रजातांत्रिक देश के रूप में विकास की प्रक्रिया में अग्रसर हैं ऐसे में समग्र विकास का परिप्रेक्ष्य और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। अर्थात हमें देश के सम्पूर्ण एवं समग्र विकास हेतु 'जनजातीय समाज' की संरचना को समझना भी आवश्यक है।

4.1.2 जनजाति की अवधारणा

जनजाति शब्द, **Tribe** का हिंदी रूपांतरण है। विश्व के अलग-अलग देशों में इन समुदायों के लिए अलग-अलग शब्द प्रयुक्त होते हैं, जैसे **नृजातीय समुदाय (Ethnic Group), मूल निवासी (Aboriginals)** एवं **जनजाति (Tribe)** इत्यादि। ब्रिटेन में इस समुदायों के लिए जनजाति शब्द प्रयुक्त होता है, और औपनिवेशिक काल से हमारे देश में भी इन्हें जनजाति कहा गया, यद्यपि भारत में विद्वानों एवं समाज सुधारको ने इन्हें बहुत से नाम दिए हैं जैसे **गिरिजन, वन्य जन, आदिवासी, वनवासी, मूलनिवासी,** एवं **जनजाति** इत्यादि। जनजाति वे समुदाय हैं, जिन्हें किसी क्षेत्र विशेष में उन्हे वहां का मूल

निवासी माना जाता है, एवं उन्हें उनकी नृजातीयता के आधार पर पहचाना जाता है। भारत में 'जनजाति' की अवधारणा को समझने के लिए दो परिप्रेक्ष्य हैं, एक समाज वैज्ञानिकों का और दूसरा संवैधानिक परिप्रेक्ष्य ।

समाज वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य विशेषताओं पर आधारित है, अर्थात समाज वैज्ञानिक (समाजशास्त्री एवं मानवशास्त्री) कुछ सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक विशेषताओं के आधार पर किसी समुदाय को जनजाति के रूप में चिन्हित करते हैं। **संवैधानिक परिप्रेक्ष्य,** समाज वैज्ञानिक आधार पर ही निर्भर करता है, अर्थात हमारे देश के संविधान में जिन जनजातीय समुदायों को सूचीबद्ध किया गया है, वह समुदाय अनुसूचित जनजाति हैं। वास्तव में औपनिवेशिक काल से ही जनजातीय विकास के प्रयास प्रारंभ हो गए थे। यद्यपि इन प्रयासों का मुख्य उद्देश्य जनजातियों का विकास नहीं था बल्कि जनजातीय समुदायों के ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष को दबाना इन प्रयासों का वास्तविक उद्देश्य कहा जा सकता है। स्वतंत्रता के पश्चात देश के समग्र विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु, विकास की प्रक्रिया में पीछे छूट गए समुदायों को **पिछड़े समूहों (Weaker section)** के रूप में चिन्हित किया गया। इसी क्रम में जनजातियों को भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 342** के अंतर्गत सूचीबद्ध किया गया। इस प्रकार वे जनजातियां जो संविधान में सूचीबद्ध हैं अनुसूचित जनजातियां कहलाती हैं। संविधान की **5वी** एवं **6वी अनुसूची अनुसूचित जनजाति** से संबंधित हैं । जिन समाज वैज्ञानिकों ने 'जनजाति' की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया है, यदि हम उनके विचारों को एक साथ मिलाकर देखें तो स्पष्ट होता है की जनजाति वह समुदाय हैं, जिनमें संस्कृति एवं सामाजिक संस्थाओं आदि में समानता हैं, संबंध नातेदारी पर आधारित हैं, आर्थिक एवं राजनैतिक संस्थाओं का स्वरूप सरल है, तथा अनौपचारिक संबंधों एवं व्यवहार की प्रमुखता है। निम्नलिखित विद्वानों ने जनजाति को इस प्रकार परिभाषित किया है-

डी.एन.मजूमदार के अनुसार - "जनजाति कुछ परिवार या परिवारों के समूह का संकलन है, जिसका एक नाम होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग में रहते हैं। समान भाषा बोलते हैं एवं विवाह, व्यवसाय आदि में कुछ निषेधों का पालन करते हैं।"

हॉबेल के अनुसार - "एक जनजाति एक सामाजिक समूह है, जिसकी एक विशेष भाषा होती है। जो एक विशेष संस्कृति का अनुसरण करता है। यह संस्कृति उसे अन्य जनजातियों से प्रथक करती है।"

इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार – **"**जनजाति आदिम जाति परिवारों का वह समूह है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा बोलते हैं, एक सामान्य क्षेत्र में रहते हैं। सामान्यतः ये समूह अंतर्विवाही होते हैं।"

रेमण्ड फर्थ के अनुसार - "जनजाति एक ही सांस्कृतिक श्रृंखला का मानव समूह है, जो साधारणतः एक ही भूखण्ड पर रहता है, एक भाषा बोलता है तथा एक ही प्रकार की परंपराओं का पालन करता है।"

जॉन पीटर मर्डाक के अनुसार- "जनजाति एक सामाजिक समूह है जिसकी अलग भाषा होती है तथा भिन्न संस्कृति एवं एक स्वाधीन राजनैतिक संगठन होता है।"

रिवर्स ने जनजाति को परिभाषित करते हुए लिखा है- "जनजाति एक साधारण कोटि का सामाजिक समूह है, जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा बोलते हैं, उनकी एक शासन प्रणाली होती है तथा जो सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए युद्ध आदि में एकता का प्रदर्शन करते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यदि हम **"जनजाति"** की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास करें तो, हम कह सकते हैं कि "जनजाति" वह समुदाय है, जो अपनी संस्कृति, भाषा, सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था एवं राजनैतिक संगठन के आधार पर गैर-जनजातीय समुदायों से भिन्न एवं विशेष है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन के व्यापक प्रभाव एवं नियोजित विकासोन्मुखी योजनाओं के फलस्वरूप परिदृश्य बदला है, आज जनजातीय जगत वैसा नही है जैसा कि स्वतंत्रता के पूर्व था, परंतु आज भी कुछ मौलिक विशेषताएं हैं, जिनके आधार पर "जनजाति" को चिन्हित किया जा सकता हैं।

4.1.3 जनजाति की विशेषताएं

जनजाति को वस्तुतः उनकी विशेषताओं के आधार पर ही, एक विशेष सामाजिक समूह के रुप में चिंहित किया जाता है। जनजाति की प्रमुख विशेषताएं निम्नानुसार हैं-

(1) परिवारों का समूह - प्रत्येक जनजातीय समुदाय कुछ परिवारों का समूह है, इन समुदायों में भी सबसे छोटी इकाई परिवार ही है। किसी भी जनजातीय समुदाय के सभी परिवारों में एकरुपता पाई जाती है। यह एकरुपता संरचना, सत्ता, वंश, परंपरा इत्यादि के माध्यम से देखी जा सकती है।

(2) निश्चित भू-भाग - एक जनजाति विशेष का सकेंद्रण, एक स्थान विशेष में होता है, अर्थात ये एक निश्चित भू-भाग में निवास करती हैं। भारत में विभिन्न जनजातीय समुदाय, अलग-अलग स्थानों पर निवास करते हैं साथ ही एक ही जनजाति जब अलग-अलग स्थानों पर निवास करती है, तो इन्हें स्थान विशेष के नाम पर अलग सामाजिक-सांस्कृतिक समुदाय के आधार पर पृथक किया जा सकता है। जैसे मध्य प्रदेश के गोंड एवं आंध्र प्रदेश के गोंड, अलग समुदाय के रुप में जाने जाते हैं।

(3) विशिष्ट नाम - प्रत्येक जनजातीय समुदाय की, विशिष्टता उसके नाम में परिलक्षित होती है, प्रत्येक जनजाति के नाम के साथ उसकी समृद्ध संस्कृति का भी बोध होता है अर्थात प्रत्येक जनजाति का एक विशिष्ट एवं अलग नाम होता है, जिससे उन्हें पहचाना जाता है। समुदाय के "नाम" का अपना इतिहास भी होता है, उप-जनजातियों के नाम में, मुख्य समुदाय के साथ उसके जुड़ाव का भी बोध होता है।

(4) सामान्य भाषा - प्रत्येक जनजाति की एक भाषा या बोली होती है, जो सामान्य रूप से पूरे समुदाय के सदस्य बोल-चाल में उपयोग करते हैं। यह भाषा या बोली, दूसरे समुदाय से भिन्न होती है। जैसे गोंड जनजाति की बोली गोंडी, भील जनजाति की बोली भीली है।

(5) सामान्य संस्कृति - सामान्य संस्कृति से तात्पर्य है कि एक जनजाति की संस्कृति, उसके समस्त सदस्यों द्वारा अनुकरणीय होती है। प्रत्येक जनजाति समुदाय की अपनी संस्कृति होती हैं, जिसका पूरा समुदाय

अनुसरण करता है। परिवार का आकार-प्रकार, विवाह का स्वरूप, पद्धति एवं प्रकार, नातेदारी, धर्म, जीवन यापन की विधि इत्यादि इनकी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है।

(6) राजनैतिक संगठन - परंपरागत सामाजिक संरचना में प्रत्येक जनजातीय समुदाय की अपनी राजनैतिक व्यवस्था होती थी। एंतिहासिक रूप से प्रत्येक जनजातीय समुदाय का एक राजनैतिक संगठन होता था, जिसमें समुदाय की परंपरागत पंचायत महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। इसमें समुदाय के बुजुर्ग व्यक्ति, ओझा, धार्मिक क्रिया-कलाप करने वाले एवं मुखिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी।

(7) आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था - जनजातियों की अर्थव्यवस्था प्राकृतिक संसाधनों के चारों तरफ घूमती थी एवं यह आत्म निर्भर होती थी, अर्थात यह अर्थव्यस्था अपने आप में पूर्ण एवं इनकी सभी आवश्यकताएं पूरी करने में सक्षम होती थी, वर्तमान में यह आत्म निर्भर अर्थव्यवस्था नही है, परंतु समुदाय की अधिकांश आवश्यकताएँ आज भी प्राकृतिक संसाधनों पर ही निर्भर हैं।

(8) विशेष धार्मिक व्यवस्था - जनजातीय समुदाय अपनी विशिष्ट धार्मिक पद्धति के लिए भी जाने जाते हैं। जनजातीय धर्म में प्राकृतिक संसाधनों (प्रायःवन) का विशेष स्थान है। जनजातीय धर्म अपने आप में स्वतंत्र धार्मिक व्यवस्था है जिसमें प्राकृतिक संसाधनों की पूजा एवं क्रिया-कलापों का केंद्रीय स्थान होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक समुदाय की अपनी विशेष धार्मिक गतिविधियां एवं क्रियाकलाप होते हैं।

इस प्रकार जनजाति भौगोलिक स्थिति, भाषा, परिवार, धर्म, संस्कृति एवं आजीविका के स्वरूप इत्यादि से संबंधित विशेषताओं के आधार पर चिंहित होती हैं।

4.1.4 जनजातियों का वर्गीकरण

भारतीय समाज में विविधता की तरह यहां के जनजातीय परिदृश्य में भी पर्याप्त विविधता है, अर्थात हमारे देश में जनजातीय संरचना में पर्याप्त भिन्नता है। यहां प्रजातीय, भाषाई, सामाजिक-सांस्कृतिक, भौगोलिक सकेंद्रण एवं आर्थिक स्थिति आदि के आधार पर जनजातीय समुदायों में भिन्नता है। भारतीय जनजातीय वर्गीकरण को प्रमुख रूप से निम्न आधारों पर देखा जा सकता हैं -

- **A.** भौगोलिक वर्गीकरण
- **B.** प्रजातीय वर्गीकरण
- **C.** भाषाई वर्गीकरण
- **D.** आर्थिक गतिविधियों के आधार पर वर्गीकरण
- **E.** वंश एवं सत्ता के आधार पर वर्गीकरण
- **F.** आकार के आधार पर वर्गीकरण
- **G.** विकास के स्तर के आधार पर वर्गीकरण

भौगोलिक वर्गीकरण को आगे, जनजातियों के भौगोलिक वितरण के अंतर्गत देखेंगे, अतः यहां हम भारतीय जनजातियों के प्रजातीय एवं भाषाई वर्गीकरण को समझेगें।

प्रजातीय वर्गीकरण - प्रजातीय अध्ययनों के आधार पर विश्व के समस्त मानव समूहों को कुछ प्रजातियों में वर्गीकृत किया गया है, जनजातीय समुदाय भी इसका अपवाद नही है। हमारे देश में प्रजातीय अध्ययनों का प्रारंभ सन् 1890 में **हरबर्ट रिजले** के अध्ययन से माना जाता है। रिजले ने शरीर मापन प्रणाली द्वारा, वैज्ञानिक अध्ययन का प्रयास किया। रिजले **1891** की जनगणना कार्य के प्रमुख थे, जनगणना से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्यों को अपनी पुस्तक **'The Peoples of India'** में प्रकाशित किया, जो 1915 में प्रकाशित हुई थी। इस अध्ययन में रिजले ने जनजातियों का कोई पृथक अध्ययन नहीं किया था वरन् भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या के साथ जनजातियों का भी प्रजातीय अध्ययन प्रस्तुत किया।

रिजले के विश्लेषण के अनुसार भारत के अधिकांश जनजातीय समुदाय **"द्रविड़"** प्रजाति के हैं। **जे.एच. हट्टन** ने भारत के जनजातीय समुदायों को नीग्रेटो, प्रोटो आस्ट्रेलॉयड एवं मंगोलॉयड तीन श्रेणी में रखा है। इसी प्रकार **वी.सी. गुहा** ने भी नीग्रेटो, प्रोटो आस्ट्रेलॉयड एवं मंगोलॉयड तीन प्रजातीय श्रेणियों का उल्लेख किया है। **मजूमदार** एवं **मदान** का मत है कि भारत की जनजातियों का संबंध द्रविड़ एवं मंगोल प्रजाति से है।

प्रजातीय दृष्टि से जिन विद्वानों ने जनजातियों के प्रजातीय वर्गीकरण प्रस्तुत किए हैं, उनके आधार पर भारतीय जनजातियों को मुख्यतः तीन प्रजातीय समूहों में वर्गीकृत किया गया है-

1. भारत एक एंसा देश है, जहाँ प्रचीनकाल से ही अनेक संस्कृतियों का सम्मिश्रण हुआ है, संस्कृतियों के संपर्क में आने के परिणामस्वरूप प्रजातीय मिश्रण भी हुआ है, अतः भारत की जनसंख्या में बहुत से प्रजातीय तत्व समय-समय पर जुड़ते एवं विलुप्त होते रहे हैं, जनजातीय जनसंख्या भी इसका अपवाद नही है।
2. भाषा सम्प्रेषण का माध्यम वो है, वह सांस्कृतिक मूल एवं प्रकृति को भी इंगित करती है, यही वजह है कि भाषाई अध्ययन प्रायः सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययनों को दिशा प्रदान करते रहे हैं। जनजातीय समुदायों की अपनी विशिष्ट भाषा (अथवा बोली) उन्हें विशिष्ट पहचान प्रदान करती है। प्रायः प्रत्येक समुदाय की अलग भाषा अथवा बोली है, तो अपवादस्वरूप एक ही समुदाय जो अलग-अलग क्षेत्र में निवासरत् है, क्षेत्र के अनुसार उनकी भाषा अथवा बोली में भी परिवर्तन होता है।

(अ) नीग्रेटो- इस प्रजाति के लोगो का कद छोटा, त्वचा का रंग काला एवं बाल उनी होते हैं। दक्षिण भारत की कुछ जनजातियां इस प्रजाति के अंतर्गत आती हैं।

(ब) प्रोटो ऑस्ट्रेलॉयड- इस प्रजाति के लोगो की नाक चपटी, त्वचा का रंग गहरा भूरा-काला एवं बाल घुंघराले होते है। मध्य भारत एवं दक्षिण भारत जनजातियों में इस प्रजाति का प्रतिनिधित्व है।

(स) मंगोलॉयड- इस प्रजाति के शारीरिक लक्षणों में मध्यम कद, त्वचा का रंग नीला, चपटी नाक एवं गोल आंखे तथा भूरे रेशमी बाल प्रमुख हैं। भारत की उत्तर-पूर्व की जनजातियों में इस प्रजाति के लक्षण पाए जाते हैं। भारत एक एंसा देश है, जहां प्रचीनकाल से ही अनेक संस्कृतियों का सम्मिश्रिण हुआ है। संस्कृतियों के संपर्क में आने के परिणामस्वरूप प्रजातिय सम्मिश्रण भी हुआ है। अतः भारत की जनसंख्या में बहुत से प्रजातिय तत्व समय-समय पर जुड़ते एवं विलुप्त होते रहे हैं, जनजातीय जनसंख्या भी इसका अपवाद नही है।

2. भाषाई वर्गीकरण - जनजाति की प्रमुख विशेषताओं में एक विशेषता भाषा अथवा बोली का होना भी है। अर्थात प्रत्येक जनजातीय समुदाय की अपनी एक भाषा अथवा बोली होती है। भाषा सम्प्रेण का माध्यम तो है ही, वह सांस्कृतिक मूल एवं प्रकृति को भी इंगित करती है। यही वजह है कि भाषाई अध्ययन प्रायः सामाजिक, सांस्कृतिक अध्ययनों को दिशा प्रदान करते रहे है। जनजातीय समुदाय की अपनी विशिष्ट भाषा इन्हें विशिष्ट पहचान भी प्रदान करते है। प्रायः प्रत्येक समुदाय की अलग भाषा अथवा बोली होती है। तो अपवाद स्वरूप एक ही समुदाय जो अलग-अलग क्षेत्र में निवासरत है क्षेत्र के अनुसार इनकी भाषा अथवा बोली में भी परिवर्तन होता है।

भाषा के आधार पर भारत की जनजातियों को निम्न श्रेणियों में रखा जा सकता है-

(अ) दृविड़ भाषा परिवार- इस भाषा परिवार की जनजातियां जो भाषा अथवा बोली व्यवहार में लाती हैं वह कुर्गी, तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाओं के शब्दों का समावेश करती हैं। केरल की कादर जनजाति में व्ययहृत वोली मलयाली की उपबोली है। मध्य भारत की गोंड जनजाति की बोली गोंडी भी तमिल, तेलगू एवं मलयाली भाषा के शब्दों से संबंधित है। दक्षिण एवं मध्य भारत की जनजातियां इस भाषा परिवार के अंतर्गत आती हैं।

(ब) ऑस्ट्रिक भाषा परिवार - इसे ऑस्ट्रो एशियाटिक भाषा परिवार भी कहते हैं। मध्य एवं पूर्वी भारत की जनजातियों की भाषा एवं बोली इस परिवार के अंतर्गत आती है। जैसे मध्य क्षेत्र के कोल समुदाय की बोली, निकोबार द्वीप समूह के निकोबारी एवं बिहार तथा झारखण्ड के संथाल समुदाय की बोली कोरकू, गदावा आदि जनजातियों की बोली इस भाषा परिवार से संबंधित मानी जाती है।

(स) सिनोटिब्तियन भाषा परिवार - इसे चीनी तिब्बती भाषा परिवार भी कहते हैं। उत्तर-पूर्व भारत की जनजातियां इस भाषा परिवार के अंतर्गत मानी जाती हैं। मणिपुरी, नागा, असमी, बर्मी तथा अन्य भाषा एवं बोलिया जो उत्तर-पूर्व में प्रचलित है इसी भाषा परिवार के अंतर्गत आती हैं। इस प्रकार, भारत के जनजातीय समुदायों में, एशिया के लगभग सभी महत्वपूर्ण भाषा-परिवारों के तत्व विद्यमान हैं। वर्तमान में भाषाई सम्मिश्रण एवं एक साथ एकाधिक भाषाओं का प्रयोग जनजातीय समुदायों में भी देखा जा सकता है।

3. आर्थिक गतिविधियों के आधार पर वर्गीकरण

किसी भी समुदाय की अर्थव्यवस्था या आजीविका का प्रांरभिक स्वरूप, प्रत्यक्ष रूप से उसके आस-पास के पर्यावरण (प्राकृतिक संसाधनों) पर निर्भर रही है, विकास के स्तरों के साथ ही यह प्रत्यक्ष

निर्भरता कम होती गई, परंतु जनजातीय समुदायों की अर्थव्यवस्था, एवं प्राकृतिक संसाधनों के बीच घनिष्ठ एवं अन्योन्यश्रित संबंध रहे हैं। यही कारण है कि अलग-अलग क्षेत्रों के जनजातीय समुदाय अलग-अलग प्रकार की आर्थिक गतिविधियों में संलग्न रहकर अपनी आजीविका अर्जित करते रहे हैं।

भारत के जनजातीय समुदायों को उनकी आर्थिक गतिविधियों के आधार पर निम्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

A. **आखेटक एवं खाद्य संग्राहक जनजातियां -** कुछ जनजातीय समुदाय मुख्यतः आखेटक एवं वनों से खाद्य पदार्थ संग्रहण के द्वारा अपनी आजीविका चलाते रहे हैं। आज भी कुछ समुदाय इस प्रकार की आर्थिक गतिविधियों में संलग्न हैं जैसे वनो से शहद, चिरोंजी, महुआ आदि एकत्रित करना तथा मछली पकड़ना कंदमूल, जंगली जानवरों एवं पक्षियों के पंख इत्यादि एकत्रित करने वाले समुदाय जैसे बिरहोर, कोरवा, बैगा , कादर, चेंचू आदि समुदाय हैं।

B. **कृषक जनजातियां -** कुछ जनजातियों की अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है। यद्यपि पूर्व में इनके बीच स्थानांतरित कृषि प्रचलित थी परंतु वर्तमान में यह स्थाई कृषि है, क्योंकि स्थानांतरित कृषि अब संभव नहीं है। बैगा, संथाल, नागा, गोंड़ आदि इस श्रेणी के अंतर्गत रखे जा सकते हैं।

C. **पशुपालक जनजातियां-** पशुपालन के द्वारा अपनी आजीविका को अर्जित करने वाले समुदाय, पशुपालक जनजातियों की श्रेणी में आते हैं। टोडा, खस एवं कोरवा जनजातियां पशुपालक जनजातीय समुदाय हैं।

D. **औद्योगिक श्रमिक -** स्वतंत्रता के पश्चात देश में बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण हुआ, ज्यादातर सदूर क्षेत्रों में जनजातीय बसाहटों के नजदीक स्थापित हुए एवं जनजातीय समुदाय के लोग बड़ी संख्या में इन उद्योगों में श्रमिक का कार्य करने लगे। वर्तमान में बहुत से जनजातीय समुदाय इस श्रेणी में आते हैं।

E. **दैनिक श्रमिक -** अधिकांश जनजातीय समुदायों में दैनिक श्रमिक के रूप में कार्य कर अपनी आजीविका चलाते हैं, ये स्थानीय स्तर पर, गैर जनजातीय समुदायों में दैनिक श्रमिक का कार्य करते हैं। जैसे गौंड, कोरकू, भील आदि जनजातियां हैं।

F. **घरेलू कार्य -** गैर जनजातीय समुदायों के संपर्क एवं संचार के साधनों में वृद्धि के परिणामस्वरूप जनजातीय समुदाय उनके घरेलू कार्य में संलग्न हुए। आज बहुत से समुदायों के महिला एवं पुरूष इस कार्य से अपनी आजीविका अर्जित करते हैं।

G. **हस्तशिल्प एवं कारीगरी -** कुछ जनजातियां हस्तशिल्प एवं कारीगरी के माध्यम से वस्तुएं बनाकर अपनी आजीविका अर्जित करते हैं। जैसे- गुज्जर, किन्नौरी, इरूला, अगरिया इत्यादि।

H. **शासकीय सेवक -** सभी जनजातियों में कुछ व्यक्ति शासकीय सेवक के रूप मे आजीविका अर्जित करते हैं।

इस प्रकार आर्थिक गतिविधियों के आधार पर भारत में निवासरत जनजातीय समुदायों में पर्याप्त भिन्नता है।

4. वंश एवं सत्ता के आधार पर वर्गीकरण

वंश परंपरा एवं सत्ता, किसी भी समुदाय की पारिवारिक संरचना को निर्धारित करती है। भारत की जनजातियों को इस आधार पर देखें, तो कुछ समुदाय पितृवंशीय, कुछ मातृवंशीय हैं। इसी प्रकार कुछ जनजातियाँ पितृसत्तात्मक तो कुछ मातृसत्तात्मक हैं। इस आधार पर प्रमुख प्रकार निम्नांकित है-

अ. मातृवंशीय एवं मातृसत्तात्मक समुदाय- भारत की जनजातियों में कुछ स्थानो की जनजातियां मातृवंशीय समुदाय है उत्तर पूर्व की खासी एवं गारो इसी प्रकार की जनजातियॉ हैं। इनके परिवार में वंश परंपरा स्त्री के वंश से निर्धारित होती है प्रायः वंश परंपरा से ही सत्ता निर्धारित होती है। खासी एवं गारो समुदाय में मातृ सत्तात्मक परिवार देखे जा सकते हैं अर्थात इनके परिवार में मुखिया महिला होती है। वही महत्वपूर्ण निर्णय लेती है।

ब. पितृवंशीय एवं पितृसत्तात्मक समुदाय- भारत में निवासरत अधिकांश जनजातीय समुदाय पितृवंशीय एवं पितृ सत्तात्मक हैं। इन समुदायों में परिवार की वंश परंपरा पुरूष के वंश से निर्धारित होती है एवं परिवार का मुखिया पुरूष होता है। उत्तर एवं मध्य क्षेत्र की जनजातियॉ जैसे गोड़, संथाल इत्यादि इसी प्रकार की जनजातियॉ हैं।

5. आकार के आधार पर वर्गीकरण - भारत में निवासरत जनजातीय समुदायों में कुछ समुदायों की जनसंख्या बहुत अधिक है। तो कुछ की बहुत कम है अर्थात इनके आकार में पर्याप्त भिन्नता है। आकार के आधार पर भारत की जनजातियों को मुख्यतः तीन प्रकारों में रखा जाता है

अ. लघु समुदाय - इस श्रेणी में वे समुदाय रखे जा सकते हैं जिनकी जनसंख्या काफी कम है। अण्डमान एवं निकोवार के जारवा, ग्रेट अण्डवानी एवं मध्य प्रदेश के खैरवार तथा पारधी ऐसे ही लघु समुदाय हैं।

ब. मध्यम समुदाय- कुछ जनजातीय समुदाय ऐसे भी है जिनकी जनसंख्या न तो बहुत कम है और न ही बहुत अधिक है। ये मध्यम समुदाय कहे जा सकते हैं जैसे मध्य प्रदेश में बारेला, पटेलिया, जोकि भील जनजाति की उप जनजातियॉ हैं।

स. बृहद समुदाय- जनसंख्या के आधार पर कुछ जनजातियां समुदाय बड़े समुदाय है इनको बृहद समुदाय कहा जा सकता है जैसे भील, गोड़, मुण्डा, संथाल, इत्यादि।

6. विकास के स्तर के आधार पर वर्गीकरण

विकास के मानदण्डों के आधार पर कोई समुदाय किस सोपान पर है। यह भी वर्गीकरण का एक प्रमुख आधार है। इस आधार पर भारत की जनजातियों को निम्न तीन प्रकारों में रखा जाता है-

अ. आदिम जनजाति (अति पिछड़ी जनजातियॉ)- इस श्रेणी में वे समुदाय रखे जाते हैं जो सामान्यतः विकास की प्रकिया में काफी पीछे रह गए हैं। हमारे देश में इस प्रकार के 75 जनजातीय समुदाय हैं। मध्य प्रदेश के बैगा, भारिया, एवं सहारिया ऐसे भी समुदाय है।

ब. विकास की प्रकिया में शामिल जनजातियॉ- इस श्रेणी में वे जनजातीय समुदाय आते है जिन्होने विकास की प्रक्रिया में सहभागिता की है। इससे लाभ लिया है जैसे उत्तर एवं मध्य क्षेत्र की जनजातियॉ तथा दक्षिण भारत की जनजातियॉ जैसे मुण्डा, गौड़, टोडा, इत्यादि।

स. विकास की प्रक्रिया में अग्रणी जनजातियॉ- हमारे देश में कुछ जनजातीय समुदाय ऐसे भी है जिन्होने विकास का अधिक लाभ लिया है एवं वे अधिक जागरूक समुदाय भी है। जैसे उत्तर पूर्व की जनजातियॉ, नागालैण्ड के नागा इसी प्रकार के समुदाय है।

3.1.5 जनजातियों का भौगोलिक वितरण

भारत के विभिन्न अंचलो में अलग-अलग प्रकार के जनजातीय समुदाय निवास करते है। एक स्थान की जनजाति एवं दूसरें स्थान की जनजातियों में भिन्नता है। यहां तक की एक ही जनजाति समुदाय अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग विशेषताएं रखती हैं, जैसे मध्य क्षेत्र के गोंड एवं दक्षिण भारत के गोंड समुदाय। अतः भौगोलिक दृष्टि से जनजातियों का सकेंद्रण, जनजातीय अध्ययन का महत्वपूर्ण आयाम है। प्रमुख मानवशास्त्रीयों एवं समाजशास्त्रीयों द्वारा प्रस्तुत जनजातियों का भौगोलिक वितरण निम्न प्रकार है-

(1) मजूमदार तथा मदान द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण

मजूमदार तथा मदान ने भौगोलिक स्थिति के आधार पर भारत में तीन जनजातीय क्षेत्र बताए हैं-

1. **उत्तर, एवं उत्तर-पूर्वी क्षेत्र -** इस क्षेत्र के पश्चिम में शिमला और लेह तथा पूर्वी छोर पर लुशाई पहाड़ियाँ एवं मिश्मी पट्टी स्थित है। यह क्षेत्र किनारो पर चौडा एवं बीच मे संकरा है। कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तरी उत्तर प्रदेश, और असम के जनजातीय क्षेत्र इसके अंतर्गत आते हैं, सिक्किम भी इसी क्षेत्र मे है। नागा, कूकी, लुशाई, मिश्मी, मिजो, गारो, खासी, अबीर, भोटिया, थारू, खस, गड्डी, आदि इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातिया हैं।
2. **मध्य क्षेत्र -** बंगाल, बिहार, दक्षिणी उत्तर प्रदेश, दक्षिणी राजस्थान, मध्य प्रदेश, और उड़ीसा इस क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। उत्तरी राजस्थान और बस्तर (छत्तीसगढ़) इस क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। क्षेत्र विस्तार एवं जनजातीय जनसंख्या की दृष्टि से मध्य क्षेत्र का स्थान तीनो क्षेत्रो में सर्वप्रथम है। संथाल, उराँव, हो, खोंड, खरिया, गांड, कमार, कोरकू, भील, मीणा, गरासिया, सहरिया, दुबला, बारली, आदि इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातिया हैं।
3. **दक्षिणी क्षेत्र -** दक्षिणी क्षेत्र में भारत का दक्षिणी पूर्वी भाग स्थित है। हैदराबाद (आंध्र प्रदेश), मैसूर-कुर्ग (कर्नाटक), टावनकोर-कोचीन (केरल) आंध्र प्रदेश और मद्रास (तमिलनाडु) इसी क्षेत्र मे आते हैं। चेंचू, कोया, कापू, अनाडी, टोडा, कोटा, बडागा, कुरूबा, इरूला, पनियन, कादर आदि इस क्षेत्र

की प्रमुख जनजातियाँ हैं। अंडमान एवं निकोबार द्वीपो में भी जनजातीय समुदाय निवास करते है जैसे ओंगे, जारवा, निकोबारी आदि।

बी. सी. गुहा द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण

गुहा ने भारतीय जनजातियों को तीन भोगौलिक क्षेत्रो में बांटा है।

1. **उत्तरी एवं उत्तर-पूर्वी क्षेत्र -** यह क्षेत्र लेह से लेकर पूर्व मे लुशाई पर्वत तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में असम, मणीपुर, त्रिपुरा, पूर्वी कश्मीर, पूर्वी पंजाब तथा उत्तरी उत्तर प्रदेश के आदिवासी आते हैं। इस क्षेत्र मे अका, डकला, नागा, लेपचा, भोटिया, थारू आदि अनेक जनजातियां पाई जाती हैं। यह क्षेत्र क्षेत्रफल की दृष्टि से काफी बड़ा है।

2. **मध्यवर्ती क्षेत्र -** यह क्षेत्र गंगा नदी के दक्षिण तट से कृष्णा नदी के उत्तर तक फैला हुआ है। नर्मदा तथा गोदावरी नदियों के बीच पर्वतीय प्रदेश में अति प्राचीन काल से जनजातियों के निवास का पता चलता है। इस क्षेत्र में हो, बिरहोर, कोल, भील, मुरिया, मढिया, तथा गोंड, जनजातियां रहती हैं।
3. **दक्षिणी क्षेत्र-** यह कृष्णा नदी के दक्षिण का क्षेत्र है। इस क्षेत्र में दक्षिण भारत की समस्त जनजनतियां आती हैं। इरूला, पनियन, कुरूम्ब, कादर, आदि इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातियां है।

श्यामाचरण दुबे द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण

दुबे के अनुसार **भेगौलिक द्वष्टि** से आदिवासी भारत को **चार प्रमुख** भागों मे विभाजित किया जा सकता है-

1. उत्तर और उत्तर-पूर्व क्षेत्र
2. मध्य क्षेत्र
3. पश्चिम क्षेत्र
4. दक्षिण क्षेत्र

1. उत्तर तथा उत्तर-पूर्व क्षेत्र - पूर्व क्षेत्र के मुख्य आदिवासी समूह है- भोटिया, थारू, लेपचा, नागा, गारो, खासी, डापला, कुकी, अबोर, मिकिर, मुरूग आदि। उपर्युक्त समूहो में प्रथम दो उत्तर प्रदेश के हिमालय से सलंग्न क्षेत्र में निवास करते हैं। लेपचा सिक्किम और समवर्ती भारतीय क्षेत्रों के निवासी हैं, शेष समूह असम उत्तर, उत्तर-पूर्वी सीमान्त क्षेत्र तथा नागालैंड में पाए जाते है।

2. मध्यक्षेत्र - आदिवासी जनसंख्या की दृष्टि से मध्य क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बिहार के संथाल, मुण्डा, ओराँव और बिरहोर, उत्कल के बोंदो, खोंड, तथा जुआँग, मध्य प्रदेश के गांड, बैगा, कोल, कोरकू, कमार, सहरिया, भारिया, भुजिया आदि। राजस्थान के भील, कोया एवं राजगोंड समूह आदि इस विस्तृत आदिवासी क्षेत्र के निवासी हैं।

3. पश्चिम क्षेत्र- पश्चिम क्षेत्र मे सहयाद्रि के आदिवासी समूह, जैसे- वार्णी, कटकरी, महादेव, कोली तथा भीलों के कतिपय समूह आते हैं।

4. दक्षिण क्षेत्र- दक्षिण क्षेत्र में अनेक अल्पसंख्यक आदिवासी समूह पाए जाते हैं। इनमे टोडा, बूडागा, कोटा, इरूला, कादर, कुरूम्बा, इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

जनजातियों की अपनी अलग-अलग संस्कृति एवं अपनी बोली-भाषा हैं तथा अनेक विशेषताएं हैं, जो एक जनजाति को दूसरी जनजाति सें पृथक करती है। इस प्रकार आर्थिक गतिविधियों के आधार पर भारत में निवासरत जनजातीय समुदायों में पर्याप्त भिन्नता है-

3.1.6 जनजातीय जीवन में परिवर्तन

परिवर्तन एक साश्वत प्रक्रिया है, अर्थात यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। प्राकृतिक परिवर्तन की ही तरह सामाजिक परिवर्तन भी निरंतर घटित होता है। सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य सामाजिक संरचना एवं सामाजिक संबंधों में होने वाला परिवर्तन से है। यह सामाजिक परिवर्तन स्वतः एवं नियोजित दोनों तरह से होता है। जनजातीय समाज भी, परिवर्तन का अपवाद नहीं है यद्यपि ये समुदाय सुदूर क्षेत्र में रहने के कारण, गैर-जनजातीय समुदायों की तुलना में काफी बाद में परिवर्तन की प्रक्रिया में शामिल हुए।

भारत के संदर्भ में जनजातियों में परिवर्तन ब्रिटिश काल में शुरू हुआ, जब ब्रिटिश शासन ने मिशनरीज के माध्यम से जनजातीय समुदायों के बीच काम शुरू किया। यद्यपि इन प्रयासों के पीछे जनजातीय विकास मुख्य भावना नही थी, बल्कि ब्रिटिश शासन नें जनजातीय तनाव को समाप्त कर अपने प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के उद्देश्य से मिशनरीज को जनजातियों के बीच भेजा। इन मिशनरीज ने शिक्षा, एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में, जनजातीय समुदायों को न सिर्फ जागरूक किया, बल्कि उन्हें आधारभूत सुविधाएं जैसे विद्यालय एवं स्वास्थ्य केंद्र भी उपलब्ध कराएं। उनके बीच खान-पान एवं सामाजिक मेल-जोल बढ़ाया जिसका एक परिणाम जनजातियों का बड़ी संख्या में धर्म परिवर्तन हुआ। आज भी हमारी जनजातीय जनसंख्या का एक बड़ा भाग क्रिश्चियन धर्म का अनुयायी है। स्वतंत्रता के पश्चात नियोजित एवं अनियोजित दोनों प्रकार के परिवर्तन तेज हुए। जनजातीय विकास नियोजित परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करता है। परिवर्तन की प्रक्रियाओं जैसे औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण एवं वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप तथा गैर-जनजातीय समुदायों के संपर्क के फलस्वरूप जनजातीय समुदायों में होने वाला तीव्र परिवर्तन अनियोजित परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करता है। उपर्युक्त सभी कारकों के प्रभाव से आज जनजातीय समुदायों में आमूल-चूल परिवर्तन दिखाई देता है। इन परिवर्तनों को निम्न बिंदुओं में देखा जा सकता है-

1. **शैक्षणिक स्थिति में परिवर्तन -** जनजातीय जीवन में सर्वाधिक दिखाई देने वाले परिवर्तनों में, उनकी शैक्षणिक स्थिति में परिवर्तन है। जब हम उनकी शैक्षणिक स्थिति की बात करते हैं तो यह ध्यान रखना जरूरी है कि शैक्षणिक स्थिति से तात्पर्य आधुनिक औपचारिक शिक्षा से है अन्यथा

जनजातियों में अनौपचारिक शिक्षा पूर्व में भी प्रचलित रही है, जिसके माध्यम से उन्हें जीवन के लिए आवश्यक कौशल एवं तकनीकी का ज्ञान कराया जाता था। प्रत्येक समुदाय के 'युवागृह' इस प्रकार की अनौपचारिक शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते रहे हैं।

गैर आदिवासी समुदायों के संपर्क एवं बदलते सामाजिक एवं राष्ट्रीय परिदृश्य में इन समुदायों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने हेतु शिक्षा को महत्वपूर्ण कड़ी माना गया है एवं इस हेतु प्रयास किए गए यथा जनजातीय क्षेत्रो में आश्रम विद्यालय की व्यवस्था की गई, छात्रवृत्ति, गणवेष, पुस्तकें, उच्च शिक्षा संस्थानों में स्थानों का आरक्षण आदि। इन प्रयासों के फलस्वरूप आज जनजातीय समुदाय के व्यक्ति न सिर्फ शिक्षित हो रहे हैं बल्कि उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं एवं शासकीय तथा गैर-शासकीय प्रतिष्ठानों में नौकरी भी कर रहे हैं।

2. **सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन -** जनजातियों के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में बहुत अधिक परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं, उनकी सामाजिक संगठन एवं व्यवस्थाएं जहां एक ओर समाप्त हुई हैं वहीं दूसरी ओर कुछ नई व्यवस्थाओं को स्थान मिला है। जनजातीय संस्कृति एक विशेष एवं पृथक संस्कृति रही है। जिसमें जनजातीय धर्म, उत्सव, त्योहार विवाह आदि की विशेष प्रक्रिया एवं प्रचलन रहे हैं, आज उनमें परिवर्तन हुआ है। जनजातीय समुदायों में हिंदू धर्म के अनुसार पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड एवं विवाह पद्धति बहुत सामान्य हैं। आज वधु मूल्य के स्थान पर दहेज भी उनके बीच दिखाई देता है। होली, दीवाली, नव वर्ष इत्यादि गैर जनजातीय समुदायों की भांति मनाने लगे हैं अर्थात उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में बहुत अधिक परिवर्तन हुए है।
3. **आर्थिक जीवन में परिवर्तन -** जनजातीय अर्थव्यवस्था स्वायत्त एवं आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था रही है। जो मूलतः वनों एवं प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर थी तथा वह समुदाय की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम थी। वास्तव में उनकी अर्थव्यवस्था प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर थी एवं उनकी संस्कृति इन संसाधनों का संरक्षण करने वाली थी। विभिन्न प्रकार के कारकों ने जनजातीय अर्थव्यवस्था को बदला है, आज उनकी आर्थिक क्रियाएं एकाधिक साधनों पर निर्भर हैं यथा- कृषि, मजदूरी, व्यवसाय एवं नौकरी। आज इनकी अर्थव्यवस्था स्वायत्त एवं आत्मनिर्भर नहीं है जिसके नकारात्मक प्रभाव भी हैं।
4. **राजनैतिक जीवन एवं परिवर्तन -** प्रत्येक जनजातीय समुदाय की एक राजनैतिक व्यवस्था होती थी, उनके परंपरागत राजनैतिक संगठन जैसे सामुदायिक पंचायत होते थे। जिसमें मुखिया एवं अनुभवी व्यक्ति मिलकर निर्णय लेते थे। वर्तमान में ये संगठन एवं व्यवस्था समाप्त हो गई है। हमारे देश की राजनैतिक व्यवस्था को जहाँ एक तरफ इन समुदायों ने आत्मसात किया है, तो दूसरी ओर वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था ने भी इन समुदायों की सहभागिता सुनिश्चित करने हेतु अनेक प्रयास किए हैं। 73वे संविधान संशोधन के तहत जनजातियों को आरक्षण दिया गया है। जिसने इनकी

भागीदारी को सुनिश्चित किया है। आज जनजातीय समुदाय का प्रतिनिधित्व पी.आर.आई. के निचले स्तर ग्राम पंचायत से लेकर लोकसभा एवं विधानसभा तक व्यापक है।

A. जनजातीय समुदायों में परिवर्तन के कारक

जनजातीय समुदायों के जीवन में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारक निम्न इस प्रकार हैं-

1. **गैर-जनजातीय समुदायों से संपर्क -** जनतातीय जीवन में परिवर्तन का सबसे बडा कारण गैर-जनजातीय समुदायो से संपर्क है। यह संपर्क परिवर्तन की तमाम प्रक्रियाओं का परिणाम एवं जनजातियों के बीच उनकी संस्कृति में बदलाव लाने वाला सबसे बड़ा कारक है। जनजाति-जाति सातत्य भी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक है।
2. **औद्योगीकरण -** औद्योगीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे वस्तुओं का उत्पादन हस्त-उपकरणों के स्थान पर संचालित मशीनो के आधार पर किया जाता है। शक्ति संचालित मशीनो का प्रयोग न केवल कारखाना अपितु यातायात, संचार, परिवाहन, तथा खेती आदि में किया जाता है। औद्योगीकरण को उघोगवाद की स्थापना की प्रक्रिया के रूप में भी परिभाषित किया जाता है। उघोगवाद और औद्यौगीकरण दोनो ही उत्पादन की ऐसी विधियों के संक्रमण का संकेत देती हैं जो पारंपरिक व्यवस्था की तुलना में आधुनिक समाजों में अधिक धन सम्पदा को अर्जित करने की क्षमता विकसित करता है।
3. **नगरीकरण -** नगरवाद के लक्षणों के विकास एवं प्रसार की प्रक्रिया नगरीकरण कहलाती है। **लुई वर्थ** ने ग्रामों के नगरों में बदलने की प्रक्रिया को नगरीकरण की संज्ञा दी है। इसी प्रकार कुछ विद्वानों ने ग्रामीण जनसंख्या के नगर की ओर निष्क्रय की प्रक्रिया को नगरीकरण का नाम दिया है, वास्तव में नगरीकरण की प्रक्रिया का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। जैसे नगरीय होने, नगरो की ओर जाना, कृषि कार्य को छोड़कर अन्य कार्यों को अपनाना तथा व्यवहार-प्रतिमानो में समान्तर परिर्वतन आदि।
4. **आधुनिकीकरण -** आधुनिक जीवन शैली को अपनाने की प्रक्रिया को आधुनिकीकरण की संज्ञा दी जाती है। वर्तमान में जनजातियों के बीच आधुनिकीकरण को उनके जीवन में अमूलचूल परिवर्तन लाने वाली प्रक्रिया कहा जा सकता है।
5. **संस्कृतिकरण -** जाति व्यवस्था भारतीय समाज का अभिन्न अंग है। जाति व्यवस्था में रहकर जब कोई व्यक्ति या समूह उच्च जाति के क्रिया-कलापों को अपनाता है तो इस प्रक्रिया को संस्कृतिकरण कहते हैं।

एम.एन. श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक 'Religion And Society Among The Coorgs of South India' में जाति के गतिशीलता की प्रक्रिया को व्यक्त करते हुए संस्कृतिकरण की अवधारणा दी और

बताया कि जब कोई निम्न जाति अपने रीति-रिवाजों, कर्मकाण्डों एवं विचारधारा को उच्च जाति के अनुसार करने लगता है, तो उसे संस्कृतिकरण कहते हैं। जनजातीय समुदाय भी परिवर्तन की इस प्रक्रिया से गुजर रही है जिसे दूसरे शब्दों मे गैर-जनजातिकरण (Detribalization) कहते हैं।

6. **वैश्वीकरण -** सामाजिक-आर्थिक संबधों के सम्पूर्ण विश्व तक विस्तार को वैश्वीकरण कहा जाता है। वर्तमान में मानव जीवन के अनेक पक्ष, जिन समाजों में हम रह रहे हैं, उनसे हजारो मील दूर स्थित संगठनों और सामाजिक ताने-बाने से प्रभावित होने लगे हैं। इस प्रकार विश्व एक एकीकरण समाज का रूप धारण करता जा रहा है। इस संबध मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि विषयवाद के द्वारा एक ऐसी नवीन चेतना का उदय हो रहा है, कि सम्पूर्ण विश्व एक गाँव की तरह प्रतीत होता है। इस प्रक्रिया ने जनजाति जीवन मे भी परिवर्तन लाया है।
7. **जनजजातिय विकास नीति एवं योजनाएं -** हमारे देश में विकास हेतु नियोजित परिवर्तन के मॉडल को अपनाया गया जिसके तहत जनजातीय विकास हेतु शिक्षा, स्वाथ्य एवं आजीविका के क्षेत्र में नीति एवं योजनाएं लागू की गई इन नीति एवं योजनाओं के परिणामस्वरूप जनजातीय जीवन में व्यापक परिवर्तन हुआ।

4.1.7 सारांश

इस इकाई मे हमने **'जनजाति'** की अवधारणा को समझने का प्रयास किया, जिसमे जनजाति से आशय, अनुसूचित जनजाति की अवधारणा, जनजाति की परिभाषा एवं विशेषताओं पर विस्तार से चर्चा की गई है। जनजातियों के वर्गीकरण के अंतर्गत उनके प्रजातीय, भाषाई एवं आर्थिक वंश एवं सत्ता के आधार पर वर्गीकरण, आकार के आधार पर वर्गीकरण एवं विकास के स्तर पर वर्गीकरण को समझा गया। जनजातीय जीवन में भी परिवर्तन एक महत्वपूर्ण आयाम है, अतः उसे समझने का प्रयास भी किया गया है।

4.1.8 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. जनजाति से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
2. जनजाति एवं अनुसूचित जनजाति में अंतर लिखिए।
3. जनजाति को परिभाषित करते हुए, इसकी विशेषताएं लिखिए।
4. जनजातियों के प्रजातीय वर्गीकरण को स्पष्ट कीजिए।
5. जनजातियों के भाषाई वर्गीकरण का वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पशुपालक जनजातीय समुदाय पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
2. जनजातीय जीवन में परिवर्तन का वृहद विश्लेषण कीजिए।
3. वंश पंरपरा के आधार पर भारत की जनजातियो का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. विकास की प्रक्रिया एवं जनजाति पर एक निवंध लिखिए।
5. भारत के संदर्भ मे जनजातीय जीवन में परिवर्तन लाने वाले प्रमुख कारकों की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

4.1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. देसाई, ए.आर. (1960). ट्राइब्स इन ट्रंजिसन. सेमिनार 2014: 19-24
2. दुबे, एस.सी. (1960). मानव और संस्कृति. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
3. एल्विन, वैरियर. (1944). द एबोर्जिनियस. बॉम्बे: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
4. घूरिए, जी.एस. (1963). द शेड्यूल ट्राइब्स. बॉम्बे: पॉपुलर प्रकाशन.
5. मजूमदार, डी.एन. एवं मदान, टी.एन. (1956). एंन इंटरोड्कशन टू सोशल एनथ्रोपोलॉजी. बॉम्बे: एशियन पब्लिशिंग हाऊस.
6. मजूमदार, डी.एन. (1944). रसेस एण्ड कल्चरस ऑफ इंडिया. दिल्ली: एशियन पब्लिशिंग हाऊस.
7. रिजले, एच.एच. (1903). सेंसेस ऑफ इंडिया रिपोर्ट. शिमला: गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रेस.
8. साह, बी.एन. (1998). अप्रोच टू ट्राइबल वेल्फेयर इन पोस्ट इंडेपेंडेन्स एरा एंथ्रोपोलॉजिस्ट. Vol.25, No.1, pp. 73-81.
9. सिंह, के.एस. (1994). द श्चेड्यूल ट्राइब्स. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

10. श्रीनिवास, एम.एन. (1952). रिलीजन एण्ड सोसाइटी एमंग द कुर्ज ऑफ साउथ इंडिया. बॉम्बे: एशियन पब्लिशिंग हाऊस.

11. श्रीनिवास, एम.एन. (1966). सोशियल चेंज इन मॉडर्न इंडिया. बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ केलिफोर्निया प्रेस.

12. टायलर, एड.बी. (1881). एंथ्रोपोलॉजी: एन इंटरोड्कशन टू द स्टडी ऑफ मैन एण्ड सिविलाइजेशन. लंदन: मैकमिलन.

13. टायलर, एड.बी. (1920). प्रीमिटिव कल्चर (6th Edition). लंदन: जॉन मैरी.

14. विद्यार्थी. एल.पी. एवं विनय, कु. राय. (1976). द ट्राइबल कल्चर ऑफ इंडिया. नई दिल्ली: कान्सैप्ट पब्लिशिंग कंपनी.

15. Xaxa, Virginius (2008): State, Society and Tribes: Issues in Post-colonial India, New Delhi: Pearson Education India.

16. Xaxa, Virginius (2014): “Report of High Level Committee on Socio-economic, Health and Educational Status of Tribal Communities of India”, Ministry of Tribal Affairs, New Delhi: Government of India.

इकाई : 2 विवाह : परिभाषा, प्रकार एवं सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

4.2.0 उद्देश्य
4.2.1 प्रस्तावना
4.2.2 विवाह की अवधारणा एवं परिभाषा
4.2.3 विवाह के उद्देश्य
4.2.4 विवाह के सिद्धांत
4.2.5 विवाह के प्रकार
4.2.6 विवाह संबंधी नियम
4.2.7 जनजातियों में जीवन साथी चयन की पद्धतियाँ
4.2.8 सारांश
4.2.9 बोध प्रश्न
4.2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी-

- विवाह नामक सामाजिक संस्था की अवधारणा स्पष्ट कर पाएंगे। एवं उसे परिभाषित कर सकेगें।
- विवाह के उद्देश्य स्पष्ट कर पाएंगे।
- विवाह की उत्पत्ति से संबंधित सिद्धांतो का विश्लेषण कर सकेंगे।
- विवाह के प्रकार एवं उनके उपप्रकारो समझेगें।
- विवाह संबंधी नियमो को स्पष्ट कर सकेंगें।
- जनजातियों में प्रचलित विवाह की पद्धतियों की विवेचना कर पाएंगे।

4.2.1 प्रस्तावना

विवाह एक सार्वभौमिक संस्था है, अर्थात यह विश्व के सभी समाजो में पाई जाती है। इसके स्वरूप एवं प्रकार भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न हो सकते है। समाज वैज्ञानिकों की धारणा है कि समाज जब विकास के प्रारंभिक स्तर में था, तब जिन संस्थाओं का पादुर्भाव एवं विकास हुआ, विवाह उनमें प्रमुख है। विवाह की उत्पत्ति के मूल रूप में व्यक्ति की यौन संबंधी आवश्यकता है। मनुष्य की आवश्यकताओं को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है-

1. जैविक आवश्यकताएँ
2. आर्थिक आवश्यकताएँ
3. सामाजिक-सांस्कृतिक आवस्सकताएँ

जैविक आवश्यकताओं में यौन संबंधी आवश्यकता एवं नवजात शिशु का पालन पोषण प्रमुख आवश्यकतएँ है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विवाह का संबंध, मनुष्य की जैविक आवश्यकताओं से है। अलग-अलग समाजों यथा पश्चिमी देशों के समाज एवं पूर्वी देशों के समाज में विवाह का स्वरूप अलग होता है, जो उस समाज विशेष की संस्कृति एवं प्रकृति पर आधारित होता है। हमारे देश में भी पर्याप्त सामाजिक-सांस्कृतिक एवं भौगोलिक भिन्नता है, अर्थात हमारे देश में बहुत सी संस्कृतियाँ प्रचलन में है, जैसे उत्तर-पूर्व की संस्कृति, मध्य क्षेत्र की संस्कृति, पश्चिमी भारत एवं दक्षिणी भारत की संस्कृति। समुदायों के आधार पर भी एक सांस्कृतिक विविधता पाते हैं जैसे बांग्ला समुदाय की संस्कृति, पंजाबी, महाराष्टीयन एवं अन्य समुदायों की संस्कृति। जनजातीय एवं गैर जनजातीय समुदायों की संस्कृति इत्यादि।

धर्म के आधार पर भी सांस्कृतिक विविधता है, जैसे हिंदू धर्म की संस्कृति, इस्लाम, पारसी, सिक्ख एवं ईसाई धर्म की संस्कृति अलग-अलग है। इस प्रकार हमारे देश में विवाह के स्वरूप में भी विविधता है। इसके बावजूद विवाह की अनिवार्यता सभी समाजो मे है। अतः विवाह नामक संस्था, समाजशास्त्र की विषय-वस्तु में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

4.2.2 विवाह की अवधारणा एवं परिभाषा

विवाह एक सामाजिक संस्था है जिसकी अवधारणा को सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य मे समझा जा सकता है। मानव को अन्य जीव धारियों से विशेष एवं पृथक स्थान, उसके विकास के कारण प्राप्त है, इस विकास में सामाजिक-सांस्कृतिक विकास बहुत महत्वपूर्ण है, जिसने उसे पशुओं से पृथक किया। परिवार, विवाह, नातेदारी, धर्म संस्कृति इत्यादि का विकास मुख्यतः समाज में अराजकता को समाप्त कर समाज के सुचारू संचालन हेतु हुआ, जो कृमिक रूप से सरलता से जटिलता की ओर विकसित हुआ। अर्थात ये संस्थाएँ आज जिस स्वरूप में हैं वह विकास के तमाम सोपानों के पश्चात है। प्रारंभ मे यह अपने सरल स्वरूप में थी, विवाह भी इसका अपवाद नहीं है। विवाह ने परिवार एवं नातेदारी को विकसित किया। विवाह एक ऐसी संस्था है जो व्यक्ति की यौन आवश्यकता की पूर्ति के साथ-साथ शिशु के जन्म को सामाजिक स्वीकार्यता एवं वैधानिकता प्रदान करती है, जो किसी भी राष्ट्र एवं समाज के विकास हेतु आवश्यक है। यही कारण है कि विवाह एक सार्वभौमिक संस्था है। 'विवाह' का शाब्दिक अर्थ है 'उद्वह' अर्थात वर के द्वारा वधु को अपने घर लाना।

सामाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र में विवाह एक संस्था के रूप में स्थापित अवधारणा है। किसी भी अवधारणा (समाज में प्रचलित प्रक्रिया) के निर्माण की प्रक्रिया संस्था के निर्माण की प्रक्रिया से होकर पूर्ण होती है, एवं उसमें संस्था की विशेषताएं विद्यमान होती हैं। तब वह संस्था के रूप में स्वीकार्य होती है। विवाह भी एक ऐसी ही अवधारणा है, जो विलियम ग्राहम समनर द्वारा प्रस्तुत संस्था के निर्माण की प्रक्रिया से होकर पूर्ण हुई है एवं जिसमें विवाह की विशेषताएं विद्यमान हैं।

जब कोई विचार, समूह की स्वीकृति के साथ समूह की आदत बन जाती है, और पूरे समूह में पीढ़ी दर पीढ़ी इसकी पुनरावृत्ति होती है, **तब वह परंपरा बनती है**। परंपरा में जब कुछ नियमों का समावेश होता है, तब वह प्रथा के रूप में परिवर्तित हो जाती है, और जब प्रथाओं के नियमों की एक स्पष्ट संरचना विकसित होती है, तब **'संस्था'** निर्मित होती है। स्पष्ट है कि संस्था निर्माण की प्रक्रिया एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है। विवाह अपने वर्तमान स्वरूप में बहुत से सोपानों के पश्चात आई संस्था है। सामाजिक संस्था के कुछ आधारभूत तत्व हैं, जैसे धारणा, उद्देश्य, संरचना प्रतीक आदि। विवाह को निम्नलिखित विद्वानों ने इस प्रकार परिभाषित क्कीय है-

बोगार्डस के अनुसार – "विवाह स्त्री एवं पुरूष को पारिवारिक जीवन में प्रवेश कराने वाली संस्था है। अर्थात विवाह करने वाले स्त्री-पुरूष एक नवीन परिवार का निर्माण करते हैं।"

वेस्टरमार्क के अनुसार – "विवाह एक या अधिक पुरूषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह संबंध है जिसे प्रथा या कानून स्वीकार करता है और जिसमें इस संगठन में आने वाले दोनों पक्षों एवं उनसे उत्पन्न बच्चों के अधिकार एवं कर्तव्य का समावेश होता है। विवाह कहलाता है।" **वेस्टरमार्क** ने अपनी पुस्तक 'History of Human Marriage' में विवाह को इस प्रकार परिभाषित करते हुए उसके बहु विवाह एवं समूह विवाह के स्वरूपों को इंगित किया है एवं विवाह के फलस्वरूप परिवार में सदस्यों के अधिकार एवं कर्तव्यों पर प्रकाश डाला है।

गिलिन एवं गिलिन के अनुसार - "विवाह एक प्रजनन मूलक परिवार की स्थापना का समाज द्वारा स्वीकृत तरीका है।"

मजूमदार एवं मदान के अनुसार - "विवाह संस्था में कानूनी या धार्मिक आयोजन के रूप में उन सामाजिक स्वीकृतियों का समावेश होता है। जो विषम लिंगियों को यौन क्रिया और उससे संबंधित सामाजिक आर्थिक संबंधों में सम्मिलित करने का आधार प्रदान करती है। इस प्रकार विवाह जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक अधिकारों एवं कर्तव्यों का भी निर्धारण एवं नियमन करता है।"

मैलिनोवस्की के अनुसार-"विवाह बच्चों की उत्पत्ति एवं पालन-पोषण के लिए इकरारनामा है"।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि विवाह समाज की वह महत्वपूर्ण संस्था है जो परिवार के नियमन को संभव बनाती है।

4.2.3 विवाह के उद्देश्य

विभिन्न समाजों में विवाह के उद्देश्य यद्यपि समान हैं लेकिन सामाजिक मूल्यों और सांस्कृतिक विशेषताओं में भिन्नता होने के कारण इन उद्देश्यों की प्राथमिकता के क्रम में कुछ अंतर पाया जाता है। विवाह के इन उद्देश्यों में चार उद्देश्यों को प्रमुख महत्व दिया जाता है-

(क) यौनिक इच्छाओं की पूर्ति

(ख) परिवार का निर्माण

(ग) आर्थिक सहयोग की स्थापना

(घ) बच्चों के पालन पोषण के द्वारा मातृ मूल प्रवृत्ति की संतुष्टि

यद्यपि विवाह के ये चारों ही उद्देश्य समान रूप से महत्वपूर्ण हैं लेकिन इन्हें भिन्न-भिन्न आधारों पर एक दूसरे से अधिक महत्वपूर्ण दिखाने का प्रयत्न किया जाता है। पश्चिमी समाजों की भौतिकवादी संस्कृति में विवाह का सबसे प्रमुख उद्देश्य यौन संबंध स्थापित करने का कानूनी अधिकार प्राप्त करना और बच्चों के जन्म को वैध रूप प्रदान करना है। इन समाजों में परिवार का महत्व अपेक्षाकृत कम होने और व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन मिलने के कारण विवाह जैसी संस्था का संबंध संपत्ति अधिकारों से बहुत कम है। इसके बिल्कुल विपरीत सरल और अदिवासी समुदायों में विवाह का उद्देश्य केवल दो व्यक्तियों के बीच ही संबंध को स्थापित करना नहीं बल्कि दो परिवारों के संबंध को दृढ बनाना होता है। बहुत से आदिवासी समुदाय ऐसे हैं जिनमें यौन संबंधों के बारे में नियम न तो अधिक कठोर है और न ही ऐसे संबंधों पर किसी तरह का नियंत्रण लगाना जरूरी समझा जाता है। इस प्रकार यहां यौन संबंधों का अधिकार देना विवाह का बहुत महत्वपूर्ण उद्देश्य नही समझा जाता है। अनेक अदिवासी समुदायों में बहुपति विवाह का प्रचलन है जिसके कारण यह जानना बहुत कठिन हो जाता है कि बच्चे का वास्तविक पिता कौन व्यक्ति है ऐसी स्थिति में बच्चे के पितृत्व का निर्धारण भी सामाजिक प्रथाओं अथवा सांस्कृतिक रूप से होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि बच्चों को वैध रूप देना भी विवाह का प्रमुख उद्देश्य नहीं हो सकता क्योंकि सामाजिक प्रथाओं के द्वारा भी बच्चे को वैध रूप दिया जा सकता है। ऐसी स्थिति में केवल परिवार का निर्माण करना ही विवाह का प्रमुख उद्देश्य रह जाता है। इतना अवश्य है कि विवाह के बिना भी व्यक्ति अपनी यौनिक इच्छा को पूरा कर सकता है। लेकिन एंसा होने से वैयक्तिक विघटन की सम्भावना अधिक रहती है। इस दृष्टिकोंण से विवाह का एक अन्य उद्देश्य हमारे सामने आता है जिसे हम व्यक्तित्व का स्वस्थ रूप से विकास करना अथवा व्यक्ति को मानसिक सुरक्षा प्रदान करना कह सकते हैं।

हमारे समाज में यौन-संतुष्टि को विवाह का सबसे गौण उद्देश्य माना गया है। हिंदू जीवन में गृहस्थ-जीवन को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है क्योकि व्यक्ति केवल परिवार में रहकर ही विभिन्न व्यक्तियों और समूहों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन सबसे अच्छे रूप में कर सकता है। इस दृष्टिकोण से परिवार का निर्माण करना और परिवार में धार्मिक क्रियाओं की पूर्ति करना अथवा दूसरे शब्दों में अन्य व्यक्तियों के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करना ही विवाह का एक सांस्कृतिक विशेषताओं को स्थिर बनाए रखना है एंसा इस कारण है कि विवाह के प्रमुख उद्देश्य है इसके अतिरिक्त भारतीय समाज में विवाह के एक प्रमुख द्वारा ही बच्चों को सांस्कृतिक विशेषताओं की सीख दी जा सकती है। और उसी संस्था के द्वारा यह सीख वंश परंपरा के माध्यम से एक पीढी से दूसरी पीढी को प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विवाह के उद्देश्यों को केवल जैविकीय आधार पर नहीं समझा जा सकता बल्कि इन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक आधार पर ही स्पष्ट किया जाना चाहिए।

इस प्रकार विवाह के निम्नांकित उद्देश्य हैं जिन्हे यह संस्था पूरा करती है-

1. यौन संबंधो का निर्धारण एवं नियमन।
2. परिवार का निर्माण एवं नातेदारी का विस्तार।
3. बच्चों के जन्म को वैधानिकता प्रदान करना।
4. सामाजिक-सांस्कृतिक सुरक्षा।
5. आर्थिक सुरक्षा।

वेस्टरमार्क ने विवाह के पांच उद्देश्य बताए हैं-

1. वैध संतानोत्पत्ति
2. परिवार की स्थापना
3. युवावस्था में भावनात्मक स्थिरता
4. आर्थिक उत्तरदायित्व
5. सामाजिक उत्तरदायित्व

इसी प्रकार **मुरडॉक** ने विवाह के निम्नांकित तीन उद्देश्य बताए हैं, उन्होंने 250 समाजों का अध्ययन कर कहा है कि ये उद्देश्य सभी समाजों में पाए जाते हैं -

1. यौन संतुष्टि
2. आर्थिक सहयोग
3. संतानों का समाजीकरण एवं लालन पालन

4.2.4 विवाह की उत्पत्ति के सिंद्धात

समाज वैज्ञानिक अध्ययनों में विवाह की उत्पत्ति से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण सिद्वांत निम्न प्रकार हैं-

1. शास्त्रीय सिद्धांत- इस सिद्धांत के प्रतिपादको मे **प्लेटो** एवं **अरस्तु** प्रमुख हैं। भारतीय धार्मिक ग्रंथ भी विवाह के इस सिद्धांत पर बल देते हैं। बाद में **सर हेनरीमेन** ने विश्व के विविध समाजों का अध्ययन कर इस सिद्धांत को विस्तारित किया। इस सिद्धांत के अनुसार विवाह का प्रारंभिक स्वरूप पितृसत्तात्मक या विवातेशांत पितृसत्तात्मक पितृवंशीय परिवार का विस्तार होता था।

2. यौन साम्यवाद का सिद्धांत - इस सिद्धांत के समर्थकों मे **मॉर्गन, फ्रेजर** एवं **ब्रिफाल्ट** प्रमुख हैं। इस सिद्धांत के अनुसार जब समाज विकास की प्रक्रिया के प्रारंभिक चरण में था, तब कोई भी पुरूष किसी भी महिला से यौन संबंध स्थापित कर सकता था। इस अवस्था को उन्होंने यौन साम्यवाद कहा है। इस चरण में प्रितृत्व का निर्धारण करना कठिन था। इसलिए मातृसत्तात्मक परिवारों का अस्तित्व था। इस सिद्धांत के अनुसार विवाह का प्रारंभिक स्वरूप यौन साम्यवाद का था ।

3. एक विवाह का सिद्धांत - इस सिद्धांत के समर्थकों में **वेस्टरमार्क** प्रमुख हैं। वेस्टरमार्क के अनुसार जब पुरूष संपत्ति की भांति स्त्री पर एकाधिकार के प्रयास मे सफल हुआ तो विवाह अस्तित्व में आया, अर्थात विवाह अपने अस्तित्व में एक विवाह के स्वरूप में ही आया। **मैलिनोवस्की** का भी यही मत है कि मनुष्य पशु अवस्था से ही परिवार को अपने साथ लाया है और वह एक विवाही परिवार था।

4. मातृसत्तात्मक सिद्धांत - इस सिद्धांत के समर्थकों मे ब्रिफाल्ट प्रमुख हैं। प्रारंभिक अवस्था में स्त्री-पुरूष के संबंधों से अधिक मजबूत माता व पुत्र के संबंध थे, संतान के लालन-पालन एवं सुरक्षा का भार भी मात्र माता का था, अतः स्त्री यौन संबंधों के लिए अधिक स्वतंत्र थी। इस सिद्धांत के अनुसार यही विवाह का प्रारंभिक स्वरूप था।

5. उद्विकासीय सिद्धांत - इस सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या **मॉर्गन** ने की है। इनके अतिरिक्त **हैवीलैण्ड, क्रिचफील्ड** तथा **बैकोफन** भी इस सिद्धांत के समर्थक हैं। इस सिद्धात के अनुसार विवाह नामक संस्था एक ही बार में अपने वर्तमान स्वरूप में नहीं आई बल्कि उसका कृमिक रूप से उद्विकास हुआ है। अर्थात यह यौन साम्यवाद के चरण से एक विवाह के स्वरूप तक उद्विकास की प्रक्रिया से गुजरा है। इन सभी सिद्धांतो को एक साथ मिलाकर देखें तो हम कह सकते हैं कि अन्य अवधारणाओं की भांति विवाह की उत्पत्ति के संबंध में भी विद्वानों में मतभेद है। इन सिद्धातों को और अधिक संक्षिप्त रूप से हम समाज वैज्ञानिको के विचारों के आधार पर देख सकते हैं-

A. **मॉर्गन का उद्विकासीय सिद्धांत-** मॉर्गन का मत है कि समाज की प्रारंभिक अवस्था में विवाह नामक संस्था का अभाव था, प्रारंभ में समाज में यौन साम्यवाद की स्थिति थी। पुरूष को किसी भी स्त्री से एवं स्त्री को किसी भी पुरुष से यौन संबंध स्थापित करने की स्वतंत्रता थी। धीरे-धीरे मानव

समाज का विकास तेज हुआ और विवाह संस्था का प्रारंभिक स्वरूप विकसित हुआ, यह विकास कुछ अवस्थाओं में हुआ। जो निम्न प्रकार है-

1. समूह विवाह
2. सिण्डेस्मियन विवाह
3. व्यवस्थित विवाह

इसी प्रकार **बेकोफेन** ने भी विवाह रूपी संस्था के विकास की तीन अवस्थाओं का उल्लेख किया है-

1. बहुपति विवाह
2. बहुपत्नी विवाह
3. एक विवाह

B. **वेस्टरमॉर्क का एक विवाह का सिद्धांत -** वेस्टरमार्क का मानना है कि मनुष्य एवं पशु में अंतर है, मनुष्यों में भावनाएँ एवं संवेग जैसे अपनत्व एवं ईर्ष्या पाए जाते हैं अतः प्रारंभ में भी यौन साम्यवाद की स्थिति नहीं थी। व्यक्ति (स्त्री एवं पुरूष) भावनाओं के साथ एक दूसरे से जुडे होते थे। इस प्रकार एक विवाह ही विवाह का प्रारंभिक स्वरूप था, और आगे भी रहेगा। वेस्टमार्क वहुपति एवं वहुपत्नी विवाह को विवाहिक आदर्शो का उल्लघन मानते हैं।

4.2.4 विवाह के प्रकार (Types of Marriage)

विभिन्न समाजों में विवाह के स्वरूप भिन्न-भिन्न हैं, इन्हें मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-

1. **एक विवाह (Monogamy) -** एक विवाह, विवाह का वह स्वरूप है, जिसमें एक समय में एक स्त्री एवं पुरूष एक पुरूष एवं एक ही स्त्री से विवाह करते हैं। वर्तमान में एक विवाह को विवाह का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप माना जाता है एवं अधिकांश समाजों में यही स्वरूप प्रचलित है। हमारे देश में भी **हिंदू विवाह अधिनियम 1955** के द्वारा एक विवाह को आवश्यक माना गया है। अर्थात हमारा संविधान एक विवाह के स्वरूप की ही अनुमति देता है। जनजातीय समाज भी परिवर्तन का अपवाद नहीं है। उनके बीच भी विवाह का यही स्वरूप दिखाई देता है। यद्यपि उनके परंपरागत सामाजिक संरचना में अन्य स्वरूपों का अस्तित्व अभी बचा हुआ है।

पिडिंगटन का कथन है “एक विवाह, विवाह का वह स्वरूप है जिसमें किसी एक समय कोई भी पुरूष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह नहीं कर सकता।” इससे स्पष्ट होता है कि एक विवाह जीवन में केवल एक बार ही विवाह करना नहीं है बल्कि यह वह नियम है जिसके अंतर्गत एक पत्नी अथवा एक पति के रहते हुए कोई पक्ष दूसरी स्त्री अथवा दूसरे पुरूष से विवाह नहीं कर सकता। एक विवाह प्रत्येक समाज में विवाह का सर्वोत्तम नियम माना जाता है। मुसलमानों में बहुत से शिया लोग एक विवाह को मानते हुए भी इसे अस्थायी

रूप देने में संकोच नहीं करते वास्तविकता यह है कि एक निश्चित समय के लिए किए गए अस्थायी विवाह को एक विवाह की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। एक विवाह में स्थायित्व का गुण होना सबसे अधिक आवश्यक है। साधारणतया जिन समाजों में एक विवाह को सर्वोच्च सामाजिक मूल्य के रूप में देखा जाता है। वहॉ सभी व्यक्तियों पर यौन के क्षेत्र में कठोर नियंत्रण लगाए जाते हैं। इस पद्धति से किए गए विवाह को तोडना अत्यधिक कठिन तो होता ही है साथ ही एंसा करना सामाजिक रूप से अनुचित भी समझा जाता है। इस आधार पर एक विवाह की व्यापकता को स्पष्ट करते हुए **वेस्टरमार्क** ने लिखा है कि मनुष्य तो क्या पशु और पक्षी भी हमेशा से एक विवाही ही रहे हैं।

A. एक विवाह के कारण

एक विवाह के निम्नलिखित कारण इस प्रकार हैं-

1. एक विवाह का सबसे पमुख कारण सभी स्त्री और पुरूषों में ईर्ष्या की भावना होना हैं। कोई भी व्यक्ति यह नही चाहता कि उसके दाम्पत्य-अधिकार का बंटवारा अनेक व्यक्तियों में हो जाए इस प्रवृत्ति से एक विवाह को प्रोत्साहन मिलता है।
2. कुछ समाजों को छोड़कर, लगभग सभी समाजों में स्त्री और पुरूषों का अनुपात लगभग समान होता है। ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति को केवल एक जीवन साथी का चुनाव करने की ही सुविधा मिल पाती है।
3. प्रत्येक व्यक्ति पारिवारिक संघर्षो से दूर रहने का प्रयत्न करता है। इस इच्छा के कारण भी एक विवाह की संख्या में निरंतर वृद्धि होती जा रही है।
4. एक विवाह का एक अन्य प्रमुख कारण समाज में आर्थिक साधनों की कमी होना भी है।
5. अंत में हमारे सामाजिक नियम और वर्तमान कानून भी एक विवाह को ही समाज के लिए आवश्यक समझते हैं।

इन्हीं कारणों के फलस्वरूप कुछ समय पहले के बहुविवाही समूह भी अब एक विवाही बनते जा रहे हैं।

B. एक विवाह के लाभ

एक विवाह के निम्नलिख्त लाभ इस प्रकार हैं-

1. विवाह के सभी स्वरूपों में एक विवाह सबसे अधिक न्यायपूर्ण ही नहीं है बल्कि इसमें स्त्री-पुरुष के पारस्परिक अधिकार भी सबसे अधिक सुरक्षित रहते हैं।
2. एक विवाह से बनने वाले परिवार कहीं अधिक स्थायी और संगठित होते हैं। क्योंकि उनमें सघर्ष होने की सम्भावना बहुत कम रहती है।
3. ऐसे परिवारों में बच्चों की देख-रेख शिक्षा और अनुशासन का सबसे अच्छा प्रबंध सम्भव हो पाता है।

4. इन विवाहों के द्वारा समाज में स्त्रियों को उच्च सामाजिक स्थिति प्राप्त होती है। एंसा इस कारण है कि विवाह से संबंधित दोनों पक्षों को एक दूसरे को समझने का काफी अवसर मिल जाता है।
5. एक विवाह ने मानसिक स्थिरता को बढाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसका कारण यह है कि एक विवाह से ही व्यक्ति अपने साधनों और अवश्यकताओं के बीच संतुलन स्थापित कर पाता है।

C. एक विवाह की हानियां

यद्यपि एक विवाह अधिकांश सामाजिक गुणों से युक्त है। लेकिन तो भी कुछ विचारकों का कहना है कि एक विवाह के कारण समाज में अनैनिकता संबंधी दोष उत्पन्न होते हैं। इसका कारण यह है कि व्यक्ति को प्रत्येक समय अपना जीवन कठोर संयम में व्यतीत करना कभी-कभी कठिन महसूस होता है। यह भी कहा जाता है कि एक विवाह एकाधिकारी व्यवस्था के समान है और इसमें स्त्रियों का शोषण होने की सम्भावना भी बढ जाती है। वास्तविकता यह है कि एक विवाह की ऐसी आलोचनाएं उचित नही है। यह प्रमाणित हो चुका है कि विवाह की सभी पद्धतियों में केवल एक विवाह ही ऐसी पद्धति है जिसमें सामाजिक जीवन अधिक प्रगतिशील बन सकता है।

2. **बहुविवाह (Polygamy) -** बहुविवाह, विवाह का वह स्वरूप है जिसमें एक पुरूष एक से अधिक स्त्रियों से अथवा एक स्त्री एक से अधिक पुरूषों से विवाह करती/करती है। बहुविवाह मुख्यतः दो प्रकार से होते हैं -

1. **बहुपत्नी विवाह (Polygyny) -** जब एक पुरूष एक समय में एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करता है, तो इसे बहुपत्नी विवाह कहते हैं। इस प्रकार के विवाह **गोंड, भील, बैगा, टोडा, लुशाई** एवं **नागा** जनजातियों में पाए जाते हैं।

बहुपत्नी विवाह का सबसे प्रमुख कारण किसी समाज में पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या का अधिक होना है। उदाहरण के लिए अधिकांश जनजातियों में स्त्रियों का अनुपात पुरूषों से अधिक होने के कारण वहॉ बहुपत्नी विवाह का प्रचलन पाया जाता है। इस प्रथा का दूसरा कारण पुरूष में नवीनता और साथ ही एकाधिकार की भावना का आधिक्य होना है। कभी-कभी पहली पत्नी से संतान न होने के फलस्वरूप भी बहुपत्नी विवाह को प्रोत्साहन मिलता है। अनेक समाजों में अनेक पत्नियों का होना सामाजिक सम्मान और प्रतिष्ठा का सूचक बन जाता है। जिसके कारण सम्पन्न व्यक्ति एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करने लगते हैं। अनेक मानव समूह ऐसे हैं जिनमें स्त्रियॉ जीविका उपार्जित करने में पुरूषों की बहुत सहायता करती हैं इसके फलस्वरूप पुरूष अनेक स्त्रियों से विवाह करके परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार करने का प्रयत्न करते हैं।

इस प्रथा के अनेक लाभों को जैविकीय और आर्थिक क्षेत्र में स्पष्ट किया जा सकता है। इस प्रथा के कारण किसी समूह में अच्छे वंशानुक्रम की संतानों के जन्म की सम्भावना बढ़ जाती है। इसका कारण यह है कि बहुपत्नी विवाह करने वाले व्यक्ति साधारणतया उच्च स्थिति के व्यक्ति होते है। स्वाभाविक है कि उनकी

संतानों से भी गुणवान होने की आशा की जा सकती है। एक परिवार में अधिक स्त्रियॉ होने से बच्चों के पालन-पोषण में सरलता रहती है। तथा परिवार में श्रम विभाजन के द्वारा सभी दायित्वों को जल्दी ही पूरा कर लिया जाता है। साधारणतया बहुपत्नी विवाह से संबंधित समाजों में अनैतिकता की समस्या बहुत कम होती हैं क्योंकि ऐसे समाजों में पुरूषों के नवीनता की इच्छा परिवार के अंदर ही पूर्ण हो जाती है।

इस प्रथा से **लाभ की अपेक्षा हानियॉ** बहुत अधिक है जिन्हें प्रमुख रूप से पारिवारिक और सामाजिक क्षेत्रों में देखा जा सकता है। ऐसे विवाहों में स्त्रियों को परिवार में कोई भी सम्मानपूर्ण स्थान नहीं मिल पाता वे केवल कामवासना को संतुष्ट करने का एक साधन बनकर रह जाती हैं। ऐसे विवाहों से संबंधित परिवारों में पारस्परिक कलह, ईर्ष्या और मतभेद की संभावना कहीं अधिक रहती है। जिसके फलस्वरूप अक्सर बच्चों के व्यक्तित्व का समुचित विकास नही हो पाता। बहुपत्नी विवाह की प्रथा सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से भी उचित नही है। यह प्रथा पुरूषों को विशेषाधिकार देकर स्त्रियों का शोषण करती है। इस प्रथा के कारण परिवार में बच्चों की संख्या बहुत अधिक बढ जाती है। सीमित साधनों के कारण उनकी उचित देख-रेख भी नहीं हो पाती जिसके फलस्वरूप एक निरंकुश और अशिक्षित पीढी का निर्माण होता है।

वास्तव में बहुपत्नी विवाह की प्रथा आज तेजी से समाप्त होती जा रही है। इसका प्रमुख कारण वर्तमान सामाजिक अधिनियम, कठिनाइयॉ तथा स्त्री में सामाजिक जागरूकता की वृद्धि होना है। यद्यपि अनेक सभ्य समाज आज भी धर्म अथवा संस्कृति के नाम पर बहुपत्नी विवाह को बनाए रखने के पक्ष में हैं, लेकिन इसके फलस्वरूप ऐसे समाजों की सामाजिक प्रगति बिल्कुल रूक गयी है। बहुपत्नी विवाह को आज प्रमुख रूप से जनजातीय जीवन तथा मुस्लिम समाज की ही विशेषता समझा जाता है।

2. बहुपति विवाह (Polyandry) - जब एक स्त्री एक समय में एकाधिक पुरूषों से विवाह करती है तो इसे बहुपति विवाह कहते हैं। बहुपत्नी विवाह प्रमुख रूप से जनजातियों के जीवन से ही संबंधित है **माईकेल** का कथन है “एक स्त्री द्वारा एक पति के जीवित होते हुए अन्य पुरूषों से भी विवाह करना अथवा एक समय पर दो या दो से अधिक पुरूषों से विवाह करने की स्थिति को हम बहुपत्नी विवाह कहते है।” लगभग इन्हीं शब्दों में **कपाडिया** का कथन है “बहुपत्नी विवाह वह संबंध है जिसमें एक स्त्री एक समय में एक से अधिक पुरूषों का वरण कर लेती है अथवा जिसके अंतर्गत अनेक भाई एक स्त्री को पत्नी के रूप में सम्मिलित रूप से उपभोग करते हैं।” वास्तव में बहुपति विवाह की प्रथा आज जनजातियों में भी शिक्षा और सांस्कृतिक संपर्क के प्रभाव से बराबर कम होती जा रही है।

भारत की खस, टोड, कोटा, कुसुम्ब और **कम्मल** जनजातियों में बहुपति विवाह आज भी देखने को मिलता है। लेकिन अधिकांश जनजातियॉ ऐसी है जो धीरे-धीरे इस प्रथा को छोडती जा रही हैं। **बहुपति विवाह की विशेषताओं** को प्रमुख रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है-

1. इस प्रथा के अंतर्गत एक स्त्री के अनेक पति आपस में भाई भाई हो सकते हैं अथवा उनका आपस में कोई संबंध नहीं भी हो सकता है।

2. बहुपति विवाह में भी स्त्री के सबसे बडे पति को दूसरे पतियों की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त होते हैं।
3. यदि एक स्त्री का विवाह अनेक भाइयों के साथ हो तो पारिवारिक अथवा यौनिक अधिकारों के क्षेत्र में भी छोटे भाइयों को बडे भाई के आदेशों का पालन करना अनिवार्य समझा जाता है।
4. मातृ प्रधान जनजातियों में स्त्री अपनी इच्छानुसार अनेक पुरूषों का पति के रूप में चयन करती है जबकि पितृ प्रधान जनजातियों में अनेक पुरूष मिलकर एक स्त्री का पत्नी के रूप में चुनाव कर लेते हैं।
5. सामान्यतया इस प्रथा के अंतर्गत बच्चों के पित्त्व का निर्धारण सामाजिक रूप से होता है।
6. विवाह की इस रीति से साधारणतया पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों की स्थिति अधिक उँची होती है।

बहुपति विवाह भी दो प्रकार का होता है-

1. भ्रातृ बहुपति विवाह
2. अभ्रातृ बहुपति विवाह

1. भ्रातृ बहुपति विवाह (Fraternal Polyandry)- भ्रातृ बहुपति विवाह वह है जिसमें एक स्त्री के अनेक पति आपस में भाई-भाई होते हैं। विवाह का यह रूप **'खस'** जनजाति में बहुत स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। खस जनजाति मे जब बडा भाई किसी स्त्री से विवाह करता है तब उसकी पत्नी सभी छोटे भाइयों की पत्नी मान ली जाती है। यदि छोटे भाई की आयु बहुत कम है तो बडा होने पर उसे एक अन्य स्त्री से भी विवाह करने की अनुमति दी जा सकती है। लेकिन इस नई स्त्री को भी सभी भाइयों की पत्नी के रूप में रहना आवश्यक। होता है इससे स्पष्ट होता है कि भ्रातृ बहुपति विवाह में पत्नी पर वास्तविक अधिकार सबसे बडे भाई का ही होता है यदि कोई भाई एक पृथक पत्नी रखने का प्रयत्न करता है तो उसे परिवार की संपत्ति से वंचित किया जा सकता है। पत्नी से उत्पन्न संतानों का भरण-पोषण करना भी सबसे बडे भाई का ही दायित्व है। इस प्रथा की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके अंतर्गत साधारणतया सबसे पहली संतान का पिता सबसे बडे भाई को दूसरी संतान का पिता उससे छोटा भाई की और इसी प्रकार आगे होने वा संतानों के पितृत्व का निर्धारण सामाजिक रूप से होता रहता है।

2. अभ्रातृ बहुपति विवाह (Non-fraternal Polyandry)- यह विवाह का वह रूप है जिसमें अनेक पतियों के बीच किसी प्रकार का रक्त संबंध होना आवश्यक नहीं होता विवाह की यह प्रथा **नीलगिरी पहाडियों की टोडा** जनजाति में पायी जाती है। इस जनजाति में स्त्री के अनेक पति भिन्न-भिन्न स्थानों के निवासी होते है और अपनी इच्छानुसार किसी भी पति के साथ रह सकती है। लेकिन व्यावहारिक रूप से एक पति के साथ रहने की अवधि एक माह से अधिक नही होती। इस जनजाति में स्त्री को पुरूष की अपेक्षा अधिक अधिकार मिले होते हैं। बडी मनोरंजक बात यह है कि यदि पत्नी की मृत्यु हो जाय तो उसके सभी

पतियों को विधुर जीवन की समस्याओं का सामना करना पडता है। अभ्रातृ बहुपति विवाह की सबसे बडी समस्या यह है कि बच्चे के पितृत्व का निधारण कैसे किया जाए इसके लिए **टोडा जनजाति** में **'परसुतपिमि'** संस्कार किया जाता है। अर्थात बच्चे के जन्म के बाद जो पति अपनी पत्नी को **धनुष बाण** देकर बच्चे का दायित्व लेने की घोषणा करता है उसी को उस बच्चे का पिता स्वीकार कर लिया जाता है। इसके पश्चात भी वास्तविकता यह है कि टोडा जनजाति में भी ऐसे विवाहों का विरोध लगातार बढता जा रहा है। कुछ समय पहले की बहुपति विवाही **नायर जनजाति** भी अब एक विवाही समूह के रूप में बदलती जा रही है।

बहुपति विवाह के कारण - सर्वप्रथम समूह में पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों के अनुपात में कमी होने से इस प्रथा को प्रोत्साहन मिलता है। कुछ जनजातियों में एक पुरूष को विवाह करने के लिए लडकी के पिता को कन्या मूल्य देना पडता है। इसके फलस्वरूप अनेक निर्धन पुरूष मिलकर एक स्त्री से विवाह कर लेते हैं। इस प्रथा का एक प्रमुख कारण जनजातियों का संघर्ष से भरा हुआ प्राकृतिक जीवन है। जनजातियॉ परिवार के आकार को छोटा रखने और परिवार में मेहनत करने वाले सदस्यो की संख्या अधिक रखने के लिए भी बहुपति विवाह का समर्थन करती हैं। **कपाडिया** का विचार है कि जनजातियों में पुरूष साधारणतया घर से दूर ही रहते हैं। ऐसी स्थिति में स्त्री की सुरक्षा के दृष्टिकोण से भी बहुपति विवाह को प्रोत्साहन मिला होगा अंत में, बहुपति विवाह का एक मुख्य कारण पैतृक संपत्ति को विभाजन से बचाने की इच्छा भी है। जब अनेक भाइयों की एक ही पत्नी होगी तो उनके बीच संपत्ति के विभाजन का कभी प्रश्न ही नहीं उठ सकता।

बहुपति विवाह के गुण - इस प्रथा ने जनजातियों के सामाजिक जीवन को संगठित रखने में अनेक प्रकार से सहयोग दिया है। जिन जनजातियों में बहुपति विवाह का प्रचलन है वहॉ सामाजिक संघर्षो की मात्रा बहुत कम है क्योंकि वहॉ यौन के आधार पर संघर्षो की सम्भावना बहुत ही कम रह जाती है। ऐसे विवाहों ने परिवार के आर्थिक साधनों को भी कम नही होने दिया है। बहुपति विवाहों के फलस्वरूप परिवार में बच्चों की संख्या बहुत सीमित रहती है। इसके फलस्वरूप जनजातियॉ निर्धनता के बाद भी अपने आर्थिक संतुलन को बनाए रखती है। जनजातियों में भूमि, पशु और थोडे से औजार ही उनकी संपत्ति होती है। इस प्रथा ने इस संपत्ति को अनेक पीढियों तक सुरक्षित बनाए रखने में जनजातियों की सहायता की है।

बहुपति विवाह के दोष - इस प्रथा के मुख्य दोष सामाजिक और जैविकीय आधार पर देखे जा सकते हैं। बहुपति विवाह के फलस्वरूप स्त्रियॉ शारीरिक रूप से दुर्बल हो जाती हैं। बहुत से उदाहरण ऐसे भी मिलते है जबकि स्त्रियों में अनेक बीमारियॉ ही नही बढ जाती बल्कि उनमें धीरे-धीरे बॉझपन की समस्या भी बढने लगती है। इस प्रथा के कारण स्त्रियों को आवश्यकता से कहीं अधिक स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि समूह में कभी-कभी अनैतिकता और कामाचार की समस्या गम्भीर रूप ले लेती है। ऐसे विवाह पुरूषों के लिए संघर्ष की एक खुली चुनौती देते हैं जिसके परिणामस्वरूप परिवार और समूह में ही पारस्परिक मतभेद अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं। पारिवारिक विघटन इसका स्वाभाविक परिणाम होता

है। बहुपति विवाह के कारण लडकियों की अपेक्षा लडकी का जन्म अधिक संख्या में होता है और इस प्रकार स्त्रियों का अनुपात पुरूषों से कम हो जाने के कारण यह प्रथा स्थाई रूप ले लेती है। इन्हीं सब दोषों का परिणाम है कि वर्तमान युग में सभ्यता के संपर्क में आने वाली कोई भी जनजाति बहुपति विवाह की प्रथा को अच्छा नहीं समझती।

3. समूह विवाह (Group Marriage) - समूह विवाह में, पुरूषों का एक समूह स्त्रियों के एक समूह से विवाह करता है, इस प्रकार समूह का प्रत्येक पुरूष प्रत्येक स्त्री का पति एवं समूह की प्रत्येक स्त्री, प्रत्येक पुरूष की पत्नि होती है। यह विवाह भी दो प्रकार का होता है- **समवृत्त एवं विवृत्त समूह विवाह**

वर्तमान में समूह विवाह प्रचलन में नहीं है 'यद्यपि **टोडा जनजाति** में बहुपति एवं बहुपत्नी विवाह के सम्मिश्रण को कुछ विद्वान समूह विवाह का ही प्रकार मानते हैं।

4. अधिमान्य विवाह (Preferential Marriage) - विवाह का एक अन्य स्वरूप अधिमान्य विवाह भी है। इस प्रकार के विवाह के लिए किसी एक समूह विशेष को प्राथमिकता (वरीयता) दी जाती है। अर्थात व्यक्ति को पूर्व से ही ज्ञात होता है कि उसे किस समूह से जीवन साथी प्राप्त होगा। इस प्रकार के विवाह को मुख्यतः तीन प्रकारों में बांटा जा सकता है-

1. सहोदर विवाह (Cousin Marriage) - भाई-भाई एवं भाई-बहिन तथा बहिन-बहिन की संतानों के बीच होने वाला विवाह सहोदर विवाह कहलाता है। इस प्रकार का विवाह मुस्लिम समुदाय में पाया जाता है। जम्मू-कश्मीर एवं राजस्थान की कुछ जनजातियों में भी इस प्रकार के विवाह का प्रचलन है।

2. देवर विवाह/भाभी विवाह (Levirate) - इस प्रकार के विवाह में मृतक व्यक्ति के छोटे भाई से उसकी पत्नी का विवाह होता है। भारतीय समाज की जाति संरचना में बहुत सी जातियों में इस प्रकार के विवाह प्रचलित हैं। इसके अतिरिक्त **गोंड, संथाल** एवं **खरिया** जनजाति में भी विवाह का यह स्वरूप प्रचलित है।

3. साली विवाह (Sororate) - जब किसी पुरूष की पत्नी का देहांत हो जाता है, तो उसकी पत्नी की बहिन से विवाह होता है। अपवाद स्वरूप पत्नी के जीवित रहते हुए भी उसकी बहिन से विवाह होता है, संतान प्राप्ति इसका प्रमुख कारण होता है। गोंड एवं खरिया जनजाति में विवाह का यह स्वरूप प्रचलित है।

4.2.6 विवाह संबंधी नियम

विवाह से संबंधित एक अन्य अवधारणा विवाह संबंधी नियम भी महत्वपूर्ण है। ये नियम निम्नलिखित इस प्रकार हैं-

1. **अंतर्विवाह (Endogamy) -** अंतर्विवाह से तात्पर्य है व्यक्ति अपने जीवन-साथी का चुनाव अपने ही समूह से करे। यह समूह अलग-अलग समाजों में अलग-अलग हो सकता है जैसे जाति, प्रजाति, समुदाय इत्यादि। हिंदू धर्म में अपनी ही जाति के अंदर विवाह करना अंतर्विवाह का उदाहरण है।

2. **बहिर्विवाह (Exogamy)** - बहिर्विवाह से तात्पर्य है कि एक व्यक्ति जिस समूह का सदस्य है उस समूह से बाहर विवाह करे। यह समूह भी अलग-अलग समाजों मे अलग-अलग हो सकता है। हिंदुओं में बहिर्विवाह के निम्नांकित स्वरूप हैं-

1. **गोत्र बहिर्विवाह (Clan Exogamy) -** हिंदू धर्म के अनुसार एक गोत्र के व्यक्ति आपस में विवाह नहीं कर सकते, एक गोत्र के स्त्री-पुरूष आपस में भाई-बहिन माने जाते हैं। यद्यपि हिंदू विवाह अधिनियम 1955 इससे प्रतिबंध समाप्त कर चुका है, फिर भी यह निषेध प्रचलन में है।
2. **सप्रवर बहिर्विवाह (Sapravar Exogamy) -** समान पूर्वज एवं समान ऋषियों को मानने वाले व्यक्ति स्वयं को एक ही प्रवर का सदस्य मानते हैं एवं एक प्रवर के व्यक्ति आपस में विवाह नहीं कर सकते हैं। यद्यपि हिंदू विवाह अधिनियम 1955 द्वारा इस पर से निषेध हटाया गया है।
3. **सपिण्ड बहिर्विवाह (Sapind Exogamy) -** सपिण्ड का तात्पर्य है एक ही मृत व्यक्ति को पिण्डदान देने वाले लोग या उसके रक्त कण से संबंधित लोग। **मिताक्षरा** के अनुसार वे सभी जो एक ही शरीर से पैदा हुए हैं सपिण्डी हैं। सपिण्ड बहिर्विवाह के अनुसार पिता की ओर से एवं माता की ओर से कई पीढ़ियों तक विवाह को निषिद्ध माना गया है। **बशिष्ट** ने पिता की ओर से आठ एवं माता की ओर से पांच पीढ़ियों तक तथा **गौतम** ने पिता की ओर से आठ तथा माता की ओर से छः पीढ़ियों तक आपस में विवाह को प्रतिबंधित माना है।

हिंदू विवाह अधिनियम 1955 ने सपिण्ड वहिर्विवाह को मान्यता प्रदान की है। इस अधिनियम ने भी माता एवं पिता दोनों ओर से तीन-तीन पीढियों के सदस्यों के सपिण्डियों में परस्पर विवाह को प्रतिबंधित किया है, परंतु यह भी प्रावधान किया है कि किसी समुदाय विशेष की परंपरा अथवा प्रथा यदि इसे निषिद्व नही मानती है तो एंसा विवाह वैद्व माना जाएगा।

4. **ग्राम बहिर्विवाह (Village Exogamy) -** हिंदू धर्म के कुछ समुदायों में ग्राम बहिर्विवाह भी प्रचलित रहा है। जैसे पंजाब, हरियाणा, एवं दिल्ली में उस गांव में भी विवाह वर्जित था, जिसकी सीमा स्वयं के गांव से लगी हो। यद्यपि वर्तमान में यह समाप्तप्राय है। कुछ जनजातीय समुदायों जैसे असम एवं **नागालैण्ड के नागाओं** में यह **खैल बहिर्विवाह** के नाम से प्रचलित है।
5. **टोटम बहिर्विवाह (Totem Exogamy)-** भी जनजातियों में प्रचलित है। अर्थात एक ही टोटम को मानने वाले आपस में विवाह नही करते।

3. अनुलोम विवाह (Hypogamy) - जब किसी उच्च सामाजिक समूह के पुरूष का विवाह निम्न सामाजिक समूह की स्त्री से होता है, तो इसे अनुलोम विवाह कहा जाता है। जैसे किसी उच्च जाति, उपजाति, वर्ण, गोत्र एवं कुल के पुरूष का निम्न जाति, उपजाति, वर्ण, गोत्र एवं कुल की महिला से विवाह। **के.एम.कपाड़िया** ने इस प्रकार के विवाह को प्रतिबंधित विवाह की संज्ञा दी है।

4. प्रतिलोम विवाह (Hypergamy) - इस प्रकार के विवाह में स्त्री उच्च सामाजिक समूह की एवं पुरूष निम्न सामाजिक समूह का होता है। जब उच्च जाति, उपजाति, वर्ण, गोत्र अथवा कुल की स्त्री का विवाह निम्न जाति, उपजाति, वर्ण, गोत्र अथवा कुल के पुरूष से होता है तो इसे प्रतिलोम विवाह कहते हैं। हिंदू शास्त्रों ने इस प्रकार के विवाह को निषिद्ध माना हैं। वर्तमान में प्रतिलोम विवाह की संख्या काफी कम रही है।

4.2.7 जनजातियों में जीवन-साथी चयन की पद्धतियाँ

जनजातीय संस्कृति एक समृद्ध संस्कृति है, जिसकी प्रकृति मौखिक एवं अनौपचारिक है। जनजातीय समुदायों की संस्कृति, भौगोलिक स्थिति एवं आर्थिक गतिविधियों को एक-दूसरे से पूर्णतः पृथक नहीं किया जा सकता अर्थात जहाँ एक तरफ संस्कृति में भौगोलिक अवस्थिति एवं अर्थोपार्जन के तौर तरीके सम्मिलित थे वहीं दूसरी तरफ यह संस्कृति उनके प्राकृतिक संसाधनों एवं आजीविका के साधनों का संवर्धन भी करती थी। इस प्रकार प्रत्येक जनजातीय समुदाय में जीवन-साथी चयन के तरीके अलग एवं विशेष रहे हैं, मध्य प्रदेश की **भील जनजाति** में प्रचलित **भगोरिया,** विवाह की एक पद्धति है। जैसे जनजातियों मे प्रमुख पद्धतियां निम्न प्रकार हैं-

(1). क्रय विवाह (Marriage by Purchase) - जनजातियों में प्रचलित विवाह का वह तरीका, जिसमें वर पक्ष को कन्या मूल्य (Bride Price) चुकाना होता है क्रय विवाह कहलाता है। यह भारत की लगभग सभी जनजातियों में पाया जाता है। विशेष रूप से **गोंड, भील, कूकी, ओरांव, हो, संथाल** तथा **नागा** जनजातियों में प्रचलित है। पश्चिमी मध्य प्रदेश **(अलीराजपुर एवं कुक्षी जिले) के भील, भिलाला बारेला तथा पटेलिया** समुदायों में यह आज भी बहुत अधिक प्रचलन में है।

(2). सेवा विवाह (Marriage by Service) - जब विवाह करने का इच्छुक पुरूष, लड़की के घर रहकर परिवार के कार्यों में सहयोग करता हैं एवं अपनी सेवा प्रदान करता है, तो इस प्रकार के विवाह के तरीके को सेवा विवाह कहा जाता है। **गोंड** जनजाति में **'सेवा'** प्रदान करने वाले व्यक्ति को **लमनई** एवं **बैगा जनजाति** में इसे **लमसेना** नाम से जाना जाता है।

(3). हरण विवाह (Marriage by Capture) - कुछ जनजातीय समुदायों में लड़की का हरण कर विवाह करने की परंपरा रही है। जैसे **गोंड, भील, बिरहोर, खरिया, नागा, मुण्ड़ा** आदि। **गोंड** जनजाति में हरण विवाह को **'पोसिओथुर'** नाम से जाना जाता है। कुछ समुदायों मे यह प्रतीकात्मक रूप से प्रचलित है, वास्तविक हरण विवाह प्रचलन में नहीं है।

(4). विनिमय विवाह (Marriage by Exchange/Negotiation) - इस प्रकार के विवाह में एक परिवार के लड़के एवं लडकी का विवाह दूसरे परिवार के लड़के एवं लड़की से होता है। **गोंड जनजाति** में इस तरीके के विवाह को **'दूध लौटावा'** कहा जाता है।

(5). पलायन विवाह (Ellopment Marriage) - इस तरीके को सहपलायन एवं परस्पर सहमति विवाह भी कहते हैं। जब लड़का एवं लड़की परस्पर सहमति से, भाग कर विवाह करते हैं तो इसे पलायन विवाह कहा

जाता है। **गौंड़, भील, हो** तथा **भील** जनजाति की उप-जनजातियों में प्रचलित है। **हो** जनजाति मे इसे **राजी-खुशी** विवाह के नाम से जाना है।

(6). हठ विवाह (Marriage by Intrusion) - जनजातियों में प्रचलित विवाह के तरीकों में यह भी एक प्रमुख तरीका है, जिसमें विवाह का इच्छुक लड़का अथवा लड़की, उस घर में जाकर रहने लगता है जिस घर की लड़की अथवा लड़के से उसे विवाह करना होता है। उस घर के लोग उसे निकाले भी तो वह हठ पूर्वक उस घर में निर्धारित समयावधि तक रहता एवं रहती है। निश्चित समय तक सफलता पूर्वक उस घर में रह जाने के बाद समुदाय उन दोनों का विवाह करा देता है। कभी-कभी घर के लोग यातना भी देते हैं। अलग-अलग समुदायों में हठपूर्वक रहने की अवधि अलग-अलग है। यह सामान्यतः **एक वर्ष** से **तीन वर्ष तक** होती है। यह **उरांव** एवं **हो जनजातियों** में प्रचलित है। **हो** जनजाति इसे **अनादर विवाह** एवं **उरांव** इसे **निर्बोलोक** कहते हैं।

(7). परीक्षा विवाह (Trial Marriage) - कुछ जनजातियों में यह तरीका, विवाह करने वाले युवक के साहस एवं शौर्य की परीक्षा हेतु प्रचलित है।। इसका एक आशय यह भी है कि विवाह करने वाला युवक, पत्नी की जिम्मेदारी निभाने एवं परिवार के संचालन में सक्षम है या नही। अलग-अलग समुदायों में परीक्षा के तरीके अलग-अलग होते है। **भील जनजाति** में प्रचलित **'गोल गधेड़ो'** इसी प्रकार का तरीका है। **नागा** जनजाति में इसे **सुइया-सुइया** कहते हैं।

(8). परिवीक्षा विवाह (Probation Marriage) - कुछ जनजातियों में विवाह का यह तरीका प्रचलित है, जिसमें विवाह करने के इच्छुक लड़का एवं लड़की विवाह पूर्व पति-पत्नी निर्वाह प्रारंभ कर देते हैं एवं बाद में विवाह कर लेते हैं या अलग हो जाते हैं। यह परिवीक्षा अवधि कुछ समुदायों में सुनिश्चित होती है, कुछ में सुनिश्चित नहीं होती है, जैसे की गोंड जनजाति में इस प्रकार के तरीके से साथ रहने वाले व्यक्ति कई बार अपने बच्चों के विवाह के साथ अपना विवाह करते हैं। मणिपुर की कूकी जनजाति में इसका विशेष रूप से प्रचलन है।

A. विवाह के संस्था का महत्व

विभिन्न समाजों में विवाह के रूप में चाहे कितनी भी भिन्नता क्यों न पायी जाती हो लेकिन एक संस्था के रूप में विवाह सर्वव्यापी हैं और अपने महत्व के कारण यह सभी समाजों की एक अनिवार्य विशेषता है। विवाह संस्थापक महत्व का इसके उद्देश्यों तथा कार्यों में निहित है जिसे बिंदुओ में देखा जा सकता है-

1. **पारिवारिक जीवन की स्थापना -** यदि हम प्रश्न करें कि विवाह की उत्पत्ति क्यों हुई तो हमें सरलतापूर्वक ज्ञात हो जाता है कि संस्था के रूप में विवाह का महत्व कितना सर्वव्यापी है। **बैकोफन** और **मॉर्गन** ने यह स्पवष्ट किया है कि आदिकाल में स्त्री-पुरूष के यौनिक संबंध बिल्कुल अनियंत्रित थे। तब ऐसे किसी भी नियम का अभाव था जिससे व्यक्तियों के जीवन को नियंत्रण में रखा जा सके।

इससे न केवल संघर्ष अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गए बल्कि बच्चे के पितृत्व का निर्धारण करना भी लगभग असम्भव था। इन्हीं परिस्थितियों में विकास की एक लम्बी प्रक्रिया के द्वारा विवाह जैसी संस्था की उत्पत्ति हुई तथा इसी के द्वारा व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों को व्यवस्थित किया जा सका। विवाह के द्वारा ही परिवार का निर्माण संभव हो पाता है और वैवाहिक संबंधियों के द्वारा ही नातेदारी व्यवस्था के अंतर्गत प्राथमिक समूहों का निर्माण होता है। इस प्रकार विवाह एक केन्द्रीय संस्था है। विवाह में होने वाला कोई भी परिवर्तन सामाजिक संगठन और दूसरी संस्थाओं की क्रियाशीलता को प्रभावित करता है।

2. **बच्चों को वैधता प्रदान करना -** एक संस्था के रूप में विवाह का सम्भवत: रूप सबसे महत्वपूर्ण कार्य बच्चों को वैध रूप प्रदान करना है। विवाह की अनुपस्थिति में यदि बच्चे के पितृत्व को ज्ञात न किया जा सके तो इससे बच्चों को समाज में एक सम्मानपूर्ण पद मिलने में ही कठिनाई नहीं होती बल्कि समूह के नैतिक नियम भी कमजोर पड़ जाते हैं। इससे यौन अनैतिकता में वृद्धि होने की सम्भावना रहती है। विवाह इस समस्या का समाधान करके बच्चों को वैध रूप प्रदान करता है और उन्हें एक दृढ़ पारिवारिक परंपरा से संबद्ध करता है। जिन समाजों में धार्मिक विश्वास तथा पवित्रता की धारणा का महत्व अधिक है वहां बच्चों की वैधता ही उनकी सामाजिक स्थिति का सबसे बड़ा आधार बन जाती है। इस प्रकार हमारे जैसे समाज में तो विवाह के बिना जन्म लेने वाले बच्चों का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है।
3. **सामाजिक संबंधों की सुदृढ़ता -** सामाजिक संबंधों की व्यवस्था को प्रभावित करने में भी विवाह संस्था का प्रमुख योगदान रहा है। वैवाहिक संबंधों की पृष्ठभूमि में ही बच्चा कुछ दूसरे व्यक्तियों से अपनी एकरूपता स्थापित करता है। इसका तात्पार्य है कि व्यक्ति को अपने रक्त संबंधियों, नातेदारों व दूसरे व्यक्तियों के बीच भेद करना सिखाती है। विवाह से संबंधित आदर्श-नियम ही व्यक्ति में उचित और अनुचित की धारणा का विकास करते हैं। उचित और अनुचित की यही धारणा बाद में समाज को एक नैतिक व्यवस्था में परिवर्तित कर देती है। यदि विवाह जैसी कोई संस्था समाज में न होती तो सम्भवत: परिवार का निर्माण न होता और यदि अस्थिर प्रकृति के परिवार बन भी जाते तो उनकी कामाचार से रक्षा करना लगभग असम्भव हो जाता। इस प्रकार सामाजिक संबंधों की व्यवस्था को दृढ़ बनाने अथवा दूसरे शब्दों में समाज का निर्माण करने में विवाह के महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसी आधार पर **हॉवेल** का कथन है कि विवाह का प्रमुख कार्य व्यक्तियों के संबंधों को उनके रक्त संबधियों और नातेदारों के प्रति परिभाषित करना तथा उन पर नियंत्रण रखना है।
4. **व्यक्ति का समाजीकरण -** व्यक्ति के समाजीकरण में भी विवाह संस्था अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह व्यक्ति को अपने से भिन्न विचार धाराए परंपरा और रहन-सहन के व्यक्तियों से अनुकूलन करना

सिखाती है। विवाह संस्था व्याक्तियों को व्यक्तिवादिता की संकीर्णता से बाहर निकालकर पारिवारिक कल्याथण की भावना को अधिक दृढ़ बनाती है। यह त्याग को बढ़ावा देती है और पारस्परिक कर्तव्य के प्रति निष्ठा उत्पन्न करती है। यही गुण एक मानव प्राणी को सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करते हैं।

5. **संस्कृति का संचरण -** विवाह संस्था का एक प्रमुख कार्य संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संचरित करने में सहायता देना और इस प्रकार संस्कृति को स्थायी बनाना है। विवाह की अनुपस्थिति में व्यक्ति के अनुभव पूर्णतया व्यक्तिगत होते हैं। विवाह के द्वारा एक वंश परंपराका निर्माण होता है और सांस्कृतिक विशेषताएँ पिता से उसके पुत्र को मिलने से यह लगातार आगामी पीढ़ी को संचरित होती रहती है। इस प्रकार विवाह केवल जैवकीय आधार पर ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को व्यवस्थित रखने में भी इसका महत्वपूर्ण योगदान है।
6. **यौन संबंधोंकी नियमबद्धता -** यौनिक संतुष्टि व्यक्ति की जैविकीय आवश्यकता है तथा विवाह के बिना इसे संस्थागत रूप से पूरा नहीं किया जा सकता। विवाह के द्वारा स्त्री व पुरूष के स्वतंत्र संबंधों की सम्भावना को ही कम नहीं किया जाता बल्कि बच्चों और उनके माता पिता के संबंध को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया जाता है। यही संबंध व्यक्तिगत तथा सामुदायिक जीवन को संगठित बनाते हैं और सांस्कृतिक विकास के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करते हैं। इस प्रकार विवाह केवल एक संस्था ही नहीं है बल्कि सभी सामाजिक संस्थाओं में इसका महत्व केंद्रीय है।

B. विवाह में आधुनिक परिवर्तन

सभी समाजों में आज विवाह संस्था नए परिवेश ग्रहण कर रही है। यह सच है कि कुछ समाजों में विवाह के रूप में होने वाला परिवर्तन अपेक्षाकृत कम है। जबकि कुछ समाजों में विवाह से संबंधित मान्यताएँ निषेध और आधारभूत सिद्धांत पूर्णतया बदल चुके हैं। वर्तमान युग में विवाह के सभी नए परिवेशों को **तीन भागों में विभाजित** किया जा सकता है। **विवाह का पहला परिवेश वह** है जो रोमांटिक प्रेम की आधुनिक सत्ता के कारण हमारे सामने आया है। जो सामाजिक वर्तमान शिक्षा और औद्योगीकरण का परिणाम है। विवाह का तीसरा स्वररूप वह है जो सामाजिक अधिनियमों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने के कारण व्यक्तियों को अपने विचारों में बराबर परिवर्तन करने की प्रेरणा दे रहा है। रोमांटिक प्रेम की आधुनिक सत्तान ने वैवाहिक संबंधोंकी स्थिरता को सबसे अधिक प्रभावित किया है। यदि हम भारतीय समाज का उदाहरण लें तो ज्ञात होगा कि यह स्थिति हमारे वैवाहिक और पारिवारिक जीवन को प्रभावित करने में सबसे अधिक महत्वपूर्ण रही है। रोमांटिक प्रेम एक विशेष विचारधारा है जो विवाह को एक संयोग न मानकर उसे स्त्री-पुरूष का सुविधापूर्ण बंधन मानती है। इस विचारधारा के कारण विवाह से पहले ही स्त्री और पुरूष एक दूसरे के घनिष्ठ संपर्क में आना बुरा नहीं समझते बल्कि कभी-कभी तो विवाह से पूर्व के संबंधों को सुखी पारिवारिक जीवन का आधार तक मान लिया जाता है। स्पष्ट है कि इस विचारधारा से प्रभावित विवाहों में जाति सम्प्रदाय

अथवा परिवार की कुलीनता आदि को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। कभी-कभी तो भिन्न धर्मों के व्यक्ति भी प्रेम संबंधों के कारण विवाह कर लेना अच्छा समझते हैं। इसका तात्पयर्य यह नहीं है कि रोमांस से प्रभावित विवाह अथवा दूसरे शब्दों में प्रेम विवाह को हम अनैतिक अथवा अनुचित कह दें। इससे इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि ऐसे विवाहों के कारण हमारी परम्परागत सांस्कृतिक विशेषताओं और सामाजिक मूल्यों के सामने गम्भीर समस्यात उत्पन्न हो जाती है। ऐसे विवाह व्यक्तिवादिता और एकांकी परिवार को प्रोत्सासहन देते हैं जिससे संयक्त परिवार व्यवस्था को बनाए रखना कठिन हो जाता है। प्रेम विवाह वास्तव में दो व्यक्तियों का संबंध है दो परिवारों का नहीं। वास्तविकता यह है कि प्रेम भावना अपने आप में एक उद्वेग है जिसमें तर्क और विवेक का अधिक महत्व नहीं होता। इस भावना से प्रभावित परिवार भी साधारणतया अधिक स्थायी जीवन व्यतीत नहीं कर पाते। इसका एक कारण तो यह है कि प्रेम विवाह के अंतर्गत दोनों पक्ष अपने-अपने अधिकारों का दावा अधिक करने हैं जबकि उनमें कर्तव्य का बोध बहुत कम होता है। दूसरा कारण यह है कि वैवाहिक जीवन की अपनी कुछ प्रमुख आवश्यकताएँ होती हैं जिनको पूरा करने के लिए पारस्परिक सहानुभूति और त्याय की आवश्यकता होती है। रोमांटिक प्रेम में इस प्रकार पारिवारिक त्याग कठिनता से ही पाया जाता है। यदि विभिन्न समाजों में सांख्यिकी एकत्रित की जाय तो मालूम होगा कि जिन समाजों में रोमांटिक प्रेम के द्वारा विवाह जितनी अधिक मात्रा में होते हैं वहॉं विवाह-विच्छेद की संख्या भी उतनी ही अधिक होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि रोमांटिक प्रेम के अन्तर्गत पति और पत्नी की स्थिति विवाह से पहले और विवाह के बाद बिल्कुल भिन्न-भिन्नी हो जाती है। इतनी भिन्न कि कभी-कभी इसका अनुमान लगाना भी कठिन होता है। स्वभाविक है कि इससे वैवाहिक संबंधों की स्थिरता ही कम नहीं होती बल्कि बच्चों पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

उपर्युक्तप विवेचन का तात्पर्य यह नहीं है कि प्रेम विवाह वैवाहिक संबंधों की स्थिरता की हमेशा प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं। वास्तविकता यह है कि ऐसे विवाहों के फलस्वपरूप पति और पत्नी को एक-दूसरे की भावनाओं को समझने और एक-दूसरे से अनुकूलन करने का सबसे अधिक अवसर मिलता है। साधारणतया ऐसे विवाहों में पति-पत्नी की योग्यता रूचि और आयु में अधिक अंतर नहीं होता। इसके फलस्वरूप समाज में वैवाहिक समस्याऍं पैदा नहीं हो पाती जिनका सामना हम पिछले सैकड़ों वर्षो से करते आ रहे हैं। इस दृष्टिकोण से रोमांटिक प्रेम से प्रभावित विवाह अक्सर वैवाहिक संबंधों की स्थिरता को बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध हुए हैं। शिक्षा और औद्योगीकरण के फलस्वरूप भी विवाह के रूप में आज क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। सर्वप्रथम अब कोई भी शिक्षित व्यक्ति विवाह को जन्म-जन्मांतर का एक अटूट धार्मिक बंधन नहीं समझता। आज जब कभी भी पति-पत्नि के बीच सहयोग पूर्णतया समाप्त हो जाता है तो विवाह-विच्छेद कर लेना अधार्मिक कार्य कहीं माना जाता। हमारे समाज में विवाह का प्रमुख उद्देश्य धार्मिक दायित्वों को पूरा करना अथवा पुत्र प्राप्ति आदि करना नहीं रह गया है। इसके अतिरिक्त सामाजिक जीवन में यज्ञों श्राद्ध तथा तर्पण जैसी क्रियाओं के प्रति उदासीनता बढ़ने के कारण भी विवाह से संबंधित परंपरागत मनोवृत्ति बहुत तेजी

से बदल रही है। शिक्षा संस्थाओं में सह-शिक्षा में वृद्धि होने तथा मनोवृत्तियों में परिवर्तन हो जाने से अंतरजातीय विवाहों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। वास्तविकता यह है कि हमारे समाज में स्वतंत्रता के बाद बनने वाले सामाजिक विधानों ने भी विवाह के रूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। इन विधानों के कारण केवल एक विवाह को ही मान्यता दी गयी तथा विधवाओं की सभी निर्योग्यताओं तथा जाति संबंधी बंधनों को कानून के द्वारा समाप्त कर दिया गया है। सामाजिक विधानों के सामने गोत्र, प्रवर अथवा सपिण्ड का कोई विशेष महत्व नहीं है। इन सब परिस्थितियों के फलस्वरूप विवाह से संबंधितपुरानी समस्या जरूर समाप्ति हो गयी है। लेकिन आज की सबसे बड़ी समस्या यह है कि विवाह का धीरे-धीरे व्यापारीकरण हो रहा है। इस व्यापारीकरण का स्पष्ट रूप हमें दहेज प्रथा की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के रूप में देखने को मिल रहा है। इन सब परिवर्तनों को देखते हुए हम यह सम्भावना कर सकते हैं कि भविष्य में विवाह के रूप में और भी अधिक क्रांतिकारी परिवर्तन हो जाएंगे।

4.2.8 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत हमने **'विवाह'** नामक सामाजिक संस्था की अवधारणा को विस्तार से समझा। विवाह की परिभाषा एवं उद्देश्य जाने तथा विवाह की उत्पत्ति संबंधी प्रमुख सिद्धांतो को समझा। विवाह के प्रकारों (स्वरूप) एवं विवाह संबंधी नियमों पर भी इस इकाई में विस्तार से चर्चा की गई है। जनजातियों में विवाह के तरीकों (पद्धतियों) को उनके सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में समझने का प्रयास किया गया है।

4.2.9 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विवाह को परिभाषित कीजिए।
2. विवाह के उद्देश्य लिखिए।
3. विवाह की उत्पत्ति से संबंधित प्रमुख सिद्धांतो के नाम बताइए।
4. विवाह की उत्पत्ति के एक विवाह सिद्धांत का वर्णन कीजिए।
5. मॉर्गन के संदर्भ में विवाह के उद्विकासीय सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. **'एक विवाह'** से आशय स्पष्ट कीजिए।
2. बहुविवाह की व्याख्या कीजिए एवं इसके उप प्रकारों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
3. अंतर्विवाह एवं बहिर्विवाह की अवधारणा का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. जनजातियों में विवाह के तरीको का विस्तार से वर्णन कीजिए।
5. परीक्षा विवाह किन-किन जनजातियों में प्रचलित है? स्पष्ट कीजिए।
6. विनिमय विवाह को गोंड जनजाति के उदाहरण के साथ स्पष्ट कीजिए।

4.2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. देसाई, ए.आर. (1960). ट्राइब्स इन ट्रंजिसन. सेमिनार 2014: 19-24
2. दुबे, एस.सी. (1960). मानव और संस्कृति. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
3. एल्विन, वैरियर. (1944). द एबोर्जिनियस. बॉम्बे: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
4. घूरिए, जी.एस. (1963). द शेड्यूल ट्राइब्स. बॉम्बे: पॉपुलर प्रकाशन.
5. मजूमदार, डी.एन. एवं मदान, टी.एन. (1956). एंन इंटरोड्कशन टू सोशल एनथ्रोपोलॉजी. बॉम्बे: एशियन पब्लिशिंग हाऊस.
6. मजूमदार, डी.एन. (1944). रसेस एण्ड कल्चरस ऑफ इंडिया. दिल्ली: एशियन पब्लिशिंग हाऊस.
7. रिजले, एच.एच. (1903). सेंसेस ऑफ इंडिया रिपोर्ट. शिमला: गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रेस.
8. साह, बी.एन. (1998). अप्रोच टू ट्राइबल वेल्फेयर इन पोस्ट इंडेपेंडेन्स एरा एंथ्रोपोलॉजिस्ट. Vol.25, No.1, pp. 73-81.
9. सिंह, के.एस. (1994). द श्वेड्यूल ट्राइब्स. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
10. श्रीनिवास, एम.एन. (1952). रिलीजन एण्ड सोसाइटी एमंग द कुर्ज ऑफ साउथ इंडिया. बॉम्बे: एशियन पब्लिशिंग हाऊस.
11. श्रीनिवास, एम.एन. (1966). सोशियल चेंज इन मॉडर्न इंडिया. बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ केलिफोर्निया प्रेस.
12. टायलर, एड.बी. (1881). एंथ्रोपोलॉजी: एन इंटरोड्कशन टू द स्टडी ऑफ मैन एण्ड सिविलाइजेशन. लंदन: मैकमिलन.
13. टायलर, एड.बी. (1920). प्रीमिटिव कल्चर (6th Edition). लंदन: जॉन मैरी.
14. विद्यार्थी. एल.पी. एवं विनय, कु. राय. (1976). द ट्राइबल कल्चर ऑफ इंडिया. नई दिल्ली: कान्सैप्ट पब्लिशिंग कंपनी.
15. Xaxa, Virginius (2008): State, Society and Tribes: Issues in Post-colonial India, New Delhi: Pearson Education India.
16. Xaxa, Virginius (2014): “Report of High Level Committee on Socio-economic, Health and Educational Status of Tribal Communities of India”, Ministry of Tribal Affairs, New Delhi: Government of India.

इकाई: 3 भारत की जनजातियां: भील, गोंड, संथाल, थारू, खासी, गारो, जैंतिया एवं नागा

इकाई की रूपरेखा

4.3.0 उद्देश्य

4.3.1 प्रस्तावना

4.3.2 भील जनजाति

4.3.3 गोंड जनजाति

4.3.4 संथाल जनजाति

4.3.5 थारू जनजाति

4.3.6 खासी जनजाति

4.3.7 गारो जनजाति

4.3.8 जैंतिया जनजाति

4.3.9 नागा जनजाति

4.3.10 सारांश

4.3.11 बोध प्रश्न

4.3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

- भारत की कुछ जनजातियों से भली-भांति परिचित हो सकेंगे।
- भील जनजाति की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना को समझ पाएगे।
- गोंड जनजाति के सामुदायिक, सामाजिक संगठन से परिचित होंगे।
- संथाल जनजाति को जान पाएंगे।
- थारू जनजाति को समझ पाएंगे।
- खासी जनजाति को समझ पाएंगे।
- गारो जनजाति को समझ पाएंगे।
- जयंतिका एवं नागा जनजाति को समझ पाएंगे।

4.3.1 प्रस्तावना

भारत, विविधता प्रधान देश है। हमारे सामाजिक- सांस्कृतिक, भौगोलिक परिदृश्य में तो पर्याप्त भिन्नता है ही, साथ ही "जनजातीय परिदृश्य" भी व्यापक एवं विविधतापूर्ण है। एक तरफ हमारे यहाँ जनजातियों की संख्या अधिक है, अर्थात बहुत से जनजातीय समुदाय हैं, तो दूसरी तरफ भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर एक ही जनजाति में भिन्नता दिखाई देती है, जैसे मध्य भारत की गोंड जनजाति एवं दक्षिण भारत के गोंड समुदाय में भिन्नता है। इसके अतिरिक्त उत्तर-पूर्व की जनजातियां जैसे **खासी, गारो, नागा, जयंतिका** इत्यादि मध्य भारत की जनजातियां जैसे **गोंड, भील, बैगा, भारिया** इत्यादि एवं दक्षिण की जनजातियां जैसे **नाचा, टोडा** इत्यादि के बीच क्षेत्र के आधार पर विविधता है।

इस प्रकार भारत में जनजातीय समुदाय की विविधता, जहाँ एक ओर उनसे संबंधित अध्ययनों को विस्तार देती है, वहीं दूसरी ओर अलग-अलग समुदायों के लिए विशेष अध्ययनों की आवश्यकता को इंगित करती है।

4.3.2 भील जनजाति

भील जनजाति की प्रमुख उप-जनजातियां (Sub group) निम्न प्रकार हैं- गमेटिया, कलारिया, माया भील, डूंगरी गयसिया, भिलाला, मावची, तड़वी, वसावे, बेरेलिया, मीना, पटेलिया।

भारत की दूसरी बड़ी जनजाति भील, पूरे पश्चिमी भारत में फैली हुई है, परंतु इसका मुख्य सकेंद्रण दक्षिणी राजस्थान, पश्चिमी मध्य प्रदेश, गुजरात एवं उत्तरी महाराष्ट्र में है। भील जनजाति के सदस्य त्रिपुरा में भी निवास करते हैं, जो कि चाय के बगानों में, अप्रवासी श्रमिकों की तरह काम करते हैं। संस्कृत साहित्य में 'भील' शब्द का अर्थ है भेदना या बेधना। द्रविड़ियन शब्द 'वील' का शाब्दिक अर्थ है धनुष अथवा धनुष एवं तीर धारण करने वाला व्यक्ति। भील जनजाति के लोग आपस में '**भीली बोली**' में संवाद करते हैं जो **'इण्डो- आर्यन'** भाषा परिवार की बोली है। यद्यपि वे दूसरी क्षेत्रीय बोली एवं भाषा भी बोलते हैं, जैसे राजस्थानी, गुजराती, मराठी, हिंदी आदि।

भील जनजाति की उत्पत्ति से संबंधित विद्धानों में मतभेद है। **टॉड (1881)** के अनुसार भील अरावली पर्वत श्रृंखला के मूल निवासी हैं। यह जनजाति आज भी इसी क्षेत्र में ज्यादा सकेंद्रित है। **रसेल** एवं **हीरालाल (1916)** के अनुसार "भील" राजस्थान, गुजरात एवं मध्य प्रदेश के कुछ हिस्सों में शासन करते थे **(कुषलगढ़, बांसबाड़ा, कोटा, सगबुरा, रेबाकांता इत्यादि)** जिनके स्थान पर राजपूतों ने अपने राज्य स्थापित किया। भील एवं राजपूतों में संघर्ष एवं सहयोग के उदाहण इतिहास में मिलते हैं। महाराणा प्रताप को भीलों के सहयोग के सर्वाधिक उदाहण मिलते है। इसके बदले राजपूत शासक भी उन्हें सहयोग एवं सम्मानित करते थे। मेवाड़ के राज्य चिन्ह में, एक तरफ भील कबीले के मुखिया **(भीलू रागा)** एवं दूसरे तरफ महराणा प्रताप तथा मध्य में चित्तौड़ के किला को दर्शाया गया है। बहुत से राजपूत राज्यों के, राजतिलक समारोह में

भी, भील महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे, उदयपुर, कुषलगढ़, राजपीपला इत्यादि राज्यों में राजा के राजतिलक में, भील मुखिया के अंगूठे के रक्त से तिलक लगाया जाता था। राजपूत शासक जनजातीय कबीलों के मुखिया (गमेटी) का चुनाव करते थे, भीलों के बीच भी राजनैतिक रुप से राजपूत शासकों का महत्वपूर्ण हस्तक्षेप था। इस प्रकार राजपूतों एवं भीलों के प्रगाढ़ संबंधों का हस्तक्षेप मिलता है।

भील जनजाति पर हुए जैव-मानव वैज्ञानिक अध्ययन स्पष्ट करते हैं कि भील सामान्यतः छोटे, एवं मध्यम कद के होते हैं, इनके चेहरे का आकार गोल अथवा चपटा होता है तथा नाक चपटी होती है। भील जनजाति को उसके क्षेत्र, नातेदारी, संस्कृति, एवं धर्म के आधार पर एक विशेष सामाजिक समूह माना जाता है। भील में सामान्य तौर एकल (केंन्द्रीय परिवार) होते हैं। परंतु ये बहुपत्नी विवाह वाले परिवार होते हैं। विवाह, ज्यादातर एक विवाही ही होते हैं, परंतु बहुपत्नी विवाह भी प्रचलित हैं। विवाह में वधू मूल्य (दापा) का प्रचलन हैं।

रक्त संबंधो पर आधारित नातेदारी से जुड़े साथियों का संगठन **"कुटम"** कहलाता है, एक कुटम के में जन्म, विवाह, मृत्यु इत्यादि में एक-दूसरे की सहायता करते हैं। भील परिवार समान गोत्र वाले एक टोले (मोहल्ले) में रहते हैं, जिसे फलिया कहा जाता है। ये खेड़ा वहिर्विवाह के नियम को मानते हैं, अर्थात एक फलिया के अदंर व्यक्ति विवाह नहीं करते। दूसरा बड़ा क्षेत्रीय संगठन **"पाल"** कहलाता है, जो कुछ फलिया के संगठन से बनता है। सामान्यतः पाल की प्रकृति बहु गोत्री है, इनमें अंतर्विवाह हो सकता है। सामाजिक अनुशस्ति, गोत्र, टोटम एवं टैबू आदि के आधार पर ये सामाजिक समग्रता एवं एकता (Intregration & Solidarity) का अनुभव करते हैं।

पाल की परंपराओं की अधिक जानकारी रखने वाले (Pal dwellers) पलिया भील कहलाते हैं, पाल के बाहर कलिया भील कहलाते हैं। पलिया भील सामाजिक रुप से स्वरूप को, कलिया भील से श्रेष्ठ समझते है, एवं उजले भील तथा कलिया भील को मैसे भील कहते हैं। पालिया एवं कलिया भील अपने-अपने समूह में अंतर्विवाह का पालन करते हैं। सामाजिक-राजनैतिक रुप से समुदाय में जो महत्वपूर्ण प्रस्थिति एवं भूमिका है वे हैं **गमेटी** (गांव का प्रमुख), **भगत** (धार्मिक क्रियाकलाप कराने वाला) प्रमुख है।

गमेटी समुदाय का नेता, निर्देशक एवं दार्शनिक होता है। भील समुदाय में, अलग से ग्राम परिषद का संगठन नहीं किया जाता, बल्कि पूरे गांव के अंदर किसी विवाद पर गमेटी निर्णय लेता है, जिसमें वह गांव के बुर्जुगों के विचार भी लेता है। किसी धार्मिक मामले में वह गांव के **भगत (Priest) ओझा, (Medicinal man)** एवं **भोपा (Witch– Finder)** के साथ विचार-विमर्श कर निर्णय लेता है। सामान्य रुप से भोपा, अलौकिक शक्तियों के जानकार के रुप में स्वंय को श्रेष्ठ समझता है।

4.3.3 गोंड जनजाति

गोंड जनजाति की, उप-जनजातियां इस प्रकार हैं- अरख, आरख, अगारिया, असुर, बड़ी मारिया, छोटी मारिया, भटोला, भीमा, भुता, कोइली, भुती, भार, बिसोनहारन, मारिया, दंडायी मारिया, धुरु, धुर्वा, डोरला, गायकी, गट्टा, गावारी, हिल मारिया, कंद्र, कलंगा, खाटोला, कोइतार, कोया, खिरवार, खैरवार, कुचा मारिया, कुचाकी मारिया, मड़िया, माना, मानेवार, मोंधया, मुड़िया, मुरिया, नगारची, नागवंषी, ओझा, राज, सोंझारी, झारेका, ठाटिया, ठोटया, डारोई हैं।

गोंड, जनजाति, भारत की जनजातीय संरचना में प्रमुख स्थान रखती है। गोंड जनजाति ग्राविड़ियन परिवार की जनजाति है। मध्यकाल में, मध्य भारत के गढ़ा (जबलपुर) को गोंड शासकों की राजधानी के तौर पर उल्लेख मिलता है। गोंड, उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर के आदिलाबांद से लेकर आंध्र प्रदेश के तेलगांना क्षेत्र तक फैले हुए हैं। अलग-अलग स्थानों पर इनकी अलग-अलग उप जनजातियों की बहुलता है। जैसे मण्डला के गोंड, बस्तर के मुरिया एवं मारिया, आदिलाबाद के राजगोंड, बारंगल के कोयास इत्यादि।

वंशानुगत आधार पर गोंड कुल एवं वंश परंपरा के आधार पर वर्गीकृत होते हैं। गोंड जनजाति, संख्यात्मक आधार पर एक प्रमुख जनजाति तो है ही, साथ ही यह बहुत बड़े क्षेत्र तक निवासरत जनजाति भी है, उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक इस जनजाति का सकेंद्रण है। क्षेत्र के अनुसार इनके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में भिन्नता भी दिखाई देती है, जैसे- परिवार, विवाह, नातेदारी एवं धार्मिक गतिविधियों में भिन्नता। जैसे दक्षिण भारत के गोंड, अन्य समुदायों की तरह पुनर्विवाह को अनुमति देते हैं, पर वे देवर- भाभी विवाह (Levirate Marriage) की अनुमति नहीं देते, परंतु उत्तर भारत के गोंड न सिर्फ इसकी अनुमति देते हैं, बल्कि इसको प्राथमिकता देते हैं। सामान्यतः ये एक विवाही समुदाय हैं, परंतु परंपरागत आधार पर इनमें बहुविवाह, प्रायः (बहुपत्नी विवाह) भी पाया जाता है। परिवार का स्वरूप एकल परिवार का है, विवाह के पश्चात युवक अपना अलग परिवार बनाता है, जो प्रायः मूल परिवार के आस- पास ही घर बनाकर रहता है।

गोंड, समुदाय की बोली “गोंडी” है, जो द्रविड़ियन भाषा परिवार की बोली है। ये आपस में गोंडी में वार्तालाप करते हैं, परंतु वर्तमान में ये हिंदी एवं अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का भी प्रयोग करते हैं। गोंड जनजाति के परंपरागत परिधानों में, महिलाओं की गहरे रंग की साड़ी, एवं पुरुषों के सफेद धोती एवं रंगीन कुर्ते बहुत आकर्षक परिधान हैं, परंतु आधुनिकीकरण एवं अन्य प्रक्रियाओं के परिणाम स्वरूप अन्य समुदायों की तरह इनके बीच भी अन्य परिधान लोकप्रिय हैं।

ये गैर-शाकाहारी समुदाय हैं, अर्थात इनके भोजन में मछली, व मांस प्रमुख स्थान रखते हैं, अनाज में चावल एवं ज्वार परंपरागत रूप से प्रमुख स्थान रखते रहे हैं, परंतु वर्तमान में लोक वितरण प्रणाली से मिलने वाले अनाज तथा अन्य खाघ सामग्री भी इनके खाघ सामग्री में शामिल है। वैसे जनजातीय धर्म प्रकृतिवाद पर आधारित है, परंतु गोंड, हिंदू धर्म की धार्मिक गतिविधियों का भी अनुसरण करते हैं। आज इनके घरों मे शिव, एवं देवी आराधना, सत्संग, गुरूदीक्षा जैसी प्रक्रियाएँ भी देखी जा सकती है।

गोंड, जनजाति की अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है, वे मुख्यतः कृषक हैं, परंतु इसके अतिरिक्त मजदूरी, छोटे-मोटे व्यवसाय (जैसे किराना दुकान चलाना, ढाबों/होटलों में काम करना) एवं नौकरी भी इनकी अर्थव्यवस्था में शामिल है। पशुपालन भी इनकी आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

गोंड जनजाति, में परंपरागत रूप से उनकी पंचायत व्यवस्था होती है, प्रत्येक उप-समुदाय की अपनी परंपरागत पंचायत व्यवस्था होती है, जिसका प्रमुख मुखिया होता है एवं कुछ व्यक्ति उसके सहयोगी होते हैं। इसके अतिरिक्त भारत शासन की पंचायतीराज व्यवस्था ने इनको राजनैतिक सहभागिता को सुनिश्चित किया है।

गोंड जनजाति की अपनी समृद्ध संस्कृति है जिसमें कला, कारीगरी, गोदना, दीवार एवं फर्स पर कलाकृतियों का निर्माण, मिट्टी के बर्तन एवं बांस के बास्केट आदि का निर्माण, बाद्य यंत्रों का निर्माण, नृत्य एवं लोकगीत एवं संगीत प्रमुख हैं।

4.3.4 संथाल जनजाति

भारत की तीसरी बड़ी जनजाति संथाल है, यह बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा एवं त्रिपुरा में निवासरत हैं। असम, में भी यह जनजाति निवास करती है, परंतु असम के संथाल अनुसूचित जनजाति नही हैं। संथाल स्वंय को होर कहते हैं, जिसका मतलब होता है मनुष्य। संथाल के अन्य नाम भी प्रचलित हैं- जैसे साओन्वार, खैरवार, साफाहोर, बुना, मंडल, मॉझी, परधान एवं सरदार इत्यादि इनके उपनाम है ।

बिहार एवं **झारखण्ड** में संथाल, जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ी जनजाति है। यहां संथाल मोटे तोर पर दो समूहों में विभक्त हैं, प्रथम देसावली संथाल एवं दूसरा खरवार। देसावली संथाल अपने संथाली विचारधारा को मूलरूप से स्वीकार करता है जबकि खरवार सुधारवादी पंथ के समर्थक हैं।

ज्ञात इतिहास के अनुसार संथाल का मूल निवास छोटा नागपुर के पठार एवं दामोदर नदी के आस-पास का क्षेत्र था। सन् 1770 के अकाल के बाद ये समुदाय अपने वर्तमान निवास वीरभूमि में आए, जो आगे चलकर कुछ जिलों को मिलाकर संथाल परगना के रूप में स्थापित हुआ। वर्तमान में इनकी ज्यादातर संख्या संथाल परगना, धनबाद, बोकारो, कोडरमा पूर्वी सिंहभूम, पश्चिमी सिंहभूम, हजारी बाग, चतरा, धनबाद भागलपुर एवं पूर्णिया जिलों में निवासरत है।

प्रजातीय दृष्टि से **'संथाल' प्रोटोऑस्ट्रोलॉयड** प्रजाति के सदस्य हैं। संथाल 12 पितृवंशीय गोत्रों में विभक्त हैं। ये गोत्र इस प्रकार हैं-

मुरमू, हंसदा, सोरेम, किसकू, बासरे, हेमरम, पासके, मेडुआ, मरांडी, चौड़े, पोरिया एवं टुडू। प्रत्येक गोत्र का अपना प्रतीक या टोटेम है, जिसको हानि पहुंचना वर्जित है। ये सभी गोत्र बहिर्विवाही गोत्र हैं अर्थात ये एक ही गोत्र में विवाह नहीं करते, गोत्र से बाहर विवाह करते हैं।

झारखंड एवं बिहार के संथाल सुव्यवस्थित गांवों में रहते हैं। अर्थात इनके गांवों की संरचना एवं विन्यास सुस्पष्ट एवं सुंदर होता है। सामूहिक पूजा स्थल मांझीथाना गांव के बीच में स्थित होता है। जहां पर इनके देवता वोंगा की पूजा होती है। मांझीथान में ही गांव के मुखिया मांझी का घर होता है। गांव के बाहर की तरफ जोहर थान नामक स्थान होता है जिसमें इनके सर्वोच्च देवता मरांगवरू की पूजा होती है।

संथाल भी अन्य जनजातीय समुदायों की भांति प्रकृति के पूजक हैं एवं प्रकृति से गहरा लगाव रखते हैं। इनकी संस्कृति पर्यावरण का संरक्षण एवं समवर्धन करने वाली संस्कृति है। संथाल जनजाति के प्रमुख त्यौहारों में बहा, सुहराई, कर्मा, वंधना, सहरूल, एंरोक, मागसिम, हरीधर सिम इत्यादि हैं। संथाली दंत कथाओं के अनुसार समस्त संथाल दो श्रेणी में बंटा है- **प्रथम होर** अथवा संथाल और **दूसरा दीकू।** होर संथाल समुदाय है और दीकू का तात्पर्य है जो संथाल नहीं है। इस प्रकार संथाल समुदाय के लिए वे सभी व्यक्ति जो संथाल समुदाय के नहीं हैं दीकू कहलाते हैं।

पारंपरिक रूप से संथाल जनजाति की अपनी एक सुदृढ़ राजनैतिक, प्रशासनिक एवं न्यायिक व्यवस्था होती है। गांव के स्तर पर ग्राम पंचायत होती है। जिसका प्रमुख **मांझी** होता है। गांव के स्तर पर प्रशासनिक एवं न्यायिक व्यवस्था की देख-रेख मांझी करता है। गांव में किसी भी प्रकार की समस्या अपराध इत्यादि के मामले में मांझी संबंधित व्यक्ति या परिवार को दण्ड देता है। यह दण्ड सामाजिक, आर्थिक अथवा दोनों प्रकार का हो सकता है। **"परानिक"** मांझी को सहायता करता है। यह गांव के स्तर पर दूसरा महत्वपूर्ण पद है। इसी प्रकार गांव के स्तर पर एक तीसरा पद भी है जिसको **जोग मांझी** कहते हैं।

जोग मांझी का प्रमुख कार्य युवक-युवतियों के विवाह संबंध तय करवाना एवं विवाह संपन्न कराना होता है। गांव के स्तर पर ही एक अन्य पद गोढ़ेत होता है। गोढ़ेत का प्रमुख कार्य सूचनाओं को एकत्र कर मांझी तक पहुँचना होता है। गांव के स्तर से ऊपर का संगठन, 5-8 गांव का संगठन होता है। जिसका प्रमुख **देश मांझी** कहलाता है। जब कभी दो या दो से अधिक गांवों के बीच विवाद की स्थिति होती है। तब **देश मांझी** मामले की सुनवाई करता एवं निर्णय देता है।

15 से 20 गांव का संगठन **परगना** कहलाता है और इसके मुखिया को **परगनेत** कहा जाता है। परगना संथाल समुदाय की सर्वोच्च इकाई होती है। इसके द्वारा व्यक्तियों को अपराधी मानने पर शारीरिक, आर्थिक एवं सामाजिक दण्ड दिया जाता है।

संथाल जनजाति में परिवार, पितृसत्तात्मक एवं पितृवंशीय परिवार होते हैं। इन परिवारों का स्वरूप एकल परिवार का होता है। इनके बीच विवाह की बहुत सी पद्धतियां प्रचलित हैं। जिनमें ज्यादातर **गोलट विवाह, सेवा विवाह, राजी-खुशी** विवाह एवं **अपहरण** विवाह का अनुसरण किया जाता है। संथाल जनजति के लोग आपसी वार्तालाप संथाली भाषा में करते हैं। जिसकी अपनी एक लिपि **ओलचिकीलिपि** भी है। गैर-संथाली समुदायों के साथ वार्तालाप में यह **हिंदी** एवं **बंगाली** भाषा का प्रयोग करते हैं तथा देवनागिरी एवं बंगाली लिपि का प्रयोग करते हैं।

बंगाल में संथाल जनजाति का सकेन्द्रण ज्यादातर मिदनापुर जिले में है। यहां के संथाल भी आपस में संथाली भाषा का प्रयोग करते हैं तथा दूसरे समुदायों के साथ बंगाली भाषा का प्रयोग करते हैं। लिपि के रूप में देवनागिरी, बांग्ला एवं **ओलचिकी लिपि** का प्रयोग करते हैं। यहां के संथाल अपने शरीर में (हाथ, गर्दन व पैर) गोदना व टैटू का बहुत अधिक प्रयोग करते हैं।

उड़ीसा में संथाल **मांझी नाम** से जाने जाते हैं एवं इनकी अधिकांश जनसंख्या बालासोर, क्योंझर एवं मयूरगंज जिलों में निवास करती है। यहाँ संथाली के साथ-साथ उड़िया भी बोलते हैं जो इंडो-आर्यन भाषा है। ये लोग ज्यादातर उड़िया-लिपि का प्रयोग करते हैं। यहाँ पर संथाल मुख्यतः कृषि कार्य एवं श्रमिक तथा उद्योगों में काम करते हैं।

त्रिपुरा में संथाल जनजाति ने अप्रवासी बागान श्रमिकों के रूप मे 1916 से रहना आरंभ किया, जब वहाँ पर चाय उद्योग की स्थापना हुई। यहां के संथाल, संथाली एवं बंगाली भाषा का प्रयोग करते हैं तथा लिपि के रूप में बांग्ला लिपि का प्रयोग करते हैं। यहाँ के संथाल समुदाय के ज्यादातर व्यक्ति चाय बागानों में श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं, इसके अतिरिक्त ईंट-भट्टों एवं आवास निर्माण कार्यों में भी ये श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं।

जनजातीय भारत में संथाल ऐसी प्रथम जनजाति है, जिसने व्यापक पैमाने पर सुधार आंदोलन, कृषक आंदोलन एवं ब्रिटिश प्रशासन के विरूद्ध आंदोलन में हिस्सा लिया। खरवार आंदोलन संथाल समुदाय के द्वारा किया जाने वाला एक बड़ा आंदोलन था जो आगे चलकर स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा बना।

4.3.5 थारू जनजाति

थारू जनजाति मुख्यतः उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश बिहार एवं नेपाल के तराई वाले क्षेत्रों में निवास करती है। इसका संकेंद्रण मुख्यतः **उत्तराखंड के कुमाउ जोन** में है यह उत्तराखंड की दूसरी बडी जनजाति एवं कुमाउ जोन की सबसे बडी जनजाति है। उत्तराखंड के उधमसिंह नगर, खटीमा, किच्छा, नानकमत्ता एवं सितारगंज जिलो में यह जनजाति निवास करती है। उत्तर प्रदेश के लखीमपुरखीरी एवं बहराईच में इसका निवास स्थान है। इसी प्रकार नेपाल के तराई वाले क्षेत्र में जैसे दरभंगा जिले में थारू जनजाति निवास करती है। प्रजातिय दृष्टिकोण से यह जनजाति **मंगोलॉयड** प्रजाति के अंर्तगत आती है। थारू अपनी उत्पत्ति **कीरात वंश** से मानते हैं। इस समुदाय के लोग अपना मूल निवास स्थान थार के मरूस्थल एवं स्वयं को **महाराणा प्रताप के वंशज** मानते है।

थारू का शाब्दिक अर्थ होता है **"ठहराव"** अर्थात प्रवास न करने की प्रवृत्ति। इस समुदाय के लोगों का मानना है कि जब सोलहवी शताब्दी में अकबर एवं महाराणा प्रताप के बीच हल्दी घाटी का युद्ध हुआ तब उस युद्ध में बडी संख्या में महाराणा प्रताप के सैनिक शहीद हुए। इन सैनिकों की पत्नियॉ अपने कुछ मातहतों के साथ कुमाउ जोन एवं लखीमपुरखीरी में आकर निवास करने लगी। तबसे इन्होने अपना निवास स्थान नहीं

बदला है। थारू **मातृसत्तात्मक** परिवारों का समुदाय है। यह समुदाय **26 गोत्र समूहों** में विभक्त हैं इनके प्रमुख गोत्र दानावारीया, नवालपुरिया, मर्चाहे, कुपालया, धाकेट, बतार, धीमार, कुचिला, परधान एवं बोक्सा है।

समाजिक संस्तरण के आधार पर यह समुदाय तीन समूहो में विभक्त है-

1. राणा
2. डगोरा/डगुरा
3. कथेरिया/मलबड़िया

थारू जनजाति की अपनी कोई विशिष्ट भाषा नहीं है। ये बोलचाल में गढवाली कुमाउनी, भोजपुरी, अवधी एवं नेपाली भाषा का प्रयोग करते हैं। लिपि के रूप में देवनागरी लिपि का प्रयोग करते हैं इस समुदाय के पारंपरिक पहनावे में घोती कुर्ता एवं लहंगा ओढनी प्रमुख है। इस समुदाय के महिला एवं पुरूष दोनो ही गोदना या टैटू का व्यापक प्रयोग करते हैं। टैटू इनकी वंशावली का भी प्रतीक है, इनके आवास खेतों के निकट बनाए जाते है। ये कच्चे एवं पक्के दोनो प्रकार के होते हैं। 20 से 30 धरों का एक कुनबा प्रायःएक स्थान पर रहता है। इन आवासों के बीच में अनिवार्यतः एक मंदिर होता है। थारू महिलाएं अपने आवास की दीवारों पर चित्रकारी करती है। दीवारों पर चित्रकारी के लिए भी यह समुदाय जाना जाता है। थारू जनजाति का प्रमुख भोजन **चावल व मछली** है। चावल से एक विशेष प्रकार की मदिरा जाड़ भी है जो इनके भोजन का अभिन्न हिस्सा है। थारू संयुक्त परिवार में विश्वाश रखते हैं प्रायः तीन पीढीयों के सदस्य एक साथ निवास करते हैं। एतेहासिक रूप से थारू आखेटक एवं खाद्य संग्राहक समुदाय है। कृषि एवं पशुपालन इनकी अर्थव्यवस्था का आधार है। इस समुदाय में विवाह में वधु मूल्य का प्रचलन है। जो प्रायः नगद के रूप में दिया जाता है। इस समुदाय में विवाह विच्छेद एवं पुनर्विवाह को स्वीकृति प्राप्त है।

बहुपति विवाह खासतौर पर **सहोदर बहुपति विवाह** भी इनके बीच प्रचलित है, ये लोग जादू टोना में विश्वाश करते है। लेकिन विकास के परिणामस्वरूप इस विश्वाश में कमी आयी हैं थारू जनजाति के लोग हिंदू धर्म के लगभग सभी त्यौहार मनाते है। परंतु इनका प्रमुख त्यौहार **वजहर** के नाम से जाना जाता है। इस समुदाय में दीपावली को शोक पर्व के रूप में मनाया जाता है। थारू जनजाति मातृसत्तात्मक परिवार एवं घरों में साफ सफाई के लिए जानी जाती है। बिहार एवं झारखण्ड में संथाल, जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बडी जनजाति है। यहॉ संथाल मोटे तौर पर दो समूहों में विभक्त हैं- **प्रथम देशावली** संथाल एवं **दूसरा खरवार**। देसावली संथाल अपने संथाली विचारधारा को मूलरूप से स्वीकार करता हैं जबकि खरवार सुधारवादी पंथ के समर्थक है।

4.3.6 खासी जनजाति

खासी शब्द आस्ट्रो-एंशियाट्रिक भाषा बोलने वाले **मॉन-खामेर** निकोबार समूह को इंगित करता है। जो दक्षिण पूर्व एशिया से उत्तर पूर्व भारत की पहाड़ीयों में आकर रहने लगे। **खासी प्रायः मेघालय** की खासी हिल एवं जयन्तिया हिल में रहने वाले सभी जनजातियां एवं उप-जनजातियों के लिए प्रयुक्त होता है। खासी वर्तमान में मेघालय के खासी हिल, जयन्तिया हिल एवं बह्मपुत्र के उत्तरी ढलान तथा सूरमा बेली के आस-पास निवासरत है। अपने व्यापक अर्थ में **खासी, जयन्तिया, पनार, लिंगयाम, भोई, बार** तथा **खेनराम** आदि सभी समुदायों के लिए भी प्रयुक्त होता है। ये समुदाय खासी बोली बोलते एवं रोमन लिपि का प्रयोग करते हैं। कुछ खासी हिंदी, असमी एवं बंगाली बोलते है तथा देवनागरी लिपि का प्रयोग करते है, यद्यपि खासी जनजाति का अपना परंपरागत धर्म है एवं ज्यादातर लोग इसी धर्म का अनुसरण करते है, परंतु कुछ लोग हिंदू धर्म, क्रिष्चियन, इस्लाम एवं जैन तथा बौद्ध धर्म के भी अनुयायी है। ये खासी विवाह समारोह, बाजार एवं त्यौहारों के माध्यम से दूसरे समुदायों से भी घनिष्ठता एवं जुड़ाव रखते हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् राष्ट्रवाद की धारा के परिणामस्वरूप इनके बीच जनजातीय धर्म एवं जनजातीय पहचान के लिए बहुत से आंदोलन भी हुए त्रिपुरा में रहने वाले खासी आपस में खासी बोली तथा दूसरो से बंगाली भाषा में बात करते हैं। परंपरागत रूप से ये लोग स्थानांतरित कृषि करते रहे हैं, परंतु वर्तमान में ये स्थाई कृषि एवं सरकारी नौकरी आदि करते हैं। इस समुदाय के लोग स्थानीय मदिरा बनाते हैं एवं बड़ी मात्रा में इसका उपयोग भी करते हैं, इनके भोजन में चावल, मांस मछली, जड़ एवं कंद-मूल शामिल है। खासी जनजाति के प्रमुख उप-समुदाय भोई, खेनराम, लिंगयाम एवं बार इत्यादि है। इनमें भी सर्वाधिक जनसंख्या वाले दो उपसमुदाय हैं- **खेनरियाम एवं लिंगयाम।** यह जनजाति भी **मातृवंशीय** एवं **मातृसत्तात्मक** जनजाति है। यह बहुत से मातृवंशीय गोत्र समूहों मे विभक्त हैं, प्रजातिय दृष्टिकोण से ये लोग आस्ट्रो-एंशियाट्रिक प्रजाति के अंतर्गत आते हैं इनके मुख्य भोजन में प्रायः सभी प्रकार के मांसाहार एवं चावल का प्रमुख स्थान है। यह गोत्र बहिर्विवाही समुदाय है, अर्थात एक ही गोत्र में विवाह वर्जित है, क्योंकि ये समुदाय मातृसत्तात्मक भी है इसलिए परिवार की मुखिया महिला होती है, बच्चें माता एवं पिता दोनों के गोत्र का अनुसरण करते हैं।

खासी जनजाति विश्व की शेष बची हुई मातृवंशीय जातियों में से एक है। यह भारत के सर्वाधिक प्रगतिशील जनजाति सम्प्रदायों में से एक है, जिनकी अर्थव्यवस्था ठोस व्यवसाय, उद्योग तथा नगरीयकरण में परिवर्तित हो गयी है। शैक्षिक रूप में ये भारत के बहुत से अजनजातीय समुदायों से अधिक उच्च स्तरीय हैं तथा देश की उच्च सेवाओं में इनका विशेष प्रतिनिधित्व है। असम के संयुक्त खासी तथा जैन्तिका पहाड़ी जिले जो खासी जनों के पारंपरिक आवास है, अब नवजात मेघालय प्रदेश के अंतर्गत है जिसे सन् 1972 में पूर्ण प्रदेश घोषित कर दिया गया है। अब मेघालय में बहुसंख्या खासी, गारो तथा अन्य अल्पसंख्यक जनजातियों की है, जिसमें खासीजनों की संख्या अधिक है तथा प्रदेश के राजनीतिक अधिकार भी इनके पास

सर्वाधिक है। सामाजिक रूप में खासी चार समूहों में विभक्त हैं यथा- **खाईनरियन खासी,** जो खासी पहाड़ के शिलांग पठारी प्रदेश में है, **जैन्तिया** पहाड़ के पठार, जिले की पश्चिमी तथा दक्षिणी ढलानों पर स्थित **वारजन** तथा नीचे सतह पर स्थित **भोइ जन।** इन चार समूहों के अतिरिक्त दो अन्य समूह जिन्हें हाल में ही खासीजनों ने मान्यता प्रदान की है वह है **जैन्तिया पर्वत** के **हदेम** तथा खासी पर्वत के **लंगम**। चूँकि उपर्युक्त खासियों के सभी समूहों ने भूतकाल में अन्तः विवाह की क्षेत्रीय सीमाओं का अनुकरण किया है, अतः इन्हें खासी उप जनजातियॉ माना जा सकता है।

संयुक्त खासी तथा जैन्तिया पहाड़ी जिला जो खासीजनों का अपना आवास क्षेत्र है, इसका क्षेत्रफल 5,541 वर्ग मील है। उत्तर में यह ब्रह्मपुत्र घाटी से (असम के कामरूप तथा नौगांग जिले) पूर्व में संयुक्त मिकिर व उत्तरी कद्दार पहाड़ जिले से, दक्षिण में सिलहट (अब बांग्लादेश का एक भाग) व कद्दार से तथा पश्चिम में गारो पहाड़ से यह घिरा हुआ है। खासी भूमि चार पठारों से निर्मित है जो सिलहट के निचले मैदानों से 4,000 फीट ऊँची है तथा जहाँ विश्व की सबसे भारी वर्षा होती है। उत्तरी भाग में इससे अधिक ऊँची पठार **माओफलांग** है, जो समुद्री स्तर से 6,000 फीट की ऊँचाई पर है जहाँ कुछ गांव शेष बचे हुए हैं। यह जिले का उच्चतम क्षेत्र है तथा प्रदेश की राजधानी शिलांग भी इसी भाग में है।

इस क्षेत्र की विशिष्टता इसका मनोहारी प्राकृतिक सौंदर्य है। असम के कुछ सर्वश्रेष्ठ फलोद्यान जहाँ संतरा, अनान्नास तथा केले की सर्वोत्तम खेती की जाती है, इसी क्षेत्र की देन है। प्रकृति का सर्वाधिक आकर्षक रूप इसकी अनगिनत नदियों, छोटी-छोटी पहाड़ी धाराओं, कल-कल निनाद करते हुए झरनों तथा चित्रात्मक परिवेश में है। समस्त क्षेत्र अत्यंत मनोरम है तथा शिलांग एक अत्याधुनिक प्रचलित स्वास्थ्य केंद्र के रूप में विकसित हो गया है। यह पहाड़ी क्षेत्र साल, ओक, चीड़ तथा अन्य वनस्पतियों से आच्छादित है। उत्तरी तथा पश्चिमी पहाड़ियों के निचले स्थानों पर बाँस उत्पन्न होता हैं। पशुओं में विशाल रूप से शूकर, हाथी, बन्दर, चीते, हिरन, जंगली कुत्ते आदि पाए जाते हैं।

प्रजातिगत तौर पर खासी चारों ओर बिखरी हिन्द मंगोली जनजातियों से सर्वथा भिन्न है। अधिकांश मतों के अनुसार ये भारतीय मोन जाति की शाखा से ही संबंधित है **"मलय"** जनों से निकट सान्निध्य को प्रकट करते हैं। भाषागत रूप में ये **"मोनखमेर"** परिवार के अंतर्गत आते हैं क्योंकि जिस भाषा का ये प्रयोग करते हैं वह आस्ट्रिक परिवार के **मोनखमेर** शाखा में बोली जाती है। सामान्यतया खासी गाँव पर्वत शिखरों के नीचे बसे हुए हैं, अधिकांशतः सतह से निचले स्तर पर जो पहाड़ी नागा तथा कुकी जनजातियों से सर्वाथा भिन्न है। क्योंकि वे पर्वतों के उच्चतम क्षेत्रों में ही रहना पसंद करते हैं। उत्पादन हेतु ये अपने खेतो से आर्थिक जीवन के लिए जुड़े रहते हैं। किसी खासी को उपजाति में ही विवाह करना पड़ता है। किंतु इस विषय में यह अत्यधिक अंधविश्वासी नहीं होते हैं। खासी जनजाति की समस्याएं देश के अन्य पहाड़ी लोगो से भिन्न नहीं है इनकी अपनी आर्थिक समस्याओं के अतिरिक्त कोई अन्य समस्या नहीं है।

4.3.7 गारो जनजाति

गारो जनजाति मुख्यतः मेघालय, असम, नागालैण्ड, त्रिपुरा एवं पश्चिम, बंगाल में निवास करती है, बहुत कम संख्या में मिजोरम में भी इस जनजाति को देखा जा सकता है, **मेघालय गारो हिल्स** से लेकर के **खांसी हिल्स** तक इनके आवास देखे जा सकते हैं। असम मे ब्रह्मपुत्र के आस-पास अंगलोन, गोलपारा एवं कामरूप जिलो में इस जनजाति का निवास है, नागालैण्ड के कोहिमा एवं चमकोहिमा क्षेत्र में गारो जनजाति निवासरत है। त्रिपुरा के दक्षिणी क्षेत्र एवं पश्चिम बंगाल के जलपाइगुड़ी तथा कूचबिहार जिले यह जनजाति निवासरत है।

गारो जनजाति की मात्र भाषा गारो है, जो कि तिब्बतन-वर्मन भाषा परिवार के बोडो समूह की भाषा है। लिपि के तौर पर ये लोग रोमन लिपि का प्रयोग करते हैं, गारो के अतिरिक्त असमी, बगंला एवं हिंदी भाषा का भी इनके द्वारा प्रयोग किया जाता है। प्रजातीय दृष्टिकोण से यह जनजाति मंगोलाड प्रजाति के अंतर्गत आती है। ये लोग छोटे कद काठी के लोग है जिनका माथा चौड़ा, चेहरा गोल, आंख तथा नाक छोटे होते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत सी घरेलू एवं जंगली सब्जीयां कंद-मूल इत्यादि का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया जाता है, इसके अतिरिक्त गाय एवं सुअर का मांस भी इनके भोजन का प्रमुख हिस्सा है। गारो जनजाति को बहुत से उप-समुदायो में विभक्त किया जा सकता है परंतु इन सभी में आधारभूत सामाजिक सरंचना, प्रथागत सामाजिक व्यवस्था एवं कृषि की तकनीक आदि में एकरूपता दिखाई देती है, इन सभी समूहों में समुदाय के प्रति एक सामान्य सजगता पाई जाती है। गारो जनजाति **मातृवंशीय** एवं **मातृसत्तात्मक** जनजाति है।

मुख्यतः गारो जनजाति पांच मातृवंशीय समूहों मे विभक्त है, जिनके नाम इस प्रकार हैं- संगमा, मराक, मोमिन, अरिंक और सीरा गोत्र के आधार पर यह जनजाति बहिर्विवाही समुदाय है, अर्थात इस समुदाय में एक ही गोत्र में विवाह वर्जित है। गारो जनजाति के प्रमुख गोत्र मंडा, रंगमुधू, टगरी, अजीवो, नेगमाईयां, अंगकोम, चिरोन, दीयो, दांको, डारिंग, दावा, चवकोम, रेमा, रहसोम, भोरोम, रंगेसा एवं बोलवारी इत्यादि।

गारो जनजाति की गोत्र संरचना में सबसे महत्वपूर्ण इकाई **“महारी”** है। जो किसी समूह के माचोम के अंतर्गत विवाह संबंधों को निर्धारित करती है। महारी किसी परिवार के मुखिया के निर्धारण एवं परिवार में पति-पत्नि के दायित्वों के नियमन एवं नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस जनजाति में प्रायः एक विवाह का प्रचलन है परंतु कभी-कभी बहुपत्नि विवाह भी देखा जा सकता है, इस प्रकार के विवाह प्रथम पत्नि एवं महारी की स्वीकृति से होते हैं। महारी की स्वीकृति से विवाह-विच्छेद एवं पुर्नविवाह को भी स्वीकृति है। विवाह-विच्छेद के बाद बच्चों के लालन-पोषण की जिम्मेदारी मां की होती है, इस समुदाय में विधवा एवं विधुर पुर्नविवाह को स्वीकारिता है।

गारो जनजाति में परिवार का स्वरूप एकल परिवार का है। इसके अतिरिक्त अभिसारित परिवार पाए जाते हैं। क्योंकि गारो जनजाति मातृवंशीय एवं मातृसत्तात्मक है इसलिए पूरी संपत्ति परिवार की महिला के

अधिकार में होती है। एवं महारी के द्वारा यह संपत्ति मां से पुत्री को हस्तांतरित होती है सामान्यतः सबसे छोटी पुत्री को संपत्ति का अधिकार मिलता है। इस प्रकार संपत्ति का स्वामित्व महिला के पास है एवं पुरूष इसकी सुरक्षा, नियंत्रण एवं प्रबंधन करता है।

"एकिंग" पहाड़ी क्षेत्रों में एक महारी के स्वामित्व के अंतर्गत क्षेत्र की समस्त भूमि को महारी के न्याय अधिकार में मानता है। एकिंग का नियंत्रण एवं प्रबंधन समुदाय का मुखिया **नोकमा** करता है, जो गांव वालों से गहरा समन्वय रखता है। एकिंग के अंतर्गत भूमि को छोटे-छोटे हिस्सों में बाटंकर गांव के प्रत्येक परिवार को कृषि हेतु दिया जाता है। गारो परिवार में किसी बच्चें के जन्म के पूर्व बहुत से जानवरों एवं पक्षियों की बलि दी जाती है। गांव का पुजारी जिसे कमाल कहा जाता है, उसके द्वारा यह कार्य किया जाता है। पहाड़ी क्षेत्र में पहले स्थानांतरित कृषि की जाती थी परंतु अब स्थायी कृषि की जा रही है। इस जनजाति के अधिकांश लोग धान, मक्का, जूट, सरसों इत्यादि की खेती करते हैं। कुछ लोग सरकारी नौकरी और कुछ चाय के बगानों में नौकरी करते हैं। इस जनजाति का परंपरागत धर्म **सांगसरेक** है, जो किसी आलौकिक सत्ता में विश्वाश को स्वीकार करता है। इनकी ज्यादा धार्मिक गतिविधियां आत्माओं को प्रसन्न करने के लिए होती है, ताकि इनके द्वारा परिवार या समुदाय को नुकसान न पहुचाया जाए। क्रिष्चियन धर्म अपनाने वाले गारो परिवार के जीवन में व्यापक धार्मिक परिवर्तन हुआ है। यद्यपि ये लोग भी गोत्र एवं प्रथागत कानून जैसे आधारभूत सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था का अनुसरण करते हैं। पहाड़ी क्षेत्र के गारो मैदानी क्षेत्र के अन्य जनजातीय समुदायों हिंदू, मुस्लिम, कोच तथा व्यपारियों से अधिक संबंध रखते है एवं यहां अपने द्वारा बनाए गए बांस की चटाई, मिर्च, अदरक, टोकरी इत्यादि बेचते हैं। कपड़े की बुनाई इनका परंपरागत कार्य था जिसे हैडलूम ने प्रभावित किया है। इस समुदाय के परंपरागत युवा ग्रह **नॉकपानते** वर्तमान में समाप्त प्रायः है।

इस जनजाति का **मूल पूर्वज एक स्त्री** को माना जाता है। इनकी वंश परंपरा पूर्णतः पत्नी पक्ष पर केंद्रित रहती है, अनेकानेक आयामो से यह जनजाति समूह स्त्री प्रधान है। मॉ की संपत्ति की उत्तराधिकारी सामान्यतः छोटी बेटी होती है। इसके पति को **"नोक्रोम"** कहा जाता है। नोक्रोम अपनी पत्नी और सास की संपत्ति का उपभोग तो कर सकता है, किंतु किसी अन्य को हस्तांतरित करने का उसे कोई अधिकार नहीं हैं। नोक्रोम का चुनाव अत्यन्त सावधानी से किया जाता है। मां सबसे छोटी बेटी के पति के चयन हेतु मामा के बेटे को क्रमश: प्राथमिकता देते हैं। इसके पीछे कारण संपत्ति को परिवार अथवा नातेदारी से बाहर जाने से रोकना होता है। इनकी सामाजिक प्रस्थति अत्यंत सुद्रढ़ है तथा आर्थिक अधोसंरचना सामाजिक प्रस्थति का केंद्र बिंदु है।

4.3.8 जैंतिया जनजाति

जैंतिया जनजाति को सिंटेंग अथवा पनार जनजाति के नाम से भी जाना जाता है। वास्तव में यह जनजाति खासी जनजाति की ही एक उप-जनजाति है, जो मेघालय के जैंतिया हिल में निवास करती है। इस समुदाय के लोगो के अनुसार उत्तर-पूर्व (मेघालय) में जैंतिया का अपना साम्राज्य था जिसे सिंटेंग साम्राज्य के नाम से जाना जाता था स्वतंत्रता के पश्चात् यही साम्राज्य उत्तर-पूर्व भारत के नाम से जाना जाता है।

इस समुदाय की अपनी भाषा जैंतिया है। इसके अतिरिक्त ये लोग खासी, असमी, बंगला एवं हिंदी भी बोलते हैं। खांसी जनजाति की ही तरह यह जनजाति भी **प्रोट्रो-आट्रोलायड मोनखेमेर** प्रजाति की जनजाति है। यह भी मातृवंशीय एवं मातृसत्तात्मक समुदाय है। इस समुदाय में बच्चे अपनी माता के नाम से अपना उपनाम ग्रहण करते हैं। परिवार की संपत्ति माता से पुत्री को हंस्तातरित होती है। यह समुदाय भी गोत्र बर्हिविवाही समुदाय है अर्थात अपने गोत्र में विवाह वर्जित है।

इस समुदाय के अधिकांश परिवार अपने परंपरात्मक धर्म सेंटेंग के अनुयायी हैं, परंतु कुछ लोगों ने क्रिष्चियन धर्म भी अपनाया है। इनके भोजन में चावल, मांस-मछली इत्यादि प्रमुख है। ये लोग भी चावल की शराब बनाते है, जिसका सभी धार्मिक आयोजनों में अनिवार्यतः उपयोग किया जाता है।

जैंतिया समुदाय का परिधान भी खासी की ही भॉति है, पुरूष जिंकोंग एवं धोती पहनते है तो महिलाएं कई कपड़ों को लपेटकर साड़ी जैसा पहनावा पहनती हैं, त्यौहार एवं उत्सव इत्यादि में ये लोग चॉदी या सोने का मुकुट भी धारण करते हैं इस प्रकार वे अपनी पहचान को महान सिंटेंग साम्राज्य से जोड़ते है।

4.3.9 नागा जनजाति

नागा टर्म स्थानीय शब्द नॉक, नॉका एवं नाग से संबंधित है, नागा भाषाओं (कोन्याक, एंओ एवं अन्य) के अनुसार इन शब्दों का तात्पर्य है- **लोक व्यक्ति या लोकजन** है।

असमी साहित्य में भी नागा शब्द पर भी पर्याप्त वर्णन मिलता है, असमी आज भी इन्हें नागा कहते हैं। जो संस्कृत शब्द लोको से संबंधित है। ज्यादातर साहित्य नागा को नोक अथवा जनसमुदाय से संबंधित मानते हैं। कुछ तिब्बत-वरमन भाषाओं जैसे गारो में नोक एक मूल शब्द है और इससे कई महत्वपूर्ण शब्द नोकतार, नोकवा, वानोक इत्यादि बने हैं ये शब्द प्रायः अरूणाचल प्रदेश के तिरपा जिले में नागाओं के लिए प्रयुक्त होते हैं।

हिंदी एवं बंगला में नागा का तात्पर्य वस्त्रहीन अथवा आवरणरहित है, जिसका तात्पर्य मौलिकता से है। वास्तव में नागा शब्द नागालैण्ड मे निवासरत बहुत से जनजातीय समुदायों के एक समूह के लिए प्रयुक्त होता है। अर्थात नागा एक जनजाति नहीं वरन बहुत से समुदायों का समूह है।

ये समुदाय मानते हैं कि ये पहाड़ों की अलग-अलग दिशाओं से आकर अपने वर्तमान निवास अर्थात नागालैण्ड में रहने लगे। ये मानते है कि चीन एवं शरत के बीच व्यापारियों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली उपरी वर्मा एवं असम के बीच के रास्तों से इनके पूर्वज नागालैण्ड आए हैं।

उत्तर-पूर्व के चार राज्यों- असम, अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड एवं मणिपुर में नागा समुदाय निवास करते हैं, प्रजातीय आधार पर ये **मंगोलाइड** प्रजाति के अंतर्गत आते हैं, नागा समुदायों द्वारा बोली जाने वाली **“नागा बोली”** तिब्बत-वर्मन भाषा परिवार की बोली है।

असम में तीन नागा जनजातिया जेंम, काबोई एवं सेमा निवासरत है, जेम उत्तरी कछार हिल, काबोई कछार जिले में एवं सेमा डिबरूगढ़ में निवास करते है।

मणिपुर में सात प्रमुख नागा समुदाय निवास करते हैं ये समुदाय इस प्रकार हैं- तंगखुल, कावोई एवं पुमेई, माओ, कॉचा, अनाल, मराम एवं मोसांग।

नागालैण्ड में सबसे अधिक 16 नागा जनजातिया निवास करती हैं । इनके नाम निम्न प्रकार हैं- आओ, अंगामी, चाखेसंग, चेंग, चिर, खेननन्गान, कोन्याक, लोथा, मकवार, फूम, रेंगमा, संगटाय, सेमा, टेखिर, यिंमचूंगरे एवं जेलियांग।

राजनैतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रो के आधार पर नागालैण्ड के **जिमोई एवं लिंगयमाई जेमी** के नाम से जाने जाते हैं तथा मणिपुर के **रोंगमई** के नाम से जाने जाते हैं, मणिपुर के ही **जेमई** एवं **लिंगमई** को **काचा नागा** कहा जाता है जबकि असम में इन्हें ही **कवोई** कहा जाता है। यहा रोंगमई एवं जेमई के स्थान पर **जेन** कहा जाता है।

“जेलियांगवेंग” तीन नागा जनजातियो का संक्षिप्ती शब्द है। ये जनजातियां हैं जेमई, निंगमोई एवं रोमेई। ये तीनों समुदाय अपनी उत्पत्ति एक समान पूर्वजों से मानते हैं।

जेलिंयाग रोम की अवधारणा 1930 में अस्तित्व में आई तब से स्वतंत्रता प्राप्ति तक तीन समुदायों के लोग नागालैण्ड, मणिपुर एवं असम में तीन जेलियांग रोम क्षेत्रों के निर्माण की मांग करते रहे हैं।

नागा समुदायों में वन एवं भूमि इनकी अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है। स्थानांतरित कृषि एवं सीड़ीदार खेतों में कृषि इनकी कृषि के प्रमुख स्वरूप है। धान इनकी मुख्य फसल है, इसके अतिरिक्त आलू, मक्का, गेहूं, तिलहन, मिर्च, गन्ना, अनानाष, संतरा, पपीता, अमरूद इत्यादि की भी फसल होती है। ग्रामीण क्षेत्रों के नागा आखेट एवं वनों से कुछ वस्तुएं जैसे शहद, जंगली फल, जंगली सब्जिया एवं ईधन इत्यादि एकत्रित करने का काम करते हैं। नागा जनजातिया पितृवंशीय समुदाय है, सभी नागा जनजातियों में इनकी परंपरागत ग्राम परिषद द्वारा सामाजिक नियंत्रण की व्यवस्था की जाती है। प्रत्येक नागा समुदाय इन समुदायों की महिलाओं द्वारा बुने जाने वाले विशिष्ट शाल के लिए भी जाना जाता है। जो अब व्यवसायिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है नागा कुशल कारीगर हैं, जो रंगीन वस्तुओं आभूषणों एवं आवासों का निर्माण करते हैं। लकड़ी में कारीगर टेटू बनाने एवं वांस तथा केन के बास्किट बनाने में ये लोग कुशल हैं। इन समुदायों में अविवाहित

युवक एवं युवतियों के लिए युवागृह का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि अधिकांश नागा समुदाय अपने परंपरागत जनजातीय धर्म के अनुयायी हैं, परंतु कुछ लोगों ने क्रिष्चियन, वैष्णव, हैराका धर्म अपनाए हैं।

नागालैड में पाई जाने वाली नागा जनजातिया अनेक समूहों में विभक्त है। इनमें **कोन्याक** तथा **अंगामी** नागा प्रमुख है। अधिकांश नागा समूह आपसी लड़ाईयों में उलझे रहते हैं। फिर भी इनके राजनैतिक संगठन बने हुए है। सामान्यतः आदिम राजनीति का अर्थ समूह पर सीमित सत्ता से लिया जाता है। आदिम राजनीति मनुष्य के व्यवहारों का व्यवस्थापन है। यह नागालैंड की जनजातियों के अलग-अलग खण्डों में लगभग सभी प्रकार के राजनीतिक संगठन पाए जाते हैं। नागा खेल अथवा टेकू के द्वारा संचालित होते हैं। खेल या टेकू वे समूह है। जो बर्हिविवाही होते हैं, अर्थात एक बड़ा वंश या कुल जिसका एक पूर्वज होता है। यह किसी बुर्जुग के नियंत्रण में रहकर कार्य करते हैं।

4.3.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने भारत की जनजातियों से संबंधित जानकारी प्राप्त की है। हमने मध्य भारत की जनजातिया भील एवं गोंड़ की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना को जाना तथा उत्तरी क्षेत्र की संथाल एवं थारू जनजाति की संरचना को समझने का प्रयास किया है। इसी क्रम में उत्तर-पूर्व की खासी, गारो, जयंतिका एवं नागा जनजाति को जानने का प्रयास किया गया है।

4.3.11 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मध्य भारत क्षेत्र की प्रमुख जनजातियो के नाम लिखिए।
2. भील जनजाति के उप जनजातियों के नाम बताइए।
3. गोंड जनजाति पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. ओल- चिकी लिपि पर टिप्पणी कीजिए।
5. उत्तर- पूर्व क्षेत्र की किसी एक जनजाति पर विस्तार से वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. संथाल जनजाति में माझी की भूमिका का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. थारू जनजाति की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
3. मातृवंशीय एवं मातृसत्तात्मक समुदाय के रूप में खासी जनजाति का वर्णन कीजिए।
4. गारो जनजाति में 'महारी' नामक संगठन की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
5. जैयांतिया जनजाति का वर्णन कीजिए।
6. नागा जनजाति के संदर्भ में 'जेलियांगवेंग' का वर्णन कीजिए।

4.3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. देसाई, ए.आर. (1960). ट्राइब्स इन ट्रंजिसन. सेमिनार 2014: 19-24
2. दुबे, एस.सी. (1960). मानव और संस्कृति. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
3. एल्विन, वैरियर. (1944). द एबोर्जिनियस. बॉम्बे: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
4. घूरिए, जी.एस. (1963). द शेड्यूल ट्राइब्स. बॉम्बे: पॉपुलर प्रकाशन.
5. मजूमदार, डी.एन. एवं मदान, टी.एन. (1956). एंन इंटरोड्कशन टू सोशल एनथ्रोपोलॉजी. बॉम्बे: एशियन पब्लिशिंग हाऊस.
6. मजूमदार, डी.एन. (1944). रसेस एण्ड कल्चरस ऑफ इंडिया. दिल्ली: एशियन पब्लिशिंग हाऊस.
7. रिजले, एच.एच. (1903). सेंसेस ऑफ इंडिया रिपोर्ट. शिमला: गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रेस.
8. साह, बी.एन. (1998). अप्रोच टू ट्राइबल वेल्फेयर इन पोस्ट इंडेपेंडेन्स एरा एंथ्रोपोलॉजिस्ट. Vol.25, No.1, pp. 73-81.
9. सिंह, के.एस. (1994). द श्चेड्यूल ट्राइब्स. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
10. श्रीनिवास, एम.एन. (1952). रिलीजन एण्ड सोसाइटी एमंग द कुर्ज ऑफ साउथ इंडिया. बॉम्बे: एशियन पब्लिशिंग हाऊस.
11. श्रीनिवास, एम.एन. (1966). सोशियल चेंज इन मॉडर्न इंडिया. बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ केलिफोर्निया प्रेस.
12. टायलर, एड.बी. (1881). एंथ्रोपोलॉजी: एन इंटरोड्कशन टू द स्टडी ऑफ मैन एण्ड सिविलाइजेशन. लंदन: मैकमिलन.
13. टायलर, एड.बी. (1920). प्रीमिटिव कल्चर (6th Edition). लंदन: जॉन मैरी.
14. विद्यार्थी. एल.पी. एवं विनय, कु. राय. (1976). द ट्राइबल कल्चर ऑफ इंडिया. नई दिल्ली: कान्सैप्ट पब्लिशिंग कंपनी.
15. Xaxa, Virginius (2008): State, Society and Tribes: Issues in Post-colonial India, New Delhi: Pearson Education India.
16. Xaxa, Virginius (2014): "Report of High Level Committee on Socio-economic, Health and Educational Status of Tribal Communities of India", Ministry of Tribal Affairs, New Delhi: Government of India.

इकाई 4 जनजातीय समस्याएँ एवं योजनाएँ

इकाई की रूपरेखा

4.4.0 उद्देश्य
4.4.1 प्रस्तावना
4.4.2 जनजातीय समस्याएं
4.4.3 ऋणग्रस्तता
4.4.4 भूमि हस्तांतरण
4.4.5 अस्थाई कृषि
4.4.6 निर्धनता
4.4.7 मदीरापान
4.4.8 आवास एवं स्वच्छता
4.4.9 शिक्षा से संबंधित समस्या
4.4.10 औपचारिक शिक्षा मे रूचि की कमी
4.4.11 संचार
4.4.12 भुखमरी एवं कुपोषण
4.4.13 बेरोजगारी एवं अविकास
4.4.14 मानव तस्करी
4.4.15 स्वास्थ्य एवं स्वच्छता
4.4.16 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जनजातीय विकास
4.4.17 विकास नीतियां
4.4.18 सारांश
4.4.19 बोध प्रश्न
4.4.20 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

- भारत की जंजातियों के संदर्भ में जनजातीय समस्याओं को जान सकेंगे।
- निर्धनता एवं ऋणग्रस्तता जैसी समस्याओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- जनजातीय समुदाय के बीच शिक्षा से संबंधित समस्या के कारणों का समुचित परीक्षण कर सकेंगे।
- परिवर्तन के परिणाम स्वरूप अस्तित्व में आई कुछ नई समस्याओं से भी परिचित हो सकेंगे।
- जनजातीय समस्याओं के समाधान हेतु जनजातीय विकास से संबंधित योजनाओं का भी समुचित परीक्षण कर सकेंगे।

4.4.1 प्रस्तावना

किसी भी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास हेतु यह आवश्यक है कि उस राष्ट्र के सभी वर्ग, समुदाय आदि समस्या पर पूर्ण योगदान दे सकें। भारत के संदर्भ में जब हम विकास की बात करते हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि देश के सभी वर्गों एवं समुदायों के परिप्रेक्ष्य में विकास को समेकित रूप से समझने का प्रयास करें।

विभिन्न काल खण्डों में किए गए विकास कार्यों को हम कुछ काल खण्डों में विभाजित कर सकते हैं जैसे- ब्रिटिश काल में विकास कार्य, स्वतंत्रता के पश्चात् विकास कार्य एवं 1990 के दशक में वैश्वीकरण जैसी प्रक्रियाओं के आने के बाद विकास कार्य भारत में जनजातीय विकास की दृष्टि से यदि हम इन प्रयासों को देखें तो हम यह पाते हैं कि यह समुदाय गैर जनजातीय समुदायों से दूर दराज के क्षेत्रों में निवास करते रहे हैं। इसलिए ब्रिटिश काल में ये समुदाय एकांकी समुदाय के रूप में देखे गए। परंतु आगे चलकर ब्रिटिश शासन द्वारा इन जनजातीय क्षेत्रों में अप्रत्यक्ष रूप से दखल देना आरंभ किया। वास्तव में यह दो सर्वथा भिन्न संस्कृतियों के बीच टकराव की स्थिति थी जहाँ एक तरफ जनजातीय संस्कृति प्राकृतिक संसाधनों, खास तौरपर वनों के संरक्षण एवं सर्वधन करने वाली थी एवं उनकी सम्पूर्ण सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक गतिविधियां इन्हीं प्राकृतिक संसाधनों के आस-पास केंद्रित थीं वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश अर्थात पश्चिमी संस्कृति उपभोगतावादी संस्कृति थी।

प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम दोहन एवं उपयोग इस संस्कृति के लिए विकास के मायने थे अर्थात यह संस्कृति भौतिक उपभोगवाद की समवाहन एवं संरक्षक थी ऐसे में प्राकृतिक संसाधनों (मुख्यतः वनों) का अधिकतम दोहन एवं उपयोग ब्रिटिश शासन का मुख्य उद्देश्य बन गया। जिसके परिणाम स्वरूप पहली बार प्राकृतिक संसाधनों से संबंधित अनेक नियम कानून एवं नीतियों का निर्धारण किया गया।

इसी क्रम में भारतीय **वन नीति (1872)** एवं वन से संबंधित नियम एवं कानून बनाए एवं लागू किए गए। इतना ही नहीं वनों का विभिन्न श्रेणियों में विभाजन भी किया गया। जैसे आरक्षित वन, संरक्षित वन, राजस्व वन एवं सामुदायिक वन। इन नियमों, नीतियों एवं वर्गीकरण के परिणाम स्वरूप अभी जो जनजातीय

समुदाय वनों को अपनी संपत्ति एवं स्वयं को उनका अभिन्न हिस्सा समझते थे वे इनके उपयोग से वंचित हुए। संबंधित साहित्य जैसे-ब्रिटिशकाल के गजेटियर, रिपोर्ट एवं अन्य दस्तावेजों का अध्ययन करें तो हम यह पाते हैं कि अब जनजातियों द्वारा वनों के उपयोग पर उन्हें दण्डित भी किया जाने लगा। यह दण्ड प्रायः आर्थिक प्रकृति का होता था। ऐसे में एक जनजातीय व्यक्ति के लिए यह समझ पाना मुश्किल था कि अपने संसाधनों के उपयोग हेतु उसे दण्डित किया जाना न्यायोचित कैसे है? कई बार इस दण्ड का स्वरूप एवं प्रकृति ऐसी होती थी जो संबंधित व्यक्ति या परिवार की आजीविका को नाकारात्मक रूप से प्रभावित करती थी उदाहरण के तौर पर प्रतिबंधित वनों में किसी आदिवासी की बकरी को प्रवेश पर कई बार उस बकरी की कीमत से अधिक उसे जुर्माना भरना होता था। परिणामस्वरूप जनजातीय समुदाय में ब्रिटिश शासन के प्रति व्यापक असंतोष एवं तनाव व्याप्त हो गया और जनजातीय समुदायों का ब्रिटिश शासन के प्रति यह असंतोष एवं तनाव ब्रिटिश शासन के विरूद्ध होने वाले आंदोलन का हिस्सा बनने लगा, ऐसे में दूर दराज एवं अलग-थलग (Isolation) जीवन जीने वाले इन समुदायों के प्रति ब्रिटिश शासन का नजरिया बदला। अब मिशनरी के माध्यम से ब्रिटिश शासन में इन समुदायों के बीच अपनी पहुँच बनाई तथा इन मिशनरीज ने उनके स्वास्थ्य एवं शिक्षा से संबंधित विभिन्न बिंदुओं पर उन्हें जागरूक बनाया और स्वास्थ्य से संबंधित उनकी समस्याओं के साधन तथा मुख्य धारा की औपचारिक शिक्षा पद्धति में उनको शामिल किया।

इस प्रकार यद्यपि ब्रिटिश शासन द्वारा किए गए यह कार्य जनजातीय असंतोष एवं तनाव को नियंत्रित किए गए प्रयास थे। परंतु इन प्रयासों से जनजातीय विकास के प्रथम सोपान का प्रादुर्भाव हुआ। इसी काल खण्ड में जनजातियों को चिन्हित कर उन्हें सूचीबद्ध किया गया और स्वतंत्रता के पश्चात भारत के संविधान में इन्हीं समुदायों को अनुसूचित जनजाति के रूप में सूचीबद्ध किया गया। वे सभी समुदाय जो संविधान की पांचवी एवं छठवीं अनुसूची में सूचीबद्ध है। अनुसूचित जनजाति को श्रेणी में आते हैं एवं इनके विकास हेतु विशेष प्रकार के प्रावधान भी है। हमारे देश के विशेष आवश्यकता वाले या पिछड़े वर्ग (Wekarsection) में अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, महिला एवं अल्पसंख्यकों को रखा गया है अर्थात इन समुदायों के विकास हेतु विशेष प्रयासों को हमारे विकास के मॉडल में प्राथमिकता दी जाती है। स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे देश के विकास की पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से नियोजित किया गया और इन सभी योजनाओं में जनजातीय विकास को प्राथमिकता दी गई है।

वैश्विक स्तर पर परिवर्तन की तमाम प्रक्रियाओं का प्रभाव भी हमारे देश के विकास के स्वरूप एवं प्रकृति पर पड़ा है। वैश्वीकरण एक ऐसी ही प्रक्रिया है जिसने हमारे देश में नियोजित परिवर्तन को नई दिशा एवं विकास के अलग-अलग मॉडल अपनाने हेतु प्रेरित किया है, नि:संदेह जनजातीय विकास भी इससे अछूता नहीं है।

भारत में जनजातीय विकास हेतु समाज वैज्ञानिकों द्वारा अलग-अलग उपागम सुझाए गए हैं। जैसे **वैरियर एल्विन** ने **अलगाववादी उपागम (Isolation approach)** का सुझाव दिया एवं यह कहा कि जनजातीय संस्कृति सर्वथा भिन्न एवं विशिष्ट संस्कृति है जिसको विकास के नाम पर नष्ट नहीं किया जाना चाहिए। इसी आधार पर उन्होने जनजाति विकास हेतु **जनजाति उपवन का सिद्धांत (National Public Park Theory)** हेतु जनजाति उपवन का सिद्धांत दिया। **जी.एस.घुरिए** इससे अलग **एकीकरण (Interogation approach)** उपागम को महत्वपूर्ण मानते हैं एवं जनजातियों को गैर जनजातीय समुदायों के साथ विकास की प्रक्रिया में शामिल करने पर बल देते हैं। इसी प्रकार **डी.एन. मजूमदार चयनित एकीकार (selected interogation)** के उपागम के पक्षधर हैं, आपके अनुसार जनजातीय समुदायों के नृजातीय पहचान (Ethnic Identity) को क्षतिग्रस्त नहीं होने देना चाहिए। विकास की मुख्यधारा में इनकी सभ्यता एवं संस्कृति के सभी तत्वों को शामिल नहीं किया जाना चाहिए बल्कि कुछ जनजातीय जीवन के उन्हीं पक्षों को विकास की प्रक्रिया में शामिल किया जाना चाहिए जो अति आवश्यक हो।

समाज वैज्ञानिकों का एक समूह एंसा भी है जो जनजातीय विकास हेतु समावेशीकरण के उपागम (Assimilation Approach) को आवश्यक मानता है इनके अनुसार जनजाति संस्कृति भी भारत के गैर जनजातीय समुदाय संस्कृति की ही भाँति है और वे भी अन्य समुदायों के भाँति भारतीय समाज का हिस्सा हैं। अर्थात जनजातियों के लिए विशेषीकृत विकास कार्यक्रमों के वजह उन्हें अन्य समुदायों के साथ शामिल कर विकास कार्य किए जाने चाहिए। उपर्युक्त सभी उपागम जनजातीय जीवन में किए गए गहन अध्ययनों का परिणाम है अर्थात जनजातीय जीवन में समस्याओं एवं उनके समाधान हेतु समुचित एवं सटीक प्रयास किए जाएं इसके लिए आवश्यक है कि एक से अधिक उपागमों को ध्यान में रखकर जनजातीय विकास सुनिश्चित किया जाए।

विकास की प्रक्रिया में आगे बढ़ रहे अन्य देशों की भॉति हमारे देश में भी समग्र विकास राष्ट्रीय विकास का लक्ष्य है। अर्थात देश के सभी समुदायों का विकास समान रूप एवं समान गति से हो इस हेतु प्रयास किए जा रहे हैं। एंतिहासिक रूप से जनजातीय समुदाय विकास की मुख्य धारा से दूर होते गए एवं इन समुदायो में कुछ विशेष प्रकार की समस्याएं भी उत्पन्न हुई जिनमें अशिक्षा, स्वास्थ्य की समस्या, ऋणग्रस्तता, निर्धनता, बेरोजगारी इत्यादि प्रमुख समस्याएं हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात जनजातीय विकास हेतु व्यापक स्तर पर प्रयास किए गए एवं बड़ी संख्या में जनजातीय विकास योजनाएं संचालित की गई जिनके सकारात्मक परिणाम भी प्राप्त हो रहे हैं, परंतु अभी भी जनजातीय विकास हेतु अनवरत प्रयासो की आवश्यकता है।

4.4.2 जनजातीय समस्याएं

निम्नलिखित जनजातीय समस्याएँ इस प्रकार हैं-

4.4.2.1 ऋणग्रस्तता (Indebtedness)

भारतीय जनजातियों की समस्याओं में संभवतः ऋणग्रस्तता की समस्या सबसे जटिल है, जिसके कारण जनजातीय लोग साहूकारों के शोषण का शिकार होते हैं। ठेकेदारों तथा अन्य लोगों से सीधे संपर्क के कारण उत्तर-पूर्व के कुछ क्षेत्रों को छोड़कर समस्त भारतीय जनजातीय जनसंख्या ऋणों के बोझ से दबी हुई है।

इस ऋणग्रस्तता का कारण है, निर्धनता, भुखमरी तथा दुर्बल आर्थिक व्यवस्था। नृजातीय अध्ययनों तथा प्रमाणों से यह स्पष्ट पता चलता है कि ठेकेदारों तथा अन्य लोगों के द्वारा इनके क्षेत्रों में हस्तक्षेप से पूर्व ये जनजातियां इतनी दुर्बल, निर्धन तथा विवश नहीं थीं। ये लोग आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर थे। वन सम्पदा पर इनका अधिकार था। दुर्भाग्यवश जब आर्थिक विकास की योजनाओं के अंतर्गत जनजातीय क्षेंत्रो में विकास का झोंका आया तथा इनके क्षेत्र सभी प्रकार के लोगों के लिए खोल दिए गए, तो विकास का लाभ उठाने के लिए ये जनजातियां तैयार नहीं थीं। अधिकतर जनजातियों में ऋणबंधक होना इनके जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। सभी जनजातीय समुदायों की ऋणग्रस्तता के कुछ मुख्य कारण हैं-

1. भूमि तथा वनों पर जनजातीय अधिकारों का हनन
2. कृषि के पुराने तरीकों के कारण कम उत्पादन
3. उपेक्षा तथा जहालत
4. विवाह, मृत्यु, मेलों तथा उत्सवों में अपनी क्षमता से अधिक व्यय करने की प्रवृत्ति
5. भाग्यवादी प्रवृत्ति व संकुचित विचारधारा
6. परंपरागत सामुदायिक पंचायत एवं जुर्माना

उपरोक्त स्थितियों के कारण जनजातीय लोगों को सदैव रुपए की आवश्यकता रहती है, जिसके कारण यह लोग आसानी से साहूकारों के शोषण का शिकार हो जाते हैं। समय-समय पर लिए गए, ऋण, जिनकी ब्याज दरें बहुत अधिक होती हैं मिलकर ऐसी धनराशी में परिवर्तित हो जाते हैं जिसे वापस करना इनके सामर्थ्य से परे होता है, जिसके फलस्वरूप इनकी भूमि साहूकारों द्वारा ले ली जाती है।

4.4.2.2 भूमि हस्तांतरण (Land Alienation)

नवीनतम आँकड़ों के अनुसार जनजातीय जनसंख्या का लगभग 88 प्रतिशत भाग कृषक है। जनजातियों का अपनी भूमि से बहुत भावनात्मक लगाव रहता है। जीवनयापन के लिए कृषी ही एक ऐसा साधन है जिस पर ये लोग सदियों से निर्भर हैं। अनुसूचित क्षेत्रों व अनुसूचित जनजाति आयोग की रिपार्ट में इन स्थितियों का वर्णन स्पष्ट रूप से किया गया है।

भूमि हस्तांतरण जैसी समस्या के मूल में पहुँचने से पूर्व सामान्य स्थितियों का विवरण देना अनुचित न होगा। संचार व्यवस्था में विस्तार होने के कारण समस्त जनजातीय क्षेत्र बाहरी लोगों के लिए खुल गया। ये बाहरी वर्ग इन क्षेत्रों में अपने-अपने उद्देश्यों व स्वार्थों के साथ प्रवेश कर गया। इनमें से भूमि अधिग्रहण करने वाले शक्तिशाली लोगों ने जनजातियों को सबसे अधिक परेशान किया।

भूमि अधिग्रहणके कारण - धन की कमी भूमि हस्तांतरण के मुख्य कारणों में से एक है। जब से ये जनजातियां सभ्य समाज तथा इसकी वित्त संस्थाओं के संपर्क में आयीं, धन की कमी के कारण उनकी भूमि का हस्तांतरण बढ़ता गया। विवाह, उत्सवों, कपड़ों, मदिरा तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए जनजातीय लोगों को सदैव धन की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार भूमि हस्तांतरण से साहूकारों तथा दुकानदारों के ऋण एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साहूकार इन्हें किसी भी समय, किसी भी उद्देश्य के लिए, बिना सशर्त बगैर जमानत के ऋण देने को तैयार रहते हैं। उपरोक्त तथ्यों को ध्यान रखते हुए ये लोग बढ़ी हुई ब्याज दरों पर भी साहूकारों से ही ऋण लेना अधिक सुरक्षित समझते हैं।

4.4.2.3 अस्थायी कृषि (Shifiting Cultivation)

भारतीय जनजातियों में अस्थायी कृषि का प्रचलन बहुत पुराना है। अस्थायी कृषि का अर्थ है कि कुछ समय तक एक भूमि पर कृषि करना तथा फिर उसे खाली छोड़ देना। इसके अंतर्गत जंगली ढलानों की सफाई, गिरे हुए पेड़ों तथा पत्तों को जलाना तथा फिर राख से ढकी भूमि पर बीज को बोने जैसे कार्य होते हैं। इसके बाद सब कुछ प्रकृति पर निर्भर होता है। यह कार्य अधिकतर ग्रीष्म ऋतु से पूर्व प्रारंभ होता है। अस्थायी कृषि उपरोक्त उत्तर-पूर्व के जनजातीय क्षेत्रों में बहुत प्रचलित रही है। इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश व उड़ीसा की बैगा जनजाति भी यह कृषि करती रही है।

4.4.2.4 निर्धनता

निःसन्देह दीर्घकालीन व्यापक गरीबी भारत के औपनिवेशिक इतिहास में शुरू से ही चली आ रही है। अपनी आर्थिक समस्याएं हल करने और सर्वतोमुखी विकास करने के हमारे प्रयास हमारी पंचवर्षीय योजनाओं के साथ शरू हुए। उन्होंने कई मामलों में देश का कायाकल्प भी किया, जैसे ठोस औद्योगीकरण, हरित क्रांति जिससे देश में आवश्यकता से अधिक खाद्यान्न पैदा होने लगा, औसत जीवनावधि में वृद्धि हुई मध्य समृद्धि में तेजी से वृद्धि हुई। जनजातीय लोगों में अफीम तथा अन्य नशीली वस्तुओं की लत भी एक गम्भीर स्वास्थ्य समस्या है। अरुणाचल प्रदेश की **सिंहफो** जनजाति इसका ज्वलंत उदाहण है। लगभग 150 वर्ष पूर्व इन लोगों की संख्या 40 हजार थी जो अब लगभग 1 हजार रह गयी है। जनजातियों को स्वास्थ्य शिक्षा देना आवश्यक है। अधिकतर जनजातियां अशिक्षित हैं, परंतु चलचित्रों तथा वीडियो केसैटों की सहायता से इन्हें स्वास्थ्य तथा सफाई के मूल सिद्धांतों से अवगत करना चाहिए।

4.4.2.5 मदिरापान (Alcoholism)

जनजातीय संस्कृति में मदिरा (शराब) का विशेष एवं महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में प्रत्येक जनजातीय समुदाय के द्वारा उनके आस-पास के प्राकृतिक संसाधनों एवं वन उत्पादों विशेष प्रकार का स्थानीय पेय (स्वबंस सपुनमत) बनाया जाता है। जो व्यापक पैमाने पर उपयोग किया जाता है। वह जन्म, विवाह एवं मृत्यु जैसे महत्वपूर्ण संस्कारों में अनिवार्य हिस्सा एवं किसी भी प्रकार की धार्मिक गतिविधि का भी अभिन्न हिस्सा है परंतु जब स्थानीय पेय का स्थान देशी शराब (National wine) एवं अंग्रेजी शराब ने ले लिया है। यह मदिरापान, जनजातीय समुदाय की बड़ी समस्या के रूप में सामने आया है। आज ज्यादातर जनजातियों में अत्याधिक शराब का सेवन शारीरिक कमियों एवं ऋणग्रस्तता का कारण तो है ही साथ ही यह वैवाहिक, पारिवारिक एवं सामाजिक विघटन का भी प्रमुख कारण है।

4.4.2.6 आवास एवं स्वच्छता (Housing and Hygiene)

किसी भी समुदाय के आवास एवं स्वच्छता उसके विकास की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। इसके साथ-साथ वातावरण की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। विभिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं तथा अलग-अलग जलवायु के साथ-साथ आवासों की बनावट भी एक समस्या है। अधिकतर जनजातीय लोगों को प्रकृति ने काफी सुरक्षा प्रदान कर रखी है। ये लोग अनुकूल स्थितियों में रहते हैं। जनजातियों में आवासों की उपयोगिता के साथ-साथ उनके कलात्मक पक्ष पर भी ध्यान दिया जाता है। बहुत-सी जनजातियाँ अच्छे मकानों में रहने को एक गर्व का विषय मानती हैं। दूसरी ओर कुछ छोटी जनजातियां हैं जो आवासों के महत्त्व पर ध्यान नहीं देतीं। ये लोग छोटी-मोटी झोपड़ियों में रहते हैं जो सदैव गन्दगी से घिरी रहती हैं। जनजातियों की आवासीय समस्या को सुलझाने में वन विभाग भी बाधक है। अफसरशाही तथा संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण वन सम्पदा के प्रयोग पर जो रोक लगा दी गई है, उसके कारण सम्पूर्ण वन नीति जनजातीय कल्याण कार्यक्रम में एक बड़ी बाधा के रूप में सामने आई है। आवश्यक वस्तुओं का संकलन करने के लिए किसी वन अधिकारी की स्वीकृति पाना इन जनजातियों के लिए बहुत कठिन हो गया है।

4.4.2.7 शिक्षा (Education) से संबंधित समस्या

अन्य सामाजिक व आर्थिक पक्षों की भाँति शिक्षा के क्षेत्र में भी जनजातीय लोग अलग-अलग स्तरों पर हैं। जनजातीय समूहों पर औपचारिक शिक्षा का प्रभाव बहुत कम पड़ा है। सरकार द्वारा अधिक से अधिक स्कूल खोलने तथा शिक्षा पर अधिक व्यय करने से भी जनजातीय लोगों की शिक्षा पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। इस प्रकार की शैक्षिक नीतियों के निर्धारण में सामाजिक पक्ष बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। जनजातियों के लिए केवल औपचारिक शिक्षा की अधिक आवश्यकता नहीं है। इनके लिए ऐसी शिक्षा नीति लाभदायक

होगी जिसके अंतर्गत उन्हें शिक्षित करने के साथ-साथ उनके अंधविश्वासों तथा पूर्वाग्रहों को भी दूर किया जा सके।

जनजातियों द्वारा शिक्षा की ओर कम ध्यान देने के आर्थिक कारण भी है। अधिकतर जनजातीय परिवार इतने निर्धन हैं कि वे लोग अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज सकते है। **एल्विन (1963)** के अनुसार "एक जनजातीय परिवार के लिए अपने बच्चों को स्कूल भेजना आवश्यक रूप से आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। इससे इनके जीवनयापन के संघर्ष तथा पारंपरिक श्रम विभाजन की योजना गड़बड़ा जाती है। बहुत से माँ-बाप ऐसी स्थिति में नहीं होते कि अपने बच्चों को स्कूल भेज सकें।"

4.4.2.8 औपचारिक शिक्षा में रुचि की कमी

एल.आर.एन. श्रीवास्तव (1968) ने इस समस्या पर व्यावहारिक विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि "आधुनिक सभ्यता से दूर अलग तथा दूरवर्ती क्षेत्रों में रहने वाला जनजातीय बच्चा देश के भूगोल व इतिहास, औद्योगीकरण, तकनीकी विकास, महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के प्रति कम रुचि रखेगा। उसे तो अपने पड़ोसी समुदायों, ग्राम्य जीवन, सामाजिक संगठनों, रीति-रिवाजों, विश्वासों तथा परंपराओं के विषय में जानकारी दी जानी चाहिए। उसके पश्चात उसे उसके देश की विभिन्न स्थितियों से अवगत कराना चाहिए। इस प्रणालीबद्ध तरीके से उसके गांव, राज्य, देश तथा विदेशों से संबंधित जानकारी उसके विकास में सहायक होगी।" **एस.एन.रथ (1981)** ने निम्न सुझाव देने के साथ-साथ समस्या का स्पष्ट विश्लेषण भी किया है, पारंपरिक रूप से प्रशिक्षित एक जनजातीय बच्चा अपने वातावण से पूर्ण रूप से अवगत होता है। वह अपने घर को बनाना, खेती करना, कपड़ा बुनना आदि ऐसे सभी कार्यों से परिचित होता है। अतः एक ऐसे पाठ्यक्रम तथा प्रणाली की संरचना होनी चाहिए जो जनजातीय परंपराओं, रीतिरिवाजों, स्थानीय आवश्यकताओं तथा राष्ट्रिय शिक्षा योजना में एक संतुलन स्थापित कर सके। ऐसे पाठ्यक्रम में शिल्पकलाओं को महत्त्व देने के साथ-साथ श्रम के सम्मान की भावना, सहकारिता तथा सामाजिक अनुशासन जैसे आवश्यक पक्षों पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।

ऐसी योजनाएं बननी चाहिए जिनकी सहायता से माता-पिता तथा स्कूल व शिक्षकों के बीच संबंध स्थापित हो सके। पढ़ने-लिखने की शिक्षा के साथ-साथ स्कूलों में प्रारम्भिक तकनीकी ज्ञान भी दिया जाना चाहिए तथा इन स्कूलों को सामाजिक परिवर्तन का एक प्रभावी केंद्र होना चाहिए। इस प्रकार की आदर्श योजना की सफलता समुचित रूप से प्रशिक्षित व समर्पित शिक्षकों पर ही निर्भर करती है। शिक्षक-जनजातियों की शिक्षा के धीमे विकास का एक महत्त्वपूर्ण कारण है उपर्युक्त शिक्षकों की कमी। अधिकतर गैर-जनजातीय शिक्षक, जो जनजातीय बच्चों को पढ़ाते हैं, अधिकतर जनजातीय समुदायों से ही शिक्षकों का चयन करना चाहिए या शिक्षकों का एक पृथक समूह बनाना चाहिए जो जनजातीय क्षेत्रों में जाकर उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ती कर सके।

4.4.2.9 संचार (Communication)

सदियों से जनजातियां दूरवर्ती तथा अलग-अलग क्षेत्रों में रहती आयीं हैं। संचार माध्यमों की कमी इसका मुख्य कारण है। जनजातीय क्षेत्रों के विकास तथा वहां की आर्थिक स्थितियों में सुधार करने के लिए संचार व्यवस्था का होना अत्यन्त आवश्यक है।

जनजातीय क्षेत्रों में संचार व्यवस्था की समस्या को प्रत्येक समुदाय के स्तर पर अलग तरीके से समझे जाने की आवश्यकता है। यह आवश्यक नही है कि एक समुदाय की जो समस्या है वह दूसरे की नही। अर्थात प्रत्येक समुदाय को उसकी आवश्यकतानुसार संचार के साधन प्राप्त हो यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए। संचार व्यवस्थाओं के विस्तार की कुछ हानियाँ भी है। इन व्यवस्थाओं की सहायता से बहुत से बाहरी तत्वों का इन क्षेत्रों में आकर सीधे-सीधे जनजातीय लोगों को सोषित करने का अवसर मिल जाता है।

4.4.2.10 भुखमरी एवं शोषण (Starvation &Explaitation)

भुखमरी तथा शोषण विश्वभर की जनजातियों की मूल समस्या है। भारत में यह समस्या गंभीर रूप से व्याप्त है। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि हमारी कुछ जनजातियां ऐसे क्षेत्रों में रहती हैं जो अत्याधिक पिछड़े इलाके होते है वे जहां निवास करते हैं वहां वनों तथा खनिजों जैसी प्राकृतिक संपदाओं से भरे पड़े हैं। परंतु स्वतंत्रता के बाद शासन के हस्तक्षेप एवं वन्य संरक्षण हेतु चलाई जाने वाली योजनाओं के कारण जनजातीय जीवन में अनेक परिवर्तन आए। प्राकृतिक संसाधन जो कि जनजातीय समुदाय के सम्पूर्ण जीवन का मुख्य आधार है शासन के हस्तक्षेप के कारण यह इन संसाधनों का उपयोग करने में असमर्थ होने लगे जिससे इनके बीच भुखमरी एवं शोषण की समस्या मुख्य रूप से पाई जाने लगी।

4.4.2.11 बेजोगारी और अविकास (Unemployment&Underdevelopment)

जनजातीय समुदाय पिछड़े एवं अविकसित क्षेत्रों में निवास करते हैं तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों पर आश्रित रहते हैं। अशिक्षित होने के कारण इन्हें उचित रोजगार प्राप्त नही होता इस कारण यह अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ती करने में असमर्थ होते हैं। यह अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति नही कर पाते हैं और गैर जनजातीय समुदाय के व्यक्तिओं से कर्ज लेते हैं तथा ये कर्ज चुकाने में असमर्थ रहते हैं। जिससे इनकी आर्थिक स्थिति अत्याधिक निम्न होती है। जिससे यह अपना विकास नही कर पाते और इसलिए विकास की मुख्य धारा में बहुत अधिक पिछड़े हुए हैं।

4.4.2.12 मानव तस्करी (Human Trafficking)

मानव तस्करी आधुनिक समाज में गंभीर समस्या है। शारीरिक शोषण और देह व्यापार से लेकर बधुंआ मजदूरी तक के लिए मानव तस्करी की जाती है। **ड्रग्स** और **हथियारो** के बाद दुनिया की तीसरी गंभीर समस्या मानव तस्करी है। 80 प्रतिशत मानव तस्करी यौन शोषण के लिए की जाती है। मानव तस्करी में अधिकांश बच्चे बेहद गरीब इलाकों के होते हैं। ज्यादातर लड़किया भारत के पूर्वी इलाकों के अन्दरूनी गांव से होती हैं। अत्याधिक गरीबी, शिक्षा की कमी और सरकारी नीतियों का ठीक से लागू न होना ही बच्चियों को मानव तस्करी का शिकार बनने की सबसे बड़ी वजह बनता है।

4.4.2.13 प्रवजन (Migration)

विश्वभर में लगभग सभी समुदायों को, विशेष रूप से आदिम समुदायों को, अपनी जमीन व मूल निवास स्थान से गहरा भावनात्मक संबंध रहा है। इसलिए हम देखते हैं कि जनजातीय प्रवसन सामान्य परिस्थितियों में नहीं होता। जनजातीय संदर्भ में प्रवसन की अवधारणा बहुत पुरानी नहीं है। संचार साधनों के विकसित होने के बाद प्रवसन की सम्भावनाएं बढ़ी। जनजातीय प्रवसन को दो पहलुओं से समझा जा सकता है। पहला, उन कारकों के माध्यम से जो किसी जनजातीय समूह को बाहर की ओर धकेलते हैं और दूसरा, उन कारकों के माध्यम से जो किसी जनजातीय समूह को अपनी ओर खींचते हैं या उन्हें आकर्षित करके अपना मूलस्थान छोड़ने के लिए उकसाते हैं। बहुत से समाज विज्ञानियों का मत है कि इस प्रकार का प्रवसन एक प्राकृतिक व तर्कसंगत घटना है जिसमें, श्रम के कम क्षेत्रों से बहुतायत व अधिकता वाले क्षेत्रों की ओर प्रवसन आवश्यक है। इस प्रकार जनजातीय प्रवसन स्थायी भी हो सकता है तथा अस्थायी भी।

4.4.3 स्वस्थ्य एवं स्वच्छता (Health&Hygiene)

जनजातीय समुदाय के व्यक्ति अशिक्षित हाने के कारण अपने स्वस्थ्य एवं स्वच्छता पर बिल्कुल भी ध्यान नही देते हैं। अच्छी स्वच्छता, व्यक्तिगत स्वच्छता न केवल स्वस्थ्य स्व-छवि को बनाए रखने में मदद करती है। बल्कि संक्रमण और बीमारी के प्रसार को रोकने में महत्वपूर्ण है। शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारक किसी व्यक्ति की क्षमता या अच्छी स्वच्छता के लिए आवश्यक स्व-देखभाल कार्यो को करने की इच्छा को प्रभावित कर सकते हैं। जनजातीय समुदाय के व्यक्ति स्वच्छता से अत्याधिक दूरी बनाकर रखते हैं। उन्हें स्वस्थ्य एवं स्वच्छता के प्रति कोई भी जानकारी या जागरूकता नही होती है। इनके आवास के आस-पास स्वास्थ्य को हानि पहुचाने वाला वातावरण होता है। जिससे इनके स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इस कारण जनजाति समुदाय में स्वास्थ्य एवं स्वच्छता एक गंभीर समस्या है।

4.4.4 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जनजातीय विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने आदिवासी विकास की ओर प्राथमिकता के आधार पर कार्य करने की नीति अपनाई। संविधान निर्मात्री सभा ने अपने उद्देश्यों को व्यक्त करते हुए कहा कि कमजोर व पिछड़े हुए वर्गों को विकास के विशेष अवसर प्रदान किए जाएँ ताकि ये वर्ग देश की मुख्य धारा में अपने आपको समाहित कर सकें तथा इनकी जीवन पद्धति कम से कम औसत ग्रामीण स्तर तक पहुँच जाए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जनजातीय विकास हेतु देश में किए गए प्रयासों को अध्ययन की सुगमता की दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

- रक्षात्मक व्यवस्था
- प्रशासनिक व्यवस्था
- विकासात्मक गतिविधियाँ

A. रक्षात्मक व्यवस्था

रक्षात्मक व्यवस्था संवैधानिक प्रावधान आदिवासी समाजों को अन्य समाजों की अपेक्षा विशेष सुरक्षा प्रदान करते हैं। ये निम्नलिखित हैं-

- अनुच्छेद 15 में अनुसूचित जनजातियों के साथ किसी भी प्रकार के भेदभाव को वर्जित किया गया है। इसी के खण्ड 4 के अंतर्गत अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़े वर्गों के विकास के लिए विशेष व्यवस्था का प्रावधान है।
- अनुच्छेद 16 में दी गई अवसर की समानता के बावजूद इसी के खण्ड 4 के द्वारा राज्य पिछड़े एवं कमजोर तबकों के लोगों के लिए नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था लागू कर सकता है।
- अनुच्छेद 23 के द्वारा बेगार प्रथा तथा बालश्रम को प्रतिबंधित किया गया है। बाद में संसद द्वारा 1976 में कानून बनाकर बंधुआ मजदूरी को प्रतिबंधित कर दिया गया है।
- अनुच्छेद 29 आदिवासी समुदाय को अपनी भाषा, बोली तथा संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 46 आदिवासियों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों की सुरक्षा हेतु राज्य से विशेष व्यवस्था का आग्रह करता है।
- अनुच्छेद 164 बिहार, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ तथा मध्य प्रदेश राज्यों में आदिवासियों के हितो तथा कल्याण की देख-रेख के लिए एक जनजातीय कल्याण मंत्री की नियुक्ति का प्रावधान करता है।
- अनुच्छेद 275 को आधार बनाकर केंद्र सरकार राज्यों को जनजातीय कल्याण एवं विकास कार्यों के क्रियान्वयन हेतु विशेष धनराशी प्रदान करती है।

- अनुच्छेद 330, 332 तथा 334 के द्वारा संसद एवं राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं।
- अनुच्छेद 335 के द्वारा अनुसूचित जनजातियों के लिए शासकीय सेवा में 7.5 प्रतिशत स्थान आरक्षित किए गए। इसके साथ-साथ आयु सीमा में छूट, अर्हता मानदंड में छूट, पदोन्नति में छूट तथा अन्य तकनीकि स्तरों पर छूट के प्रावधान किए गए हैं।
- अनुच्छेद 338 में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु राष्ट्रपति द्वारा आयुक्त की नियुक्ति का प्रावधान है। जिसका दायित्व संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को प्रदत्त सुरक्षाओं का मूल्यांकन करना, जनजातीय लोगों और राज्य सरकारों से संपर्क बनाए रखना, उनके कार्यक्रमों की जांच करना तथा योजनाओं के लिए मार्गदर्शन देना आदि है। यह आयुक्त प्रतिवर्ष राष्ट्रपति को अपना प्रतिवेदन भी भेजता है जिसमें अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के संबंध में उपलब्धियों एवं कमियों को वर्णित किया जाता है।
- अनुच्छेद 339 संघ सरकार को अधिसूचित क्षेत्रों में निवास करने वाले आदिवासियों के प्रशासन का अधिकार प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 340 जनजातियों को सरकारी शिक्षण संस्थानों में नामांकन तथा अध्ययन के लिए आरक्षण का उपबंध करता है।
- अनुच्छेद 342 के माध्यम से राष्ट्रपति जनजातियों को अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्रदान करता है।

1. पृथक प्रशासनिक व्यवस्था

जनजातीय समुदाय शेष समाज से कटा हुआ तथा सदियों से पिछड़ा है। साथ ही इस समुदाय की अपनी पृथक संस्कृति, परंपरा एवं भिन्न पहचान रही है। इसी कारण भारतीय संविधान में जनजातियों के लिए शेष समाज से भिन्न प्रशासनिक व्यवस्था का प्रावधान संविधान की पाँचवी एवं छठी अनुसूची में किया गया है।

2. अनुसूचित क्षेत्र

संविधान के अनुच्छेद 244 तथा 244(1) में अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन का प्रावधान है। संविधान की पाँचवी अनुसूचि के अनुसार भारत का राष्ट्रपति किसी भी राज्य का कोई क्षेत्र “अनुसूचित क्षेत्र” घोषित कर सकता है। 1977 से अब तक दो राष्ट्रपतियों ने अनुसूचित क्षेत्र घोषित किए हैं। ये क्षेत्र निम्न नौ राज्यों में हैं- आंध्र प्रदेश, झारखंड, गुजरात, हिमांचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान और छत्तीसगढ़। इन अनुसूचित क्षेत्रों के गठन के पीछे मुख्यतः दो उद्देश्य रहे हैं- **पहला लघु**

प्रक्रिया तथा बिना बाधा के आदिवासियों की सहायता करना तथा **दूसरा, अनुसूचित** क्षेत्रों को विकास के पथ पर लाना एवं जनजातियों के हितों की रक्षा करना।

गौरतलब है कि घोषित अनुसूचित क्षेत्रों वाले राज्य के राज्यपाल को विशेष और व्यापक अधिकार प्राप्त होते हैं। राज्यपाल ही यह तय करता है कि संसद या विधान मण्डलों द्वारा पारित कानून इन क्षेत्रों में लागू होंगे या नहीं। राज्यपाल इन क्षेत्रों में शांति बनाए रखने एवं प्रशासन के भली-भाँति संचालन के लिए नियम भी बना सकते हैं। भूमि हस्तांतरण को रोकना, भूमि आवंटन को नियंत्रित करना, साहूकारों के गतिविधियों को रोकना आदि ऐसे विषय हैं, जिनपर राज्यपाल कार्यवाही कर सकते हैं। पांचवी अनुसूचि के खण्ड 4 में अनुसूचित क्षेत्र वाले प्रत्येक राज्य में आदिवासी सलाहकार समिति के गठन का प्रावधान है। राष्ट्रपति के निर्देश पर अन्य राज्यों में भी, जहाँ अनुसूचित क्षेत्र नहीं हैं, आदिवासी सलाहकार समिति के गठन का प्रावधान है। तमिलनाडु तथा पश्चिम बंगाल ऐसे ही दो राज्य हैं, जहाँ अनुसूचित क्षेत्र नहीं होने के बावजूद वहाँ आदिवासी सलाहकार समितियाँ गठित हैं। आदिवासी सलाहकार समिति में अधिक से अधिक 20 सदस्य हो सकते हैं। इस समिति का यह दायित्व है कि वह आदिवासी कल्याण तथा प्रगति के संबंध में राज्यपाल को सलाह दे। पाँचवी अनुसूचि के खण्ड तीन में यह प्रावधान है कि राज्यपाल आदिवासी सलाहकार समिति की गतिविधियों से संबंधित प्रतिवेदन राष्ट्रपति के पास भेजता है।

3. आदिवासी क्षेत्र

आदिवासी क्षेत्र एक अर्थ में तो अनुसूचित क्षेत्र है, किंतु संवैधानिक भाषा में आदिवासी क्षेत्र वे हैं जो संविधान की छठीं अनुसूचि में घोषित किए गए हैं। ये क्षेत्र हैं- असम, मेघालय, मिजोरम तथा त्रिपुरा। इन राज्यों में आदिवासी क्षेत्रों के प्रशासन हेतु स्वायत्त जिला एवं क्षेत्रीय परिषदों का गठन किया जाता है। प्रत्येक स्वायत्त जिले के प्रशासन के लिए एक-एक जिला परिषद की स्थापना की जाती है। जिला परिषद के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक 30 होती है, जिनमें से चार को राज्यपाल मनोनीत करता है। शेष सदस्यों का चयन वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। राज्यपाल चाहे तो वह सभी चुनाव क्षेत्रों को आदिवासियों के लिए आरक्षित कर गैर-आदिवासी लोगों को चुनावी प्रतिनिधि पद से वंचित कर सकता है।

4. विकासात्मक गतिविधियाँ

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में आर्थिक एवं सामाजिक विकास में गति लाने के लिए प्रशासन की ओर से पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से वृहत उद्देश्य एवं समय परक कल्याणकारी योजनाएँ लागू की गई। इन पंचवर्षीय योजनाओं में आदिवासी समुदायों के कल्याणार्थ समुचित धनराशि की व्यवस्था की गई। 1951 से 2007 तक देश में 10 पंचवर्षीय योजनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में स्पष्ट रूप से यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया कि सामान्य विकास कार्यक्रमों को तैयार करते समय पिछड़े वर्गों का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। साथ ही अनुसूचित

जनजातियों के लिए अतिरिक्त और गहन विकास हेतु विशेष उपबंधों का प्रयोग किया जाना चाहिए। दूसरी पंचवर्षीय योजना में मुख्यतः अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को समझते हुए नीतियाँ बनाई गई। वास्तव में यह आयोजन देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं.जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रतिपादित पंचशील के सिद्धांतों की दार्शनिक प्रणाली पर आधारित थी। इस योजना के अंतर्गत देश में सर्वप्रथम 43 बहुउद्देशीय आदिवासी विकास खण्ड स्थापित किए गए।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंत में विशिष्ट बहुउद्देशीय आदिवासी विकास खण्डों तथा आदिवासी विकास के अन्य कार्यक्रमों का मूल्यांकन राष्ट्रीय संदर्भ में **वेरियर एल्विन** एवं **ढेबर आयोग** द्वारा किया गया। **एल्विन समिति** ने अपने अध्ययन में इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकारा कि 10 वर्षों में इतने ज्यादा बहुमुखी कार्यक्रम चलाए गए कि स्वयं अधिकारी भ्रमित हो गए तथा यह निश्चित नहीं कर पाए कि कब क्या करे, कौन सा कार्यक्रम पहले चलाए? साथ ही "योजनाबद्ध बजट पद्धति" के कारण एक योजना का धन दूसरी योजना पर खर्च नहीं कर पाए, इस कारण भी धन का अधिक अपव्यय हुआ। एल्विन कमेटी के साथ ही ढेबर आयोग (1960-1961) ने आदिवासियों में व्याप्त ऋणग्रस्तता, निरक्षरता, आदिवासीयों की सुरक्षा और विकास हेतु विशिष्ट सुझाव दिए तीसरी पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ में एल्विन तथा ढेबर आयोग के सुझाव को ध्यान में रखते हुए केंद्र सरकार ने विशिष्ट बहुमुखी आदिवासी विकास खण्ड योजनाओं को बदलकर आदिवासी विकास खण्ड नामक योजना प्रारंभ की।

चतुर्थ पंचवर्षी योजना के अंतर्गत लघु एवं सीमांत कृषकों के लिए कृषि मंत्रालय भारत सरकार द्वारा जनजातीय विकास अभिकरण नामक छः परियोजनाएं प्रारंभ की गई, जिनमें दो का लाभ मध्य प्रदेश को मिला जनजातीय अभिकरण सामाजिक सेवा के साथ-साथ आर्थिक विकास को भी गति प्रदान करेगा। लेकिन वास्तविकता में यह केवल एक कृषि योजना बनकर रह गई और अधो-संरचनात्मक विकास में कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई।

आदिवासी उपयोजना (1974) चार पंचवर्षीय तथा तीन वार्षिक योजनाओं, अर्थात 23 वर्षों के नियोजन काल के बाद जनजातीय समुदाय की समग्र स्थिति का मूल्यांकन करने, पूर्व में क्रियान्वित आदिवासी विकासात्मक कार्यो तथा नीतियों की समीक्षा करने, एवं भविष्य की रणनीतियों पर प्रकाश डालने के उद्देश्य से योजना आयोग भारत सरकार द्वारा श्यामाचरण दुबे एवं ललिता प्रसाद विद्यार्थी की अध्यक्षता में दो समितियों का गठन किया गया। इन दोनों समितियों ने अपने अध्ययन में आदिवासी विकासात्मक गतिविधियों की विफलता को स्वीकार करते हुए इसके मूल कारणों को स्पष्ट किया।

आदिवासी उपयोजना के अंतर्गत किसी विशेष क्षेत्र में रहने वाली आदिजातियों के विकास के साथ-साथ क्षेत्र विकास पर भी विशेष बल दिया गया। चूंकि सभी आदिवासी समाज की समस्याओं की जड़ में ऋणग्रस्तता, शोषण एवं अशिक्षा ही है, अतः उपयोजना में इन समस्याओं के निराकरण को प्राथमिकता दी गई।

5. उपयोजना काल में आदिवासी विकास

पाँचवी पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार करते समय सम्पूर्ण आदिवासी विकास के प्रश्नों को मुख्यतः तीन दृष्टिकोणों से देखा गया। प्रथम, आदिवासी केंद्रीकरण वाले क्षेत्र, द्वितीय, बिखरी हुई आदिवासी जातियां और तृतीय, आदिम जनजातीय समूह।

इस अधिनियम का क्रियान्वयन देश के 9 राज्यों- आंध्र प्रदेश, झारखण्ड, गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, हिमांचल प्रदेश, उड़ीसा तथा महाराष्ट्र में हो चुका है। इसके अतिरिक्त हाल ही में वन अधिनियम 2006 क्रियान्वित किया गया है, जिसके द्वारा अनुसूचित जनजातियों को परंपरागत वन भूमि पर पुनः अधिकार दिया गया है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय संदर्भ में इन 60 वर्षों में आदिवासी विकास के लिए जो महत्वपूर्ण एवं एंतिहासिक कदम उठाए गए, उनमें 1956 में आदिवासी विकास प्रक्रिया के पाँच मार्गदर्शी सिद्धांत- पंचशील को अपनाना, 1958 में बहुउद्देशीय जनजातीय विकास खण्ड, 1961 में आदिवासी विकास खण्ड, 1969 में जनजातीय विकास अभिकरण, 1974 में आदिवासी उपयोजना, 1987 में ट्रायफेड का गठन, 1993 में 73वाँ संविधान संशोधन, 1996 में पंचायत अधिनियम 1999 में पृथक आदिवासी कार्य मंत्रालय का गठन 2001 राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना, 2004 में पृथक अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना तथा वन अधिनियम 2006 प्रमुख हैं।

4.4.5 विकास नीतियॉ एवं कार्यक्रम

शासन के स्तर पर संविधान में उल्लिखित विविध प्रावधानों की पूर्ति हेतु विभिन्न समितियों/आयोगों/अध्ययन दलों का गठन किया गया-

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में आधारभूत रूप से यह बात कही गई कि सामान्य विकास कार्यक्रमों की रचना पिछड़े वर्गों के घनीभूत विकास की पृष्ठभूमि में तैयार किया जाने चाहिए।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) में यह वादा किया गया कि कमजोर वर्गों को आर्थिक विकास का लाभ अधिक से अधिक मिले जिससे समाज की विषमता को कम किया जा सके।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-66) में इस बात की वकालत की गई कि अवसर की समानता स्थापित की जाए तथा आर्थिक शक्तियों का इस तरह से वितरण हो, जिससे आय एवं पूँजी की असमानता को कम किया जा सके।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74) ने यह उद्देश्य निर्धारित किया कि ऐसे त्वरित उपाय किए जाए, जिससे लोगों का जीवन स्तर ऊपर उठ सके तथा ऐसे उपाय किए जाए जिससे समानता एवं सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित किया जा सकें।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना (1974-78) आदिम जाति विकास की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रही। इसमें आदिवासी उप-योजना का सूत्रपात हुआ, जो आदिम जातियों को विकास के लाभ सीधे पहुचाने की दृष्टि से बनाई गई।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) ने वित्त के अधिकतम हस्तांतरण की बात कही, जिससे कम से कम 50 प्रतिशत आदिवासी परिवारों को सहायता प्रदान कर गरीबी रेखा से ऊपर लाया जा सके।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) में आदिवासी विकास हेतु आवंटित किए जाने वाले वित्त में नियामक वृद्धि की गई। इसमें अधो-संरचनात्मक विकास एवं क्षेत्र विस्तार पर जोर दिया था।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में आदिवासी विकास एवं सामान्य जन विकास के स्तर के मध्य की दूरी के बीच सेतु बनाने का प्रयास किया गया, शताब्दी की समाप्ति तक ये पिछड़े वर्ग समाज की मुख्य धारा के स्तर को प्राप्त कर सके।

नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) में इस बात पर बल दिया गया कि आदिवासी लोगों का विकास सशक्तीकरण के माध्यम से होना चाहिए, जिसमें उन्हें अपने अधिकारों के प्रयोग हेतु उचित वातावरण मिले एवं समाज के अन्य लोगों की तरह वे अपने आत्म सम्मान एवं प्रतिष्ठा का उपयोग कर सकें।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007) में यह कहा गया कि आदिवासी समाज न केवल गरीब, साधन हीन एवं अशिक्षित है, वरन् सामान्य समाज के मुकाबले उनकी अक्षमता इस बात में भी उजागर होती है कि यह अपनी बात को पूर्ण क्षमता से रखने एवं एकीकरण की प्रक्रिया से सामंजस्य बनाने में भी असमर्थ पाते हैं।

आदिवासी क्षेत्रों में भू-अलगाव, कर्ज आदिवासियों के वन अधिकार, वन ग्रामों का विकास, पंचायत अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार, अधिनियम 1996 के परिपालन में उपर्युक्त विधि एवं कानूनों का निर्माण, अप्राकृतिक विस्थापन एवं अपर्याप्त पुनर्स्थापन, आदिम जनजातीय समूहों का संरक्षण एवं विकास, आदिवासी उपयोजना का प्रभावी एवं उद्देश्यपूर्ण क्रियान्वयन ऐसे मुद्दे हैं।

देशों में बहुतों के लिए "विकास" एक दुःस्वप्न सा हो गया है क्योंकि वह ऐसे तरीके से हो रहा है कि तथाकथित "लक्ष्य-समुदाय" अथवा जिनके हित के लिए विकास कार्य किए जाते हैं, वही प्रगति और विकास का शिकार हो जाता है। यह एक स्थापित तथ्य है कि इतिहास में सदैव मानवीय आबादी की पुनः व्यवस्था विकास की साथी रही है, हालांकि उसकी प्रक्रिया को न्याय संगत, मानवीय और जहां तक सम्भव हो स्वयंसेवी होना चाहिए।

विकास के कार्य में भूमि और पानी के इस्तेमाल के प्रकार में परिवर्तन करने की जरूरत पड़ती है और इन परिवर्तनों के कारण अक्सर बस्तियों को विस्थापित करना भी जरूरी हो जाता है। लेकिन जैसा कि **माइकेल करनिया** का कथन है आबादी की इच्छा के विना उसे उसके स्थान से विस्थापित करने का काम नही करना चाहिए या जहां तक हो सके उसे टालना चाहिए यदि परिस्थिति ऐसी हो कि विस्थापित करने के

अलावा कोई दूसरा विकल्प सामने न हो तो विस्थापित करने के कार्य को इस तरीके से करना चाहिए जिससे विस्थापित होने वालों की जीविका के साधन का पूरा संरक्षण प्राप्त हो सके।

आजादी के बाद पंचवर्षीय योजनाओं में कार्यान्वयन से प्रति वर्ष लाखो व्यक्ति विस्थापित हुए हैं। विषेश रूप से प्रशासकीय भूमि अधिग्रहण के परिणामस्वरूप। इन योजनाओं से भिन्न परियोजनाओं, भूमि के इस्तेमाल में परिवर्तनों, शहरों के विकास में विस्तार के कारण जो भूमि अधिग्रहण हुआ है वह इसमें शामिल नही है। इन सबके अलावा परिवेश संबंधी गिरावट और जनसंख्या वृद्धि के कारण मनुष्य के जीवनयापन में जो विशगंतियां आई हैं, वह अलग है। विस्थापन और बस्तियां के विनाश का सबसे बड़ा कारण जल, विद्युत, और सिंचाई योजनाय है। अन्य कारण हैं- खदानें, उश्मा और आणविक शक्ति के बड़े-बड़े कारखाने, औद्योगिक बस्तियां, सैनिक संस्थानों की संस्थापना, अस्त्र-शस्त्र परिक्षण के मैदान, नए रेलपथ तथा नई सड़के, आरक्षित वनों का विस्तार, वन्य पशुओं के शरण स्थल एवं पार्क तथा मानवहितार्थ तकनीकी हस्क्षेप जिससे बड़े पैमाने पर मछुआरों, दस्तकारों और हथकरघा, बुनकरों को अपने स्थान बदलने पड़े हैं। हस्तकारों व कारीगरों के समुदायों पर भी इस बदलाव का बुरा प्रभाव पड़ा है।

1. **जीवन का अधिकार**

इस मानवीय अधिकारों में सबसे पवित्र और अहम है जीने का अधिकार। परंतु जीने के अधिकार का मतलब सिर्फ प्राणी के रूप में जीते रहने का ही नहीं है वरन मानवीय प्रतिष्ठा के साथ जिन्दगी बसर करने का है और प्रतिष्ठित जिन्दगी के लिए जरूरी है इन्सान की निजी आजादी और जीविका के उपयुक्त साधन। इन दोनों ही तत्वों का व्यवहार रूप आर्थिक और सामाजिक स्थिति के अनुसार बिल्कुल अलग-अलग हो जाता है। आधुनिक क्षेत्र में इनका जाना माना औपचारिक रूप है जिन्हें बुनयादी अधिकारों की संज्ञा दी गई है। परंतु परंपरागत व्यवस्था के दूसरे सिरे पर आदिवासी समाज के लिए आज भी हालत में ये औपचारिक व्यवस्थाएं बेमानी है। उनकी स्थिति में उनकी अपनी समझ और परंपरा के मुताबिक स्वशासी व्यवस्था इन अधिकारों को व्यवहार रूप देने के लिए अनिवार्य है।

2. **सामाजिक प्रतिष्ठा और आत्म-गौरव**

आदमी की इज्जत और प्रतिष्ठा बनती है उसके काम से, उसके काम की मान्यता से, उत्पादन के साधनों पर अधिकार से और अपनी व्यवस्था खुद चलाने के अधिकार से। इन सभी मामलों में अनुसूचित जातियों की हालत पहले से ही बहुत खराब थी। मेहनत उनके हिस्से में आई थी और संसाधन दूसरों के परंतु आजादी के बाद की स्थिति में व्यवस्था और ताकतवर लोगों के गठजोड़ के सामने वे लोग और भी ज्यादा मजबूत हो गए हैं। एक तो उनके पास बचे-खुचे उत्पादन के साधन उनके हाथ से निकलते जा रहे हैं। दूसरे आज गांवो में लगभग अराजकता की हालत है।

3. उत्पादन के साधनों का अधिकार

अधिकतर आदिवासी और अनुसूचित जातियों के सदस्य किसी न किसी रूप में वनों एवं कृषि पर निर्भर हैं। परंतु जमीन पर अधिकार के मामले में हालत अभी बहुत दूर तक चिंताजनक है। इस मामले में सबसे ज्यादा गड़बड़ी आदिवासी इलाकों में हुई है, हो रही है। पहले तो कई इलाकों में अभी तक कोई कागजात ही नहीं है, इसलिए गांव में किसकी जमीन कहां पर है, यह कागज पर नहीं है। दूसरे कानून के ऐसे बहुत से दांव पेंच हैं जो लोगों की समझ के बाहर है। आज के कानून में जिस जमीन पर किसी का नाम दर्ज नहीं है वह सरकारी मान ली जाती है। इसलिए सरकार जो चाहे कर सकती है। उधर कागज पर नाम चढ़वाने से ही जमीन पर मिल्कियत हो जाती है। इस बात का बाहरी लोगों ने बुरी तरह से फायदा उठाया। आज, कागज ही लोगों के खिलाफ नहीं है, पूरी व्यवस्था ही उनके खिलाफ है। जमीन की जोत और मिल्कियत की जानकारी तो गांव में ही मिल सकती है, परंतु जमीन के झगड़ों का फैसला अदालत में होता है। वहीं उस नासमझ को इंसाफ मिलने की कोई उम्मीद नहीं रहती। वह कुछ कर भी तो नहीं सकता इसलिए लाचार है।

4. बंधुआ मजदूरी

जिंदगी के अधिकार की सबसे बड़ी अवमानना तो बंधुआ मजदूरों के मामले में ही है। सरकारी आँकड़ों और व्यापक योजनाओं के बावजूद कई इलाकों में स्थिति बड़ी सोचनीय है। तमिलनाडु में कॉफी बागान मालिकों के लिए सोने की खानें हैं, परंतु उन्हें खून पसीने से सींचने वाला आदिवासी उनमें “कैद” हैं। डाल्टेनगंज और चंपारन में बड़े-बड़े फर्मो में पांच कट्ठा जमीन से बांध दिए जाते हैं मजदूरों के हाथ-पैर।

5. संसाधनों पर अधिकार

खेती की जमीन के अलावा परंपरागत व्यवस्था में प्रमुख संसाधन वन, चरागाह (पड़ती भूमि) और पानी है। जिन पर आम लोग अपनी जिंदगी के लिए निर्भर हैं। सभी तरह के संसाधनों पर गलत हकदारी अंग्रेजों के जमाने में ही शुरू हुई थी। उसी जमाने में समाज और व्यक्ति का उन संसाधनों से मां-बेटे का रिश्ता खत्म कर दिया गया और राज्य का उन पर एकाधिकार हो गया।

6. लघु वनोपज

लोगों की भागीदारी के संबंध में लघु वनोपज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अगर हम भारतीय वन अधिनियम की औपचारिक व्यवस्था के अनुसार भी देखे तो लघु वनोपज पर सरकारी अधिकार गैर कानूनी है, उस पर रॉयल्टी लगाना अनैतिक है। वनोपज के मामले में पिछले साल मध्य प्रदेश और बिहार में भी आदिवासीयों को “मजदूर की जगह मालिक” का दर्जा देने की घोषणा से उनके प्रांत में घोर आईतिहासिक अन्याय को समाप्त करने का पहला महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया था।

7. वन्य प्राणी

वन्य प्राणीयों के प्रबंधन के मामले में भी ये तथ्य की आदिवासी और वन्य प्राणीयों का सदा से सहअस्तित्व रहा है। धनुष और बाण से वन्य प्राणीयों का विनाष नहीं हो सकता है, उनके संहार का असली अपराधी बाहर का आदमी है। इस बात को नजर अंदाज करने से बड़ी विसंगत स्थिति पैदा हो गई है।

8. स्थायी समाधान की अनिवार्यता

दुर्भाग्य से वनों के प्रबंध में लोगों से सहभागिता की बजाय पूरी-पूरी औपचारिकता निभाई जा रही है। नई वन नीति में सहभागिता का जिक्र जरूर है, पंरतु उसके अमल के लिए बाजारू और औपचारिक संबंधों को ही आधार माना गया है, इस कारण उस निर्णय का व्यवहार में कोई मतलब ही नहीं रह जाता है। इस हालात में सरकार और लोगों के बीच तनाव बढ़ गया है, बढ़ता जा रहा है। मध्य क्षेत्र में लगभग सब दूर सरकार और लोगों के बीच टकराव की स्थिति है, और कई इलाके वन विभाग की अधिकार-सीमा के बाहर हो गए हैं।

9. पड़ती भूमि और बिगड़े वन

संसाधनों पर अधिकार के संदर्भ में पड़ती भूमि और बिगड़े वनों की ओर खास तौर से ध्यान देना जरूरी है। अभी तक ये संसाधन या तो अनुपजाऊ थे या दूर-दराज के इलाकों में थे। इसलिए अगर गरीब उनसे जुड़ा हुआ था, अपनी जिंदगी वसर कर रहा था तो किसी को कोई एंतराज नही था, परंतु अब उनसे भारी मुनाफे की संभावना से सभी की आखें उन पर लग गई है। ये संसाधन गरीबों के लिए जिंदगी गुजारने का सहारा है।

10. पानी

पानी के संसाधन के रूप में उपयोग में भी पूंजी का निवेष और केंन्द्रकीकरण से लोगों की जिंदगी के अधिकार की अनदेखी हो रही है। साधारण आदमी, जो अब तक अपनी मेहनत और अपनी तकनीक का उपयोग करके, पानी का उपयोग कर लेता था, वह उसकी पहुंच के बाहर हो गया है। पानी पर पूंजी और तकनीक के सहारे एकाधिकार करके ताकतवर लोग उसका निजी फायदे के लिए मनमाना उपयोग कर रहे हैं।

4.4.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपने जनजातीय समुदाय की प्रमुख समस्याओं को समझा तथा जनजातीय विकास हेतु चलाई जा रही योजनाओ से भी परिचित हुए।

4.4.7 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. जनजातीय समुदायो की कुछ प्रमुख समस्याओं के नाम लिखिए?
2. भारत के मध्य क्षेत्र में निवासरत जनजातियों के बीच ऋणग्रस्तता की समस्या का विश्लेषण कीजिए।
3. समकालीन जनजातीय परिदृश्य में आव्रजन की समस्या का विश्लेषण कीजिए।
4. जनजातीय विकास से संबंधित योजनाओं के नाम लिखिए।
5. वनाधिकार अधिनियम (2007) का वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. जनजातीय समुदाय के संदर्भ में भारत में मानव तस्करी को विश्लेषण कीजिए।
2. भारत में अनुसूचित क्षेत्र पर विस्तृत लेख लिखिए।
3. जनजातीय विकास के एकीकरण उपागम विस्तृत का वर्णन कीजिए।
4. जनजातीय विकास के अलगाववादी उपागम का वर्णन कीजिए।

1.4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. देसाई, ए.आर. (1960). ट्राइब्स इन ट्रंजिसन. सेमिनार 2014: 19-24
2. दुबे, एस.सी. (1960). मानव और संस्कृति. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
3. एल्विन, वैरियर. (1944). द एबोर्जिनियस. बॉम्बे: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
4. घूरिए, जी.एस. (1963). द शेड्यूल ट्राइब्स. बॉम्बे: पॉपुलर प्रकाशन.
5. मजूमदार, डी.एन. एवं मदान, टी.एन. (1956). एंन इंटरोड्कशन टू सोशल एनथ्रोपोलॉजी. बॉम्बे: एशियन पब्लिशिंग हाऊस.
6. मजूमदार, डी.एन. (1944). रसेस एण्ड कल्चरस ऑफ इंडिया. दिल्ली: एशियन पब्लिशिंग हाऊस.
7. रिजले, एच.एच. (1903). सेंसेस ऑफ इंडिया रिपोर्ट. शिमला: गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रेस.
8. साह, बी.एन. (1998). अप्रोच टू ट्राइबल वेल्फेयर इन पोस्ट इंडेपेंडेन्स एरा एंथ्रोपोलॉजिस्ट. Vol.25, No.1, pp. 73-81.
9. सिंह, के.एस. (1994). द श्चेड्यूल ट्राइब्स. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
10. श्रीनिवास, एम.एन. (1952). रिलीजन एण्ड सोसाइटी एमंग द कुर्ज ऑफ साउथ इंडिया. बॉम्बे: एशियन पब्लिशिंग हाऊस.
11. श्रीनिवास, एम.एन. (1966). सोशियल चेंज इन मॉडर्न इंडिया. बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ केलिफोर्निया प्रेस.

12. टायलर, एड.बी. (1881). एंथ्रोपोलॉजी: एन इंटरोड्क्शन टू द स्टडी ऑफ मैन एण्ड सिविलाइजेशन. लंदन: मैकमिलन.

13. टायलर, एड.बी. (1920). प्रीमिटिव कल्चर (6th Edition). लंदन: जॉन मैरी.

14. विद्यार्थी. एल.पी. एवं विनय, कु. राय. (1976). द ट्राइबल कल्चर ऑफ इंडिया. नई दिल्ली: कान्सैप्ट पब्लिशिंग कंपनी.

15. Xaxa, Virginius (2008): State, Society and Tribes: Issues in Post-colonial India, New Delhi: Pearson Education India.

16. Xaxa, Virginius (2014): "Report of High Level Committee on Socio-economic, Health and Educational Status of Tribal Communities of India", Ministry of Tribal Affairs, New Delhi: Government of India.

नोट- इस कृति का कोई भी अंश विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति लिए बिना पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

पाठ्यपुस्तक को यथासंभव त्रुटिहीन रूप से प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। संयोगवश यदि इसमें कोई कमी या त्रुटि रह गई तो इसके लिए संपादक, संयोजक प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। अवगत कराए जाने पर सुधार करने का प्रयास किया जाएगा।